

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्॥ ऋ० १/८६/२



Impact Factor
3.811



ISSN : 2395-7115

October 2021

Vol. 14, Issue-4

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL



डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट
सम्पादक

Publisher :

Gagan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

बोहल शोध मञ्जूषा Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED,
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 14,

ISSUE-4

(OCTOBER- 2021)

ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

प्रधान सम्पादिका :

प्रो. रेखा रानी

हिन्दी विभाग, राजकीय रणबीर कॉलेज, संगरूर (पंजाब)

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),

एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),

डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)

विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक

टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)



Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

प्रशासनिक सम्पर्क :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
मो. 8708822674

सम्पादकीय सम्पर्क :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

6 एच 30, जवाहर नगर,
श्रीगंगानगर-335001 (राजस्थान)
मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com, www.bohalshodhmanjusha.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originality of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdiction only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टाटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग,
चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ सम्पादक मण्डल

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
गॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. पार्वती गोंसाई
सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

डॉ. मो. माजिद मिया
पश्चिमी बंगाल।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. मो. रियाज खान
बीएमएस. महिला. महा., बेंगलूरु

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरु

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
टाटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
टाटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

*सम्पूर्ण बोहल शोध मंजूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंधा, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का प्रकाशन सहयोग शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव, वॉकमैन हिन्दी में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसॉफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्र आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

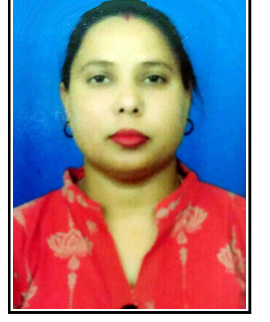
नोट :-

1. उर्दू, पंजाबी, कन्नड़, मराठी, तेलगू, डोंगरी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज A4 पर टाईप करवाकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।
2. आप अपने शोध पत्र के अंत में सम्पर्क सूत्र (टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।
3. शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।
4. पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।
5. शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।
6. सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।
7. सहयोग राशि 1100/- रु. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रु. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ
1. सम्पादकीय	रेखा रानी	9 – 9
2. A Study of Gender Bias and Discrimination against Woman in Mahesh Dattani's Tara	Anil Kumar Tiriya	10-14
3. 'हो' जनजाति में प्रकृति पूजा : मागे पोरोब के संदर्भ में	श्रीमती आशा रानी सुन्डी	15 – 18
4. Disturbance in American Society due to Second World War: A Study of the Works of Adward Albee	Dr. Ashok Kumar	19-22
5. मंजूर एहतेशाम के उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' में मध्यवर्गीय चेतना सामाजिक पक्ष	छिन्द्र सिंह	23 – 26
6. समाज में बढ़ते अपराध, कारण और निवारण	डॉ० आभा शर्मा	27 – 30
7. हिंदी साहित्य में नारी के विभिन्न रूप	Dr. Praveen K. Mishra	31-34
8. उषाकिरण खान के कथा साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का सांस्कृतिक विश्लेषण	हरप्रीत कौर	35 – 38
9. साहित्य और समाज का सम्बन्ध	डॉ. खरटमोल मदन नामदेव	39 – 42
10. शिक्षा और समाज	Dr. Kumar Abhishek	43 – 45
11. वैदिक समाज में गुरुकुल परंपरा और ब्रह्मतत्त्व प्रसंग	ओयेन्द्रिला राय	46 – 53
12. साहित्य और समाज का संबंध	श्रीमती प्रेमलता पाटील	54 – 57
13. इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानियों में कामकाजी स्त्री की बदलती मानसिकता	सतवीर कौर	58 – 61
14. साहित्य और समाज का संबंध	शिवलाल अहिरवार	62 – 64
15. उद्योग और समाज	मनीषा शर्मा	65 – 67
16. भारतीय समाज पर संचार माध्यमों का प्रभाव और हिंदी भाषा की स्थिति	डॉ. सुशीला लड्डा, आलोक सक्सेना	68 – 72
17. औपनिवेशकालीन भारत नारी	जी.एस.एल.डी. सौजन्या	73 – 75
18. नरककुंड में बास : शोषण के शिकार	डॉ. लीलाकुमारी. एस.	76 – 77
19. औपनिवेशिक भारत के राजनैतिक स्थिति	जी.एस.एल.डी. सौजन्या	78 – 81
20. शिक्षा और समाज	डॉ० दीपशिखा शर्मा	82 – 83
21. लोकगीतों में सामाजिक भाव : परम्परा और मान्यताएँ	डॉ० राजकुमारी शर्मा	84 – 88
22. सुषम बेदी कृत 'लौटना' उपन्यास में प्रवासी स्त्री की अस्मिता का संघर्ष	भावना देवी	89 – 92
23. Change is the only constant : The innocuous rise of women writers in Nagaland and the voices that they portray	Lanunochit Pongen	93-96
24. मृदुला सिन्हा के उपन्यासों में नारी शोषण	कुमारी पंकजा	97 – 102

25. बेनीपुरी के निबन्धों में नारी-विमर्श	मीनू पारीक	103 – 108
26. मृदला सिन्हा की कहानियों में स्त्री-संघर्ष	कुमारी पंकजा	109 – 112
27. जया जादवानी के कथा साहित्य में नारी संवेदना	कोल्हे मंजूषा संदिपानराव, प्रो. डा. संदीप श्रीराम पाईकराव	113 – 115
28. असम के प्रवासी भाषिक समुदाय और हिंदी	डॉ. जाहिदुल दीवान	116 – 120
29. रीवा जिले के माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के शिक्षकीय व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति एवं कार्य संतुष्टि का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन	डा. एस.के. त्रिपाठी, कल्पना पाण्डेय	121 – 128
30. हरिवंशराय बच्चन के काव्य संसार की एक झलक	कमल सिंह भूरिया	129 – 132
31. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी संवेदना	संगीता कुमारी	133 – 134
32. ENVISIONING THE FUTURE OF OPEN AND DISTANCE LEARNING SYSTEM IN INDIA	Ramshankar Varma	135-140
33. वर्तमान संदर्भ में कबीर काव्य की प्रासंगिकता	रूपम कुमारी	141 – 144
34. महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' में नारी व्यथा	डॉ. आशा देवी	145 – 149
35. HIGHER EDUCATION IN INDIA	Nature and Trends Dr Bhupender Singh	150-153
36. महाकवि पाश के साहित्य में क्रान्ति धर्मिता तथा सामाजिक चेतना	डा० परमजीत कौर	154 – 160
37. जेंगेत् जाकात् दरबार रे संताली पारसी	Sabana Rahman	161-164
38. आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन विशेष संदर्भ बी.एस.टी.सी. प्रशिक्षार्थी	डॉ. गौरव शर्मा	165 – 168
39. विश्वविद्यालय के छात्रों की शिक्षा पर प्रभाव एवं चुनौतियाँ (कोविड - 19 के संदर्भ में)	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	169 – 174
40. विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में चित्रित मध्यवर्गीय जीवन ('नौकर की कमीज़' के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ. प्रणीता. पी	175 – 180
41. The Yakka Tribes of Ancient Sri Lanka and the Nature of Contemporary Yakka Beliefs	Dr. Kumudini Maddumage	181-185
42. रूसो की शिक्षा पद्धति की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता	डॉ. गौरव शर्मा	186 – 190
43. नाइडा, जे. सी कैटफोर्ड तथा वाल्टर बेंजमीन : अनुवाद चिंतन तथा सिद्धान्त	डॉ मोहनन वी टी वी	191 – 194
44. छायावादी काव्य में मनुष्य	नीरज शर्मा	195 – 199
45. कुँडुख भखा संस्कृतिन पर्दाआगे 'श्री सरन उराँवस गहि नलख'	आरती कुमारी	200 – 202



प्रिय पाठको,

किसी भी युग का साहित्य उस काल विशेष का प्रतिबिम्ब होता है। इसलिए युग चेतना निर्माण के साथ समकालीन रचनाकार अपने युग की प्रवृत्तियों, क्रियाकलापों, आचार-विचारों और संकल्प विकल्प के संदर्भ में जो भाव अपने अन्तर्मन में रखता है उसका अधिकांश हिस्सा उसकी रचनाओं में समाहित होता है।

साहित्य की रचना विशेष उद्देश्यों को समक्ष रखकर की जाती है। वास्तव में रचा गया साहित्य समूचे रूप में एक ही होता है परन्तु फिर भी इसके अलग-अलग रूप मिलते हैं तथा अलग-अलग समय में यह बदलते भी रहते हैं। जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति को ही साहित्य का नाम दिया जा सकता है। साहित्य की रचना चाहे किसी भी विचारधारा के अधीन की गई हो इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति या समाज में चेतना पैदा करने का अपना कर्तव्य निर्वाह होता है। साहित्य समाज से पैदा होकर समाज को प्रभावित करने का कार्य करता है।

साहित्य जीवन समाज से जुड़े सभी पक्षों सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आर्थिक पक्षों से विभिन्न विषयों तथा समाज के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टि डालते हुए समस्या और समाधान को प्रस्तुत करते चलता है। प्रस्तुत अंक में भी विभिन्न विद्वानों द्वारा साहित्य के विभिन्न पक्षों को लेकर समाज में भी चेतना पैदा करने का प्रयास है जिसका मूल उद्देश्य समाज का मार्ग दर्शन करना है जो कि अनवरत जारी है। इसी कामना के साथ प्रस्तुत अंक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अति प्रसन्नता हो रही है।

शुभकामनाओं सहित!

-रेखा रानी
अतिथि सम्पादक



A Study of Gender Bias and Discrimination against Woman in Mahesh Dattani's Tara

-Mr. Anil Kumar Tiriya

Assistant Professor, P.G. Department of English, Berhampur University, Ganjam, Odisha

Abstract :-

The paper attempts to study the gender-biased injustice and the prejudice of giving preference to male over female in the patriarchal society. Mahesh Dattani is the first English language playwright to be honoured with the prestigious Sahitya Akademi Award. He raises the voice through his writings whenever he sees the vice of the society against the innocents. His play Tara deals with the issues of gender-bias, gender discrimination and marginalization in the patriarchal society. It portrays the emotional separation of two conjoined twins Chandan and Tara (at the hip) and the manipulation of their mother and grandfather to favour the boy-child over the girl-child. The pivotal character, Tara is ill-treated, discriminated and marginalized throughout her life. The play is analysed and interpreted in Feminist theoretical framework. Patriarchy is an institution which marginalizes and subjugates women by discrimination and it denies any deviation on the part of the male-child. The paper endeavours to analyse and discuss gender bias and discrimination in Mahesh Dattani's Tara.

Keywords - Gender-Discrimination, Marginalization, Patriarchy, Prejudice, Subjugate

Introduction :-

Mahesh Dattani is one of the most famous contemporary playwrights in Indian English Literature. He is an actor, director, playwright, dancer and screenplay writer. He is the first Indian English playwright to be honoured with the prestigious Sahitya Akademi Award. He always deals with the complicated dynamics of the modern urban family. In many of his plays, he deals with various issues like homosexuality, gender discrimination, communalism and child sexual abuse. Dattani is one of the playwrights who challenged the construction of India and Indian socio-cultural systems as they have been presented in the modern English theatre. This paper is a modest attempt to study the gender Discrimination and how the male given preference over the female in an Indian family. The play deals with the emotional separation of two conjoined twins and the manipulation of their mother and grandfather to favour the boy-child over the girl-child. The play also deals with the issues of class, community, bias, prejudices and traditionalism.

Tara is the third dramatic work of Mahesh Dattani. It is one of the best loved plays of Dattani in all over the world. Tara raises the question of gender Discrimination in many ways, though not necessarily through banal stereotypes of 'bias against the girl-child', although that is the generally accepted interpretation of the play in India. With Dattani, it is never a situation that is cut-and-dried, absolving one or squarely laying the blame on the other. And that is why he would prefer to say that this play is more about the 'gendered' self, about acknowledging the female side of oneself. The play Tara is narrated by Chandan, the male-half of the whole of which the 'other' is Tara. Mahesh Dattani has presented the bizarre reality of the woman playing second scam to man. It is about the courage and spirit of a handicapped girl-child, a Siamese twin born in a Gujarati family. She (Tara) could have

survived but for her mother's decision to give the extra leg to her twin brother, Chandan. Tara's mother had allowed a leg to be amputated from her conjoined twin even though there was a great probability of the survival of the girl. In the whole play, Dattani spreads a bitter truth of child abuse prevails in the Indian societies. Every girl-child born in an Indian family suffers some kind of exploitation. Dattani's Tara is a typical woman character and she has been widely acclaimed and differently interpreted based on gender and race. Dattani boldly expresses the exploitation of Indian women in his work as it is very much visible as the privileges are consciously or unconsciously propounded to the son in the Indian families. Mahesh Dattani himself mentioned in one of his interviews with Lakshmi Subramanian: "I see Tara as a play about the male-self and female-self. The male-self is being preferred in all cultures. (Adhikari 48)

The play is about the separation of self and the resultant angst would women be ever considered equal to men, is a big question to be answered by every individual and the society at large. There is differentiation between a male-child and a female-child. All propagandas about equality of male and female as well as the claims about providing equal opportunities to women in all the fields are feigned. Dattani has unveiled all the proscribed subjects from the hat and putting them on the stage for the public to review; Dattani's Tara probes the dilemma of a Siamese twin. Considering the playwright's foresight, critics have observed that playwrights, who have had the guts to address such poignant issues threadbare and also brought them to Lime-light, should be encouraged. The play Tara revolves around Chandan and Tara Patel, a critical operation to separate the twins at birth, which leaves Tara crippled for life. It analyses the issue of marginalisation of women in the play. Chandan, being a boy-child is preferred to Tara, a girl-child in an Indian family. This paper is an attempt to study the gender discrimination in a society, the injustice done only on the term of gender and the preference given to a male child over a female in an Indian family. The play also deals with the emotional and physical separation to Siamese twins. The play presents the deep rooted patriarchal system in the society. Women act as a key in the hands of patriarchy to Perpetuate patriarchal values in this play.

The play Tara has been analysed and interpreted in the feminist theoretical framework. Simone De Beauvoir's *The Second Sex* and Kate Millett's *Sexual Politics* describe how a women is discriminated and subjugated in the patriarchal society. Mahesh Dattani deals with the theme of gender discrimination in the play Tara. This paper tries to discuss and analyse the issue of marginalisation of women in the play. Chandan being a boy-child is preferred to Tara a girl-child in an Indian family. This paper is an attempt to study the gender discrimination in a society, the injustice done only on the term of gender and the preference given to a male-child over a female-child in an Indian family. The play also deals with the emotional and physical separation to Siamese twins. The play presents the deep rooted patriarchal system in the society. Women act as a key in the hands of patriarchy to perpetuate patriarchal values. In this play, Bharati despite of being mother of Tara spoils her daughter's life and suffers in the longer run because of her inhuman act. Through this play, Dattani exposes insensitive behaviour of society towards the physically disabled persons. Dr. Thakkar makes the misuse of his profession being the man of science and technology. He was bribed a piece of land by Bharati and her father for surgery that led to the death of Tara.

The play explores and exposes the typical Indian mind set which has from time Immemorial preferred a boy-child to a girl-child. Discrimination, sexism, hypocrisy and age-old myths are all examined; what emerges is a work that stimulates and disturbs. Erin Mee calls Dattani "a young playwright who can create a new generation in the Indian English Drama which deals with the invisible social issues". Mee in her note on Tara observes that Dattani's preoccupation in the play are "the invisible Indian social issues". She adds: Woven into the play are issues of class and community, and the clash between traditional and modern lifestyles and values" The play dealing with the feelings of Siamese twins is also "about the gendered self, about coming to terms with the feminine side of

oneself in a world that always favours what is 'male'. Yadav, another critic of plays written by Indians in English points out that Tara is about a boy and a girl for such twins are "invariably of the same sex". Dattani "takes a medical liberty" and concentrates more in the "emotional separation" of the twins than their surgical separation. Mahesh Dattani himself had once told Sachidanante Mohanty in an interview that: Tara is about a boy and a girl, Siamese twins, I have taken medical liberty over here because Siamese twins are invariably of the same sex and they are surgically separated at birth.

It was important for their survival and the play deals with their emotional separation. The play Tara is also a metaphor for the conjoined and separated Male-female entities and the male given preference over the female. The playwright begins with Tara to look at his own art, and at the sometime contenance with his negotiate Questions of gender, self identification and the family relationship. This was an unlikely subject, even though a 'freaky' one, and yet the play went on to become one of Dattani's best loved works. In the surface 'unreality' of its subject, Dattani's exploration of his milieu was skilfully worked out, as were his meta-theatrical objectives of the artist-dramatis-writer looking in his own art. Tara is an engrossing play that questions the role of a society that treats the children of the same womb in two not just different but opposing too. The fact that the injustice is perpetrated by the victim's own Mother whose preference to the male child makes the play more poignant and suggests indirectly that it is women, not men who continue the chain of injustice to women right from the moment of their birth. (Bhatta 26)

Tara is not just the story of the protagonist of the play. It is about the story of a girl child born in an Indian family. The situation gets aggravated and turns worse if the girl is physically or mentally challenged. It is a better example of child-abuse that is prevalent in a section of the Indian society. Every girl child born in an Indian family does suffer some kind of exploitation and is very much aware of it as the privileges that are denied to them are consciously or unconsciously provided to the son. The play Tara, according to Dattani, had been inspired by Tennessee William's play The Glass Menagerie, which is based on Tennessee William's real-life story. Tennessee William's father belonged to a middle class family like Tara's father Patel. Tennessee William's mother belonged to an affluent Family of the bureaucrats like Mrs. Bharati Patel. Just like the Williams, the Patel also very often quarrelled over the place of woman in a family.

The play Tara opens in London with Chandan, now a playwright, recollecting his past, particularly, the childhood days he had spent happily with his sister Tara. As Mee states: "Dan writes Tara's story to rediscover the neglected half of himself, as a means of becoming whole". Dan says: "I have my memories... But now I want them to come back. To masticate my memories in Mind and spit out the result to the world in anger". The privileged brother Chandan wants to record his anguish over his sister's childhood in a drama. One tends to feel that in Tara she bears some kind of hatred against the society throughout the play. There is a kind of aversion with the outside world for Tara's little world consisted of only a few persons: her parents and her brother with whom she was very close. Her affection towards her brother and the internal anguish is expressed in her conversation with Chandan. She says: "May be we still are. Like we've always been, inseparable. The way we started life. Two lives and one body, in one comfortable womb. Till we were forced out and separated" Tara explores as well as exposes the typical Indian mindset, which has, down the ages, all the time preferred a boy-child to a girl-child. The play depicts the triumph and the failure of an Indian family, comprising the father, the mother and their children, coping with the trauma of disability. (Chandra 92)

This is expressly stated by Dattani himself in his interview to Lakshmi Subramanian: I focus on cultural emphasis on masculinity and how all the characters are at conflict with that. The parents, the grand father and the neighbours - they are all in that sense in tension with their own sensibilities, as opposed to cultural sensibilities they may have knowingly or unknowingly subscribed to. The decision taken by Mrs. Patel leaves Tara crippled for life

and it is noticed that Mrs. Patel's guilt gets revealed repeatedly throughout the play. She tries to compensate for this unfortunate decision through her excessive concern for her. Her sense of regret is so deep that she agrees to donate her kidney to her daughter so that she may survive a few more years. While conversing with her son, she tells him: "I plan to give her happiness. I mean to give her all the love and affection which I can live. It's what she... deserves. Love can make up for a lot". As the play progresses, another interesting character, Roopa, gets introduced. She is an impertinent and extremely talkative neighbour of Patel's family. It is largely she who brings the strain of humour to the play.

For example, she comments on how dissimilar the twins look: CHANDAN: Not all to twins are pea's pods Two peas in a pod that's something we aren't this description makes Roopa burst into laughter, much to the surprise of the twins. Roopa tells them that the imagery of two 'peas in a pod' is extremely hilarious. Bharati's unnecessary bullying of Roopa into friendship with Tara and even trying to bribe her into spending more time with Tara is disgusting and demeaning. The interesting conversation between Bharati and her neighbour Roopa shows that Bharati is just ready to do anything for the sake of her unlucky child's happiness: "you can watch whatever you want! Just be my Tara's friend". Bharati's internal turmoil is so intense that it often comes out in the open in her relationship with her husband. She is always complaining about something or the other. Her father's wealth is always a bone of contention between Mrs. Patel and her husband. Mrs. Patel is often seen complaining to her children about their father and especially about his attitude towards their grandfather. "Your father doesn't want us to use them. He doesn't want us to use any of your grandfather's things"

Mr. Patel is always conscious of the insult that Bharati had often heaped on him by using her father's wealth as a force of strength against him. It was the same strength that Bharati had used in taking the unjust decision on the separation of the Siamese twins through surgery. Societies in India have always had a male dominated perception. All decisions in a family are taken only by the senior male member of the family. Even if there is a female member who is elder to the male, she is not given as much authority as the male. Mr. Patel's father-in-law, the eldest among the three members of the family, is also a powerful and an affluent politician. He was the person who decided about the operation in which the conjoined leg was to be given to Chandan in place of Tara. He had even bribed the doctor with the sanction of a piece of land in Bangalore. Dr. Thakkar fell from his high status in the society without giving a second thought, along with his team, while deciding the nature of operation. Instead of taking a sound medical decision of leaving the leg with Tara, he had sold out his conscience for the temptation to fulfil his ambition. Mr. and Mrs. Patel were warned by the surgeon that in almost all the cases of such kind, one of the twins always died by the age of four.

In spite of this fact, they cause injustice to the innocent girl-child Tara. Tara is neither Chandan's tragedy nor is it really of Tara's. The tragic events depicted in the play are the kinds Experienced in everybody's life. It is Dattani's world where the playwright picks up various characters from the society; they are all puppets in the hand of their creative artist. Dattani makes the society a backdrop and displays to us the fiery issues of today. In his play Tara Dattani becomes a juggler and juggles with the following relationship: husband and wife relationship, doctor and patient, son-in-law and father-in-law, parents and children, brother and sister. Among these various relationships the special focus in Tara is on father-daughter, mother-daughter and grandfather-grand daughter relationship. It would be relevant to recall here that Dattani wrote his plays to be seen and heard and not as literature to be read alone. Hence, Tara has a two-fold purpose: To expose the modern education urban family's adherence to the conventional attitude to favouring anything that is masculine. (Dattani 19)

To expose the corruption prevalent in the bureaucratic society and the ethical deterioration of the medical profession. Mr. Patel's conversation with his children brings out the playwright's purpose: A scan showed that a major part of the blood supply to the third leg was provided by the girl The chances were slightly better that the leg

would survive On the girl. Your grandfather and your mother had private meeting with Dr. Thakkar. I wasn't asked to come I couldn't believe what she told me that they would risk giving both legs to the boy the doctor had agreed It was later I came to know of his intention of stating large nursing home, the largest in Bangalore. He had acquired three acres of prime land in the heart of the city from the state. Your grandfather's political influence had been used Chandan had two legs for two days. It didn't take them very long to realize what a great mistake they have made. The leg was amputated. A piece of dead fish which could have might have been Tara this long speech by Mr. Patel gives the essence of the play. The play centres on the theme of physical separation manipulated by the mother and the grandfather to favour the boy over the girl resulting in the emotional Separation between the two conjoined twins. Tara, the unlucky girl who has not been given enough opportunities like her brother, finally dies. Chandan attempts to repress the guilt, he feels over Tara's death. His sense of trauma and anguish is so intense that at the end of the play, Dan apologizes to Tara thus: "Forgive me, Tara, Forgive me, for making it my tragedy" Chandan explores his psyche as well as Tara's after his sister's death. (Das 59)

Tara dies in a shock when she learns that it is her mother Bharati [whom Tara trusts more] who is involved in the conspiracy of her unfair separation from Chandan. Though Chandan physically survives this trauma, he can never lead a peaceful life. He migrates to the suburbs of London, changes his name and attempts to create a new identity. He also tries to write his autobiographical play, though a futile attempt: Give me a moment and the pain will subside. Then I can function again. Yes, The material is there. But the craft is yet to come. Like the amazing Dr. Thakkar, I must take something from Tara and give it myself. Make capital of my trauma, my anguish, and make it my tragedy. To masticate them in my mind and spit out the result to the world, in anger. My progress, so far, I must admit, has been zero. **Conclusion :-**

Mahesh Dattani has effectively dealt with the questions of differently abled, gender and self identity in the play, Tara. Tara is considered as one of the popular works of Mahesh Dattani. He touches various issues related to gender discrimination by taking the subject of Siamese twins. Tara is not merely an individual character but emerges as an archetype, an icon of the Indian girl child who is vanquished and subdued in the factory of tradition and modernity. This play moves us deeply as Mahesh Dattani not only unravels how girls are subjected to discrimination in an educated society but also stresses upon the fact that how discrimination is encouraged by people in Indian society. The play is a mega success in depicting the plight of marginalized women. This play depicts the discrimination against women which starts from the womb of mother. The incidents of female foeticide are common in our society. The patriarchal society considers a girl as a burden on her parents not only financially but also socially and emotionally. That is why this patriarchal society prefers a boy child like Chandan to Tara, a girl child.

Tara effectively serves its dramatic purpose - to bring out the sincerity and inclination of a girl to prove her mettle in the world of male supremacy. The name Tara rightfully suggests a star; the child was a bright and a shining star that was a source of happiness for her family. Dan couldn't have a complete life but for Tara. Tara has been limned as a female character with potential while her brother was not enterprising at all. The father of the two, however, was bent upon securing the future of the boy. Her potentiality was sacrificed on the altar of gender. Identity crisis becomes a chain with which a female is shackled when the question of choice between male and a female arises.

Works Cited :-

1. Adhikari, Sara. "Stage of Tradition". Literature Alive, Vol.1, Oct 1995, pp. 34-48.
2. Bhatta, S.Krishna. Indian English Drama: A Critical Study. New Delhi: Sterling Publishers,1987. pp.21-26.
3. Chandra, Subhash. "The twinkling Star: Responding to Dattani's "Tara". The Commonwealth Review, pp.60-92.
4. Dattani, Mahesh. "Tara". Collected Plays. New Delhi: Penguin Books India, 2000, pp.17-19.
5. Das, Sangeeta. "Identity Crisis of Women in Tara". The Commonwealth Review, Vol.13, No.2, pp. 51-59.



‘हो’ जनजाति में प्रकृति पूजा : मागे पोरोब के संदर्भ में

– श्रीमती आशा रानी सुन्डी

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, टाटा कॉलेज, चाईबासा, झारखण्ड।

सारांश :-

प्रस्तुत लेख ‘हो’ जनजाति समुदाय के प्रणति प्रेम, प्रकृति पूजा एवं प्रकृति के संरक्षण की विचारधारा को परिभाषित एवं विवेचना करता है। यह प्रकृति और मानव के बीच आध्यात्मिक संबंध की व्याख्या एवं प्रकृति के कण-कण में व्याप्त ईश्वर की पूजा अर्चना की परम्परा की वकालत भी करता है। ‘हो’ अस्ट्रोएशियाटिक भाषा परिवार की जनजातीय समूह है जो झारखण्ड और उड़ीशा में मूल रूप से बसती है। इनकी भाषा ‘हो’ है और वे सरना धर्म में विश्वास रखते हैं। हो जनजाति का प्रकृति से गहरा नाता रहा है। वे प्रकृति की गोद में रहते आ रहे हैं और प्रकृति की पूजा और उपासना करते आ रहे हैं। वे प्रकृति को ही लसहबोंगा (ईश्वर) मानते हैं। अन्य देवी-देवताओं के रूप में भी वे प्रकृति को ही पूजते हैं। ‘हो’ जनजाति समुदाय में पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज एवं पूजा पाठ का विशेष महत्त्व है। उनका सबसे बड़ा त्योहार मागे पोरोब है, जिसे सृष्टि के त्योहार के रूप में मनाया जाता है। मागे पोरोब में धरती माँ की पूजा की जाती है। ‘हो’ समुदाय में माँ का स्थान बहुत ऊँचा है। उनके अनुसार माँ के बिना न सृष्टि हो सकती है, न वंश वृद्धि और न ही लालन-पालन एवं शिक्षा प्राप्त की जा सकती है। मागे पोरोब में ‘देशाउलि’ में पूजा किया जाता है जो ग्राम का अति पवित्र स्थल होता है। देशाउलि को पिता एवं जहेर एरा को माता समतुल्य माना जाता है। उनका यह मानना है कि मानव का जन्म स्थान माँ का गर्भाशय है। इसलिए वे माँ के गर्भाशय कि जय-जयकार करते हैं। मागे पोरोब में देशाउलि में दिउरी द्वारा मुर्गा एवं मुर्गी की बलि चढ़ाते समय धरती माँ के जय-जयकार आह्वान करने का रिवाज है। ‘हो’ समुदाय के मतानुसार मनुष्य एवं जीव-जन्तुओं की सृष्टि, पोषण एवं उद्धार के लिए मागे पोरोब में धरती माँ की पूजा की जाती है और यह भी मान्यता है कि प्रणति के साथ छेड़छाड़ करने पर प्राकृतिक आपदा के रूप में प्रकृति अपना नराजगी दर्शाती है। ‘हो’ समुदाय के प्रकृति प्रेम, प्रकृति पूजा एवं प्रकृति के संरक्षण की परम्परा का अध्ययन साहित्य के पारिस्थितिक स्त्रीवाद सिद्धांतों के आधार पर किया गया है। विश्व का समस्त आदिवासी समुदाय ही है जो प्रकृति पूजा एवं उनकी रक्षा करते हैं। प्रकृति पूजा ही एक ऐसी धागा है जो विश्व के सभी आदिवासी धर्मों, रीति-रिवाजों, पर्व त्योहारों में समान रूप से पाया जाता है। ‘हो’ आदिवासी मानव और प्रकृति के बीच अन्योन्याश्रय संबंध पर विश्वास करते हैं और वे जीवन के इस कटु सत्य को भी स्वीकारते हैं कि प्रकृति के बिना उनका कोई अस्तित्व नहीं है। विश्व में सिर्फ आदिवासी समुदाय ही है जो प्रकृति के साथ हो रहे दोहन के खिलाफ आवाज बुलंद करने की प्रेरणा देती है। यह लेख प्रकृति पूजा रूपी धागा से विश्व के सभी आदिवासी धर्मों को विश्वास के एक सूत्र में पिरोकर उनके अस्तित्व एवं अस्मिता बनाए रखने का प्रयास करता है।

बीज शब्द :- सरना, मागे पोरोब, हो, देशाउलि, जहेर एरा, सिहबोंगा।

आदिवासी समुदाय आदिकाल से ही प्रकृति की गोद में रहते आ रहे हैं और प्रकृति की पूजा और उपासना करते आ रहे हैं। वे प्रकृति को सिहबोंगा (ईश्वर) मानते हैं। अन्य देवी-देवताओं के रूप में भी प्रकृति को ही पूजते हैं। वे

प्रकृति से भली-भाँति परिचित ही हैं। विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों, जंगल के लताओं, कंद-मूलों के स्वाद, अनेक गुणों, फल-फूलों एवं उनसे प्राप्त होने वाली दवाओं से अवगत हैं साथ ही जंगल के सभी पशु-पक्षियों से भी परिचित हैं। इस तरह जनजातीय समुदाय का प्रकृति से गहरा नाता रहा है एवं उनका प्रकृति के साथ अन्योन्याश्रय संबंध रहा है।

‘हो’ जनजाति अस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार की एक जनजातीय समूह है जो मुख्यतः झारखण्ड, उड़ीशा, पश्चिम बंगाल, बिहार और असम में निवास करती है। इनकी भाषा ‘हो’ है और वे सरना धर्म में विश्वास रखते हैं। ‘सरना’ अर्थात् सरी या सच्चा धर्म। ‘हो’ जनजाति समुदाय में पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज एवं पूजा-पाठ का विशेष महत्व है। उनका सबसे बड़ा त्योहार मागे पोरोब है, जिसे सृष्टि के त्योहार के रूप में मनाया जाता है। मागे, माँ और गे दो शब्दों से बना है, मा का अर्थ है माँ और गे का अर्थ है तुम ही हो। अर्थात् माँ तुम ही हो। इस तरह मागे पोरोब में धरती माँ की पूजा-अर्चना की जाती है। हो समाज में माँ का स्थान बहुत ऊँचा है। उनके अनुसार माँ के बिना न सृष्टि हो सकती है, न वंश वृद्धि और न ही लालन-पालन एवं शिक्षा प्राप्त की जा सकती है।

‘हो’ जनजाति समुदाय में मागे पोरोब एक सामूहिक त्योहार के रूप में मनाया जाता है। सृष्टि के इस त्योहार को माघ के महीने में ढोल-नगाड़े की धुन पर नाच-गान करते हुए पूरे हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इस त्योहार को आठ दिनों में सम्पन्न किया जाता है- अनादेर, गउ महरा, ओते इलि, हे: सकम, गुरि:लोयो, मागे मरंग पोरोब, जतरा पोरोब और हर मगेया के रूप में मनाया जाता है। मागे पोरोब में ‘देशाउली’ में दिउरी द्वारा पूजा किया जाता है। ‘देशाउली’ ग्राम का अति पवित्र स्थल होता है। देशाउली ग्राम देवता का निवास स्थल माना जाता है और जहेर थान में जहेर एरा का निवास स्थल माना जाता है। ‘देशाउली’ को पिता और ‘जहेर एरा’ को माता समतुल्य माना जाता है। गुरि: लोयो और मागे मरंग पोरोब के दिन प्रत्येक घर में अलदग (रसोईघर) में भोग चढ़ाने का रिवाज है जिसे परिवार का कोई भी व्यक्ति (स्त्री/पुरुष) द्वारा पूजा किया जाता है। भोग के रूप में दाल-चावल एवं हँड़िया को रुई सकम (सियाली पत्ता) में चढ़ाया जाता है। यह भोग ‘हाम-दूम हो को’ के लिए चढ़ाया जाता है। ये चार देवी-देवताओं-आदि वंशज देवता, आदि वंशज देवी, आदि वंशज देवता पुत्र और आदि वंशज देवता/देवी पुत्री के लिए अर्पित किया जाता है। उनके विश्वासानुसार ‘हाम-दूम हो को’ या ‘ओवा बोंगा को’ (पूर्वज-देवता) बनकर अलदग (रसोईघर) में निवास करते हैं और उनके सुख-दुःख के साझेदार होते हैं एवं उनके साथ जीवन व्यतीत करते हैं, साथ ही उन्हें बुरी आत्माओं के प्रकोप से भी बचाते हैं। इसलिए ‘हो’ समुदाय में भी विभिन्न पर्व-त्योहारों में पूर्वजों की आत्माओं का अर्दिग में पूजा-अर्चना किया जाता है।

अनादेर पवित्र मागे पोरोब का पहला चरण होता है। प्रत्येक वर्ष अनादेर के दिन ‘देशाउली’ एवं ‘जाहेर’ थान को साफ-सफाई किये जाने का रिवाज है। इस दिन से ‘देशाउली’ एवं ‘जहेर एरा’ पूजा पाठ के लिए तैयारी किया जाता है। ‘जाहेर थान’ की साफ-सफाई एवं उनके निवास थान की छावनी आदि करना ही अनादेर के नाम से प्रसिद्ध है। ‘हो’ समुदाय के मान्यतानुसार अनादेर के दिन नयी चीजों को घर लाना या खरीदना आदि शुभ माना जाता है। इस दिन कोई नयी चीजों को खरीदने से ‘जहेर एरा’ एवं ‘देशाउली’ अति खुश होते हैं। इसलिए ‘हो’ समुदाय में अनादेर के दिन औरतें अपने लिए साड़ी, गहने, कपड़े, बर्तन आदि खरीदती हैं और पुरुष अपने लिए गाड़ी, हल-बैल, तीर-धनुष, जाल, कपड़े और कृषि में उपयोग होने वाली वस्तुओं की खरीददारी करते हैं।

‘गउ महरा’ मागे पोरोब का दूसरा चरण होता है। इसका आयोजन बुरु बगिया (वनदेव) को खुश करने के लिए होता है। गाँव के बाहर एक टीले में गउ महरा का आयोजन होता है। इस दिन गाय चराने वाला गउ (ग्वाल बालक) को टीले के चारों ओर सात चक्कर लगाते हुए गाय की इक्कीस हुंकार करते हुए उस टीले को वह सर्गि से तोड़ता है। गउ को वनदेव का सवारी माना जाता है। उसके बाद ‘दिउरी एरा’ (दिउरी की पत्नी) गउ और उनकी

पत्नी को भोजन, एवं नये कपड़े देकर सम्मानित करती है।

‘हो’ जनजाति में यह मान्यता है कि गउ जो वर्ष भर उनके पशुओं को जंगलों में चराते हैं, उनको जंगली पशुओं से वनदेव ही बचाते हैं। वनदेव के नाखुश होने से जंगली पशु आदि उनका शिकार करते हैं, इसलिए बुरु बगिया (वनदेव) को खुश करने के लिए ‘मागे पोरोब’ में प्रत्येक वर्ष ‘गउ महरा’ का आयोजन होता है।

‘ओते इलि’ पवित्र मागे पोरोब का तीसरा चरण होता है। ‘ओते इलि’ का अर्थ होता है धरती माता को हँड़िया अर्पण करना। इस उपलक्ष्य में उपवास एवं व्रत का पालन करते हुए नये हण्डी में बना हुआ अरवा चावल का पवित्र हँड़िया का ही उपयोग होता है।

‘हो’ समुदाय में ‘ओते इलि’ के दिन प्रत्येक घर से हँड़िया लाकर दिउरी के हाथ के दोने में डाला जाता है और उस हँड़िया को दिउरी अपने हाथों से धरती माता को अर्पित करते हैं और धरती माता से अपनी उर्वरता बनाए रखने की कामना करते हैं तथा गाँव की खुशहाली के लिए पूर्वजों एवं सिंहबोंगा से प्रार्थना करते हैं।

‘हे: सकम’ मागे पोरोब का चौथा चरण होता है। ‘हे: सकम’ का अर्थ होता है पत्ता तोड़ना। ‘हो’ समुदाय में मागे पोरोब के अनुष्ठानों एवं घर आए मेहमानों के आदर-सत्कार और खिलाने-पिलाने के लिए पत्तों की आवश्यकता होती है जिसके लिए गाँव की स्त्रियाँ जंगलों में पत्तियाँ तोड़ने जाती हैं। जंगल में असावधानी से बड़ी घटनाएँ होती हैं। जंगली पशुओं आदि विपत्तियों से बचने के लिए ही ‘हे: सकम’ का आयोजन होता है। इसके लिए गाँव किनारे ‘गइँश्री’ में हँड़िया का माया अल्पत किया जाता है और जंगल के किनारे वनदेव को आदर एवं सम्मान देने के लिए पेड़ की डाली, पत्थर या पत्ता अर्पण करने का रिवाज है ताकि जंगल में होने वाली विपत्तियों से वनदेव उनकी रक्षा करें।

गुरि:लोयो मागे पोरोब का पाँचवाँ चरण होता है। गुरि: का अर्थ है गोबर का लेपन और लोयो का अर्थ होता है गोबर लेपन के रात का शुभ वाणी। अर्थात् मागे पोरोब के आयोजन के लिए मागे मरं पोरोब की पूर्व संध्या शुभ वाणी जानना। इस दिन अपने-अपने घर एवं आँगन को लोग गोबर लगाते हैं। इस रात को विशेषकर दिउरी, दिउरी की पत्नी, ओरोग षकोवा, ल: गुरि:, गो: बहरि, डाकुवा आदि निशि पालन का व्रत करते हैं।

‘मागे मरंग पोरोब’ मागे पोरोब का छठवाँ चरण होता है। मागे मरंग पोरोब के दिन धरती माता की पूजा-अर्चना की जाती है। हो समुदाय के अनुसार हम सबको जन्म देने वाली धरती माँ ही है। हो समुदाय के मतानुसार इस धरती में दो शक्तियाँ होती हैं। एक नर शक्ति होती है और दूसरी नारी शक्ति होती हैं। हो समुदाय में नर शक्ति को देशाउलि और नारी शक्ति को जहेर एरा माना जाता है इस दिन देशाउलि में दिउरी द्वारा लाल मुर्गा (अरा: सांडी) एवं जहेर एरा के लिए लाल मुर्गी (अरा: कलुटी) की बलि चढ़ाई जाती है।

मागे पोरोब को सृष्टि के त्योहार के रूप में मनाया जाता है इसलिए हो समुदाय में उस दिन माँ की जय-जयकार की जाती है। इस दिन माँ के जननांगों की एवं उनके गर्भाशय की जय-जयकार होती है। यह जय-जयकार दिउरी मुर्गा एवं मुगह की बलि चढ़ाते समय ही किया जाता है जैसे :-

‘कुइहोनकोअ: मागे दो अइया कुंटु बिडो:अ!

अउ मागे!!’

‘कोवाहोनको अ: मगोदो अइया बंगला दलोबो:अ:!

अउ मागे!!’ (बारदा 32)

इस प्रकार के जय-जयकार आहवान करने का रिवाज सिर्फ जाहेर थान और देशाउलि में ही होता है। देशाउलि के बाहर, रास्ते एवं घर में नहीं। लेकिन आज कल इस जय-जयकार आहवान को लोग दूसरे अर्थ में लेने लगे हैं जो गंदी बात बकने के रूप में प्रचलन शुरू हो गया है। हो समुदाय के मतानुसार मनुष्यों एवं सारे जीव-जन्तुओं की सृष्टि

पोषण एवं उद्धार के लिए सृष्टि के त्योहार के रूप में मागे पोरोब के त्योहार को मनाया जाता है।

जतरा पोरोब मागे पोरोब का सातवाँ चरण होता है। हो समुदाय में मागे पोरोब के उपलक्ष्य में पूजा करने वाला वंशज अर्थात् पूर्वज से दिउरी का काम करने वाला जो किसी कारणवश मागे पोरोब में पूजा करना बंद कर दिया हो। जतरा पोरोब में ग्रामवासी कोई सहयोग नहीं करते हैं। जतरा दिउरी वंशज दिउरी होता है जिसे जतरा पूजा करना अनिवार्य होता है। इस दिन दिउरी के आंगन से चुरई उतारा जाता है। हो समुदाय के मान्यतानुसार इसी दिन लुकु व लुकुमी दंपती बने थे।

‘हर मगेया’ मागे पोरोब का आठवाँ और अंतिम चरण होता है। हो समुदाय के मतानुसार ‘हे: सकम’ के दिन बुरु बगिया (वनदेवता) को निमंत्रण देकर गाँव बुलाया जाता है ‘हर मगेया’ के दिन उसे बिदा किया जाता है वनदेव को अपने निवास स्थल सघन वन की ओर बिदा करते समय ‘काली मुर्गी’ अर्पण करने का रिवाज है। इसी दिन दुष्ट आत्माओं को भी गाँव से भगाया जाता है। गाँव के युवक मिलकर डंडे लेकर पूरे गाँव में घूम-घूम कर दुष्ट आत्माओं को भगाते हैं और हर घर से चावल एकत्रकर गाँव के बाहर पकाकर खाते हैं।

इस प्रकार पूरे हर्षोल्लास के साथ मागे पोरोब सम्पन्न होता है। ‘हो’ समुदाय के मतानुसार मनुष्य एवं जीव-जन्तुओं की सृष्टि, पोषण एवं उद्धार के लिए मागे पोरोब में धरती माँ की पूजा की जाती है और यह भी मान्यता है कि प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करने पर प्राकृतिक आपदा के रूप में प्रकृति अपनी नाराज़गी दर्शाती है। क्योंकि आज विकास के नाम पर प्रकृति के साथ छेड़छाड़ एवं उसका दोहन हो रहा है। सिर्फ आदिवासी समुदाय ही है जो प्रकृति से प्रेम, प्रकृति की पूजा एवं उसके संरक्षण के बारे में सोचती है। उनका प्रकृति के साथ आध्यात्मिक संबंध है और प्रकृति के कण-कण में व्याप्त ईश्वर की पूजा-अर्चना करते हैं तथा प्रकृति के साथ हो रहे छेड़छाड़ एवं दोहन के खिलाफ़ आवाज बुलंद करने की प्रेरणा देती है।

‘हो’ समुदाय के प्रकृति प्रेम, प्रकृति पूजा एवं प्रकृति के संरक्षण की परम्परा का अध्ययन साहित्य के पारिस्थितिक स्त्रीवाद सिद्धांतों के आधार पर किया गया है और ‘हो’ जनजाति के पूर्वजों कि आत्मा में विश्वास उनके साथ प्रत्यक्ष जीवन एवं उनकी पूजा अर्चना की विचारधारा का अध्ययन एडवड टेलर के जीववाद (एनिमिज़्म) सिद्धांत के आधार पर किया गया है। डॉ. केक्त वनजा ‘साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन’ नामक पुस्तक में लिखती हैं कि - ‘पारिस्थितिक स्त्रीवाद एक अंतर अनुशासनात्मक आन्दोलन है जो प्रकृति, राजनीति, स्त्री आध्यात्मिकता के संबंध में नए ढंग से सोचने के लिए प्रेरित करता है।’

आज आदिवासी समुदाय अज्ञानतावश एवं आधुनिकता की आड़ में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और अन्य धर्मों की पूजा प्रकृति को अपनाने की वजह से बिखरकर अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्ष कर रही है। आज विश्व के समस्त आदिवासियों के ‘आदिधर्म’ का रहस्य हमारे समक्ष एक चुनौती के रूप में खड़ा है। विश्व का समस्त आदिवासी समुदाय ही है जो प्रकृति की पूजा एवं उनकी रक्षा करते हैं। प्रकृति पूजा एवं अपने पूर्वजों की आत्माओं में विश्वास, उनके साथ प्रत्यक्ष जीवन एवं उनकी पूजा अर्चना ही विश्व के सभी आदिवासी समुदायों में समान रूप से पाया जाता है। यह लेख प्रकृति पूजा एवं पूर्वजों की आत्माओं की पूजा अर्चना रूपी धागा से विश्व के समस्त आदिवासी धर्मों को विश्वास के एक सूत्र में पिरोकर उनकी गरिमा, अस्मिता, अस्तित्व एवं उनके रीति-रिवाज को बनाये रखने का प्रयास करता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. पुरती, धनुर सिंह (2011), हो-दिसुम हो होनको, चाईबासा : जश्न डीनी सेन्टर फॉर हो स्टडीज।
2. पिगुवा, लक्ष्मी (2018), हो लोक साहित्य इलाहाबाद : केक्त केक्त पब्लिकेशन्स।
3. बारदा, दास राम, हो संस्कार, चाईबासा : आदिवासी हो समाज महासभा।
4. सिन्हा, आदित्य प्रसाद (2006), हो लोककथा : एक अनुशीलन, वाराणसी : किशोर विद्या निकेतन।



Disturbance in American Society due to Second World War: A Study of the Works of Edward Albee

-Dr. Ashok Kumar

Assistant Professor of English, Govt. College Mahendergarh, Haryana

Abstract :-

The decades of the 1950s and 60s created disturbances in the minds of people, the main reason being the Second World War which caused havoc in the society by its great destruction. The War not only destroyed the industries, the economical base, but also destroyed the peace of human beings, as they lost their near and dear ones. This loss caused the mental trauma since they did not have any satisfying relationship with their peers. Many children were rendered homeless in Europe who later became citizens of America and Australia. Edward Albee witnessed this destruction of mankind, therefore, he portrays the characters who are suffering from psychological problems. Suddenly we find that Albee's characters express some unknown fear and thus feel perturbed. Albee in his plays points out this disturbance by some kind of absurdity and depicts the nihilistic attitude of the characters. Some of the protagonists like Martha, George, Nick and Honey in *Who's Afraid of Virginia Woolf?* feel disturbed because of their inability or unwillingness to produce children and are compelled to live on imagination.

Introduction :-

Albee, through these protagonists, expresses that ultimately it is reality which the protagonist has to go through and that no longer can the protagonist survive with the imaginative child or person who actually does not exist. He, like Robert Frost, agrees that earth is the place to love. Just like Frost's idea shown in the poem *Birches*, Albee, too, believes that earth (reality) is to be loved :

Earth's the right place for love :

I don't know where it's likely to go better.

I'd like to go by climbing a birch tree,

And climb black branches up a snow – white trunk

Toward heaven, till the tree could bear no more.

But dipped its top and set me down again.

That would be good both going and coming back. (Frost, *Birches* 82)

Thus, for both – Albee and Frost – illusion (birch swinging) is a medium to get “away from earth awhile” but finally they come back and embrace reality because earth is the right place to live.

Albee deals with psychological disturbances of his civilization and suggests a remedy for them through the psychoanalysis. Psychoanalysis, thus, is not only helpful for sick (mentally) people to overcome their weaknesses, but it also helps normal people to overcome the disturbing elements residing in their mental apparatus i.e., in unconscious, sub-conscious and conscious. Psychoanalysis, by disturbing our mind, makes us capable to think and to find out reasons and consequences of our thoughts and actions. A psychologist can be well compared to a biographer, as they both share an interest in reconstructing history for the sake of better understanding of human being; but a psychoanalyst is a step ahead to the biographer because he focuses more on the unconscious

understanding of human being.

Psychoanalytic study is a tight blow to man's ego and imagination in which he is the sole emperor of his body, mind and the universe. Man, bound by his nature, always thinks himself to be the master of this universe; but time and again there have been certain oppositions to previous great efforts of mankind to preserve his own sense of self importance. The two major blows to the naïve self-love of man were at the hands of science. The first blow was when man learnt that the earth was not the centre of this universe but only a tiny fragment of a cosmic system of scarcely imaginable vastness. The second blow fell when researches destroyed man's supposedly privileged place in creation and proved his descent from animal kingdom. Despite these two blows, another revolutionary thought or perplexing 'revolution' came from the psychologists in the twentieth century. The third and the most wounding blow fell from the psychological research which demonstrated that ego is not the master in human body but it is just a slave to the unconscious mind. Along with this blow psychoanalytic study has shaken man's idealism with various questions and has proved an important tool for bringing humanity back to earthly level. This is what takes place in Albee's works, as in all his plays Albee attempts to bring illusionary man back to the earth of reality.

Thus man, who knows how to distinguish himself from other animals in the context of anatomy and physiognomy as a conscious reflecting being gifted with speech, lacks all the criterion for self-judgment. In simple words, "Man is an enigma to himself" (Jung, Undiscovered Self 31). He is on this planet a unique phenomenon and cannot be understood so easily. Jung compares man with a hermit who knows that in respect of comparative anatomy he has affinities with the anthropoids but, to judge by appearance, is extraordinarily different from his cousins, especially in respect to psyche. This idea is enough to arouse the most violent doubts and resistances, so one needs help of psychoanalytic study to assert the valuelessness of individual in comparison with the vastness of this universe and its unanimous assets.

Thus, this self-proclaimed lord of earth, air and water just hangs on the historical fate of nations. The proud picture of man is only an unfortunate illusion which is counterbalanced by reality – a very different reality. In this reality this lord of elements hugs to his bosom notion which stumps his dignity and worthiness, and finally turns man's autonomy into absurdity. Thus, for accepting the truth, which he knows but does not accept, and to understand his own psyche the help of psychology is required. In order to understand man, it is equally important to understand his psyche, as human psyche is "an insolvable puzzle and an incomprehensible wonder, an object of abiding perplexity" (Jung, Undiscovered Self 32). Albee's characters do possess this characteristic as they are not able to understand their own psyche – their actions and desires. So to say, psychoanalytical study is an important tool for uncluttering the minds of characters.

It is the specific task of psychology to provide the knowledge and understanding of human psyche. It is, therefore, accepted that for the study of human behaviour psychoanalysis remains a vital instrument. Without psychoanalytic theory, learning models of human behaviour would seem futile and if our understanding of human behaviour is left undone we shall be left to wonder in a circular maze of undefined reinforcement. Thus, with the dawn of twentieth century psychoanalysis became a new ray of hope that smoothed away the bafflement of mental and moral stress by paying attention to the reasons of these bafflements. Floyd Dell described that the psychoanalysis is destined to cure, "inability to achieve results in one's work commensurate with the efforts put forth; infelicity in personal relationships, and a sense of not being able to get at grips with the realities of life" (qtd. in Hale 401). Psychoanalytic study covers a large number of problems which American civilization has faced. This is the *raison d'être* that psychoanalysis spread its wings in the United States very quickly.

Freud, the father of psychoanalytic study, though never was an undisputed and unqualified favourite in America, yet nowhere else the idea of psychoanalysis triumphed on such a scale. The reception of psychoanalysis in America can be well understood with the fact that "translations of Freud's books appeared almost simultaneously

in England and America, from the period before the First World War and thereafter Freud found to his consternation a far more responsive audience in the United States” (Roazen 372). William James – one of America’s greatest philosophers was aware of the writings of Freud as early as the 1890s. James welcomed Freud and other psychologists’ contributions and said, “They can not fail to throw light on human nature” (qtd. in Roazen 372).

Sigmund Freud, the father of psychoanalytic study, paid his only visit to the United States when he was invited to Massachusetts to celebrate the twentieth anniversary of Clark University in 1909. He visited United States with his two disciples – Carl Jung and Sandor Ferenczi. At this time Freud and psychoanalysis became a valuable part of reality. Leaders in American medicine took an early interest in Freud’s writings. During this first and the only visit to the United States, within American psychiatry, a large number of scientists started “moving from somatic to psychological explanations of disease. The ground had been readied for a new comprehensive theory that would focus on causes and cures related to sexual and psychological development” (Kramer 128). During the visit, Freud delivered five lectures to a rapt audience and lay people. Freud presented a historical review of psychoanalysis, starting with Breuer’s Anna O. case. The second lecture pointed how the conflict between the desire and social or moral values results in repression. The next lecture explained dream interpretation. Then came a lecture on infantile sexuality and Oedipus complex, and the final lecture was a global defense of psychoanalysis. Though some blamed Freud as a “man obsessed with fixed ideas” (Kramer 130), yet various thinkers defended Freud’s methods, such as Freud’s American translator A. A. Brill. These lectures sold well in books and made psychology a popular subject in United States, and writers and thinkers started concentrating on unconscious.

This focus on unconscious had an optimistic slant in America. Americans were not mistaken in seeing Freud as an optimist because Freud had hinted at the positive effect of psychological study. There were various questions related to psychoanalysis in America – why did America welcome psychoanalysis more warmly than any other country? What was the reason which created an affinity between psychoanalysis and American condition? To find out the answers of the above mentioned questions, one has to survey the whole field of psychoanalysis which Freud used for the ‘practical Americans.’ In the Clark lectures, Freud’s synthesis and elements were presented in his system up to 1914, and there were appropriate emphasis on American environment. These lectures emphasized practicality, optimism and sublimation. So Freud came so near in understanding the cause of American problems and suggested a cure too. In this conference William James, the pioneer of psychoanalysis in United States met Freud and Jung, and appreciated as well as condemned the views of European psychologists on various grounds.

Americans modified psychoanalysis to solve a conflict between the radical implication of foreign psychologists’ views and the pulls of American culture. Americans, in order to simplify psychoanalysis, took interest in Freud’s system as a coherent theory. Freud and the Americans held a number of similar intellectual as well as moral assumptions, such as history and cause were equivalent, to trace origins in the past is to discover the causes of the present, development of the individual reflects in microcosm the development of the race. Psychoanalytic study and American literature were going on the same track as the purpose of both, in one way or the other, was same. But a large number of American psychologists differ from Freud on the ground of biology and sexuality because they are more concerned with other ideas such as – confrontations of reality, psychic imbalances, individuals not from biological point-of-view but from collective consciousness (social). Nathan G. Hale rightly remarks, “Most of the Americans developed psychoanalysis into an ethical system. It’s first commandment was to face ‘reality’, to know one’s own inner desires and better to control and sublime them” (346). The same purpose is of American literature as well. Thus psychoanalytic study and literature together can cure the society and civilization from some heart-rending diseases.

References :-

1. Artaud, Antonin. *The Theater and its Double*. Trans. Mary Caroline Richards. New York : Grove, 1958. Print.
2. Atkinsons, Rita et. al. *Introduction to Psychology*. 9th edition. San Diego: Harcourt Brace Jovanovich Pub, 2017. Print.
3. Becker, Raymond De. *The Understanding of Dreams or the Machinations of the Night*. London: George Allen & Unwin, 1968. Print.
4. Bertens, Hans. *Literary Theory: The Basics*. London & NY: Routledge, 2011. Print.
5. Camus, Albert. "Preface to the American University Edition of *The Outsider*." *Albert Camus: Selected Essays and Notebooks*. Ed. and trans. Philip Thody. Britain: Penguin Books, 1970: 207-208. Print.
6. Dahlstorm, Daniel O. *Modern European Philosophy: Heidegger's Concept of Truth*. Cambridge: Cambridge UP, 2011. Print.
7. Davidoff, Linda L. *Introduction to Psychology*. 2nd ed. New York: McGraw-Hill Book Co, 1980. Print.
8. Debusscher, Gilbert. *Edward Albee: Tradition and Renewal*. Brussels: Center for American Studies, 2017. Print.
9. Kritzman, Lawrence D, ed. *The Columbia History of Twentieth Century French Thought*. New York: Columbia UP, 2016. Print.
10. Lacan, Jaques. *The Four Fundamental Concepts of Psycho Analysis*. Trans. Alan Sheridan. Ed J. Alain Miller. New York: W W Norton & Co, 1981. Print.
11. Lodge, David, ed. *20th Century Literary Criticism*. London: Longman, 1972. Print.
12. Magill, Frank N, ed. *Critical Survey of Drama: English Language Series*. New Jersey: Salem P, 2015. Print.
13. Mann, Bruce J, ed. *Edward Albee: A Casebook*. New York: Routledge, 2003. Print.
14. Marx, Leo. *The Machine in the Garden: Technology and the Pastoral Idea in America*. New York: Oxford UP, 1964. Print.
15. May, Rollo. *Psychology and the Human Dilemma*. New Jersey: D Von Nostrand Co, 1967. Print.
16. Narasimhaiah, C. D, ed. *Asian Response to American Literature*. Delhi: Vikas Pub, 1972. Print.
17. Paolucci, Anne. *From Tension to Tonic: The Plays of Edward Albee*. Washington DC: Bagehot Council, 1973. Print.
18. Perrin, Linda, ed. *Understanding Psychology*. 4th ed. New York: Random House, 1986. Print.
19. Roudane, Matthew C. *Understanding Edward Albee*. Columbia: U of South Carolina P, 1987. Print.
20. Rutenberg, Michael E. *Edward Albee: Playwright in Protest*. USA: DBS Pub Inc, 1969. Print.
21. Saddik, Annette J. *Contemporary American Drama*. Edinburgh: Edinburgh UP, 2017. Print.
22. Scott, Giant Valley. *Edward Albee: A Reference Guide*. Boston: GK Hall, 1987. Print.
23. Segal, Robert A. *Myth: A Very Short Introduction*. New York: Oxford UP, 2016. Print.
24. Sethi, Monica. *Dream and the Absurd: Edward Albee*. New Delhi: Doaba Pub, 2017. Print.
25. Stenz, Anita Maria. *Edward Albee: The Poet of Loss*. Hague: Mouton Pub, 1978. Print.
26. Storey, Ian C. and Arlene Allan. *A Guide to Ancient Greek Drama*. USA & UK: Blackwell Pub, 2015. Print.
27. Szondi, Peter. *Theory of Modern Drama*. Cambridge: Polity P, 1987. Print.
28. Thody, Philip, ed and trans. *Selected Essays and Notebooks*. England: Penguin Books, 1970. Print.



मंजूर एहतेशाम के उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' में मध्यवर्गीय चेतना सामाजिक पक्ष

- छिन्द्र सिंह

शोधार्थी पीएच.डी. (हिन्दी), हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)

मानव के संगठित समूह को समाज कहा जाता है। प्रत्येक मानवीय समाज में सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए उस समाज के अपने नीति नियम या रीतियां होती हैं। समय के साथ-साथ इनमें परिवर्तन होता रहता है। समाज में प्रचलित परम्परा तथा रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज एवं प्रथाएं जब रूढ़ होकर पिछड़ जाती हैं, तो लोगों के लिए कठिनाइयों का कारण बनती हैं। जिसका प्रभाव व्यक्ति के आचरण, पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक व्यवहार पर पड़ता है। समाज की ऐसी परम्पराएं जब नवीन दृष्टिकोण के मार्ग में रोड़ा अटकाती हैं तो चेतना सम्पन्न साहित्यकार इन कुरीतियों तथा हीन परम्पराओं का चित्रण करके उनके खंडन कि लिए जनमानस को चेतन व प्रेरित करने का कार्य करता है। मंजूर एहतेशाम ऐसे ही उपन्यासकारों में से एक है। उन्होंने अपने साहित्य में भारतीय मध्यवर्गीय समाज के विविध पक्षों का चित्रण किया है। अपने कथा साहित्य में मुख्य रूप से उन्होंने मुस्लिम समाज के प्रसंगों को उठाया है। आलोच्य उपन्यास में भी मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज के विविध पक्षों-आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक का भी चित्रण किया है। साथ ही इन विविध पक्षों से जुड़ी समस्याओं को भी यथार्थ धरातल पर अभिव्यक्त किया है। 'दास्तान-ए-लापता' में उन्होंने मध्यवर्गीय लोगों की जीवन शैली के विविध पक्षों के प्रति चेतना को अभिव्यक्त किया है। मंजूर एहतेशाम के उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में उन्होंने मध्यवर्गीय लोगों की जीवन शैली के विविध पक्षों के प्रति चेतना को अभिव्यक्त किया है। मंजूर एहतेशाम के उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' में मध्यवर्गीय मानव का अस्तित्व अतीत के धुधलके में कहीं खोया हुआ है। उमा त्रिपाठी के अनुसार, 'यह उन मध्यवर्गीय अस्तित्वों के लापता होने की दास्तान है जो समाज, अपने परिवार, अपनी व्यवस्था के दायरे से कहीं दूर होते जा रहे हैं। वे अपने लापता अस्तित्व को पाने के लिए छटपटाते हैं।' अतः उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन के इसी स्वरूप का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र जमीर है जो उपन्यास का नायक है और उसके आंतरिक जमीर का द्योतक भी है। जीवन संघर्ष में मानव के इसी जमीर के लापता होने की कहानी उपन्यासकार ने प्रतीक रूप में 'जमीर अहमद खान' के माध्यम से प्रस्तुत की है जो बदलती हुई परिस्थितियों में स्वयं को बदलने की कोशिश करता है और इस कोशिश में वह अपने भीतर उस पुराने आदमी से कहीं दूर होता चला जाता है जो बदलाव से मेल बनाने में अपनी भावात्मक- शिशु शिकायतों के जरिये बाधाएं भर उत्पन्न करता है भीतर बाहर दोनों जगह।

हर व्यक्ति अपना पूर्णतः विकास समाज में रहकर ही कर पाता है। प्रत्येक समाज में ऐसी रूढ़ियां होती हैं जिन्हें त्यागना बहुत आवश्यक होता है, परन्तु अधिकतर लोग उन रूढ़ियों का अंधानुकरण करते हैं। मध्यवर्ग समाज का वह चेतन वर्ग है, जिसको बुद्धिजीवी वर्ग की संज्ञा भी दी जाती है नासिर अहमद खान ने मध्यवर्ग के बारे में कहा है- 'उनके अपने पूर्वाग्रह, रुचियों तथा अरुचियाँ, शिष्टाचार, रीति-रिवाज और आचार-विचार हैं जिन्हें स्पष्ट न होते हुए भी स्पष्ट किया जा सकता है।'

इस प्रकार मध्यवर्ग का अपना जीवन दर्शन है जो उच्च तथा निम्न से भिन्न है। इसी कारण मध्यवर्ग की जीवन शैली तथा उनके आचार-विचार अन्य दोनों वर्गों से भिन्न होते हैं। यह वर्ग बौद्धिक श्रम पर आधारित कार्य करता है और अपनी स्थिति के विविध पक्षों सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक के प्रति भी चेतना रखता है इसलिए उसे चेतना सम्पन्न वर्ग भी कहा जाता है। इसी संदर्भ में वीणा गौतम कहती है- 'मध्यवर्ग का बहुल भाग व्यक्तिवादी, महत्त्वकांक्षाओं से युक्त स्वार्थी तथा शोषित वर्ग का विरोधी वर्ग है, लेकिन यह भी तय है कि शोषित वर्ग के विरोध में विचार और आंदोलन पैदा करने वाला जनसमुदाय भी मध्यवर्ग से ही आता है, अतः व्यवस्था का उससे घबराना और हमेशा लोभ-लालच के दाने डालते रहना संभवतः इसी बात का प्रमाण है।' इस प्रकार मध्यवर्ग अपनी सामाजिक स्थिति के प्रति चेतन वर्ग है जो अपने विकास के लिए परिवर्तन को स्वीकार करने तथा उसमें रुकावट डालने वाले तत्त्वों का विरोध करने के प्रति जागरूक है। आलोच्य उपन्यास में मध्यवर्गीय चेतना के सामाजिक पक्ष का विश्लेषण निम्नलिखित अनुसार किया जा रहा है:-

1. संबंधों के प्रति चेतना :-

समाज मानव के आपसी संबंधों का जाल है। समाज में मानव के अन्य व्यक्तियों से विभिन्न स्तरों पर संबंध पाए जाते हैं। पारिवारिक संबंधों का इनमें विशेष स्थान है। बदलती परिस्थितियों ने पारिवारिक संबंधों को प्रभावित किया है। परिवार में व्यक्ति के घर के अन्य सदस्यों के साथ विभिन्न संबंध पाए जाते हैं जिनमें माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी इत्यादि के संबंध प्रमुख हैं। संपत्ति का परिवार में विशेष महत्त्व होता है तथा घर के सभी बेटों का उस पर समान अधिकार होता है। पिता की मृत्यु के पश्चात अक्सर पुत्रों में संपत्ति के बंटवारे को लेकर झगड़ा होता है और भाइयों के आपसी संबंध में दरार आ जाती है। 'इसी बात से सचेत बड़े अब्बा' उपन्यास में अपनी संपत्ति का बंटवारा अपने पुत्रों में जीते जी कर जाते हैं- 'मैं यह मौका ही नहीं देना चाहता कि बाद में भाई-बहनों में कोई झगड़ा या नाइतिफाकी हो बड़े अब्बा ने ऐलान किया था और उनका काह बाकी सारे परिवार के लिए कानून का महत्त्व रखता था। देखते ही देखते नापतोल कर उन्होंने एक बड़े घर की दीवारें उठाकर पाँच खण्डों में विभाजित कर दिया था। लोग खामोशी से आँसू पोछते सारा तमाशा देखा किए थे, लेकिन बड़े अब्बा की यह दलील कि यह आँसू बाद के कलह और आपसी दुश्मनियों से बेहतर है, अकाट्य थी।' इस प्रकार बड़े अब्बा संपत्ति के कारण होने वाले पारिवारिक कलह से अवगत होते हुए पहले ही उसका समाधान कर देते हैं ताकि आगे चलकर पारिवारिक संबंधों में फर्क न पड़े।

2. विवाह के प्रति चेतना :-

भारतीय समाज में विवाह को सामाजिक स्वीकृति प्रदान की जाती है। इसलिए वैवाहिक संबंधों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। सदियों से शादी के लिए वर-वधु का चुनाव कुल-मर्यादा को देखकर किया जाता रहा है, लेकिन आधुनिक काल में आकर स्वेच्छा से अपना साथी चुनने की प्रवृत्ति भारतीय समाज में प्रचलित हुई है। यद्यपि पुरानी रूढ़िवादी सोच के कारण अधिकतर बड़े बुजुर्ग खानदान, कुल, पद-प्रतिष्ठा आदि को अदिक महत्त्व देते हैं, परन्तु युवा वर्ग शादी विवाह में वर-वधु चुनने के फैसले का पक्षधर है उसकी इसी चेतना को मंजूर एहतेशाम ने आलोच्य उपन्यास के पात्र जमीर अहमद खान के संदर्भ में चित्रित किया है- 'बुनियादी फैसला तो आपा, आज के दौर में खुद लड़के-लड़की को ही करना चाहिए। वह जमाने गए जब जोड़े आसमान पर बना करते थे। हम तुम्हारी इस बात से सौ-फीसदी सहमत हैं। बड़े होने के नाते दूसरे लोग थोड़ी रहनुमाई तो कर सकते हैं, लेकिन अपना रास्ता तो खुद लड़के और लड़की को ही चुनना पड़ेगा।' इस प्रकार समाज में जीवन साथी चुनने का अधिकार भी लड़के-लड़की को दिया जाना चाहिए इसके प्रति भी मध्यवर्ग में चेतना आई है।

3. मध्यवर्गीय नारी चेतना :-

भारतीय समाज में नारी को सदियों से पुरुष के अधीन रहना पड़ा है। पुरुष प्रधान समाज ने उस पर अनेक

प्रकार के प्रतिबंध लगाए और उसे घर की चारदीवारी के भीतर तक ही सीमित रखा। भारतीय समाज में नारी संबंधी कई कुप्रथाओं का प्रचलन भी रहा है, पर्दा प्रथा इनमें से एक है। मुस्लिम समाज में स्त्रियों को पर्दा करने का रिवाज आज भी प्रचलित है, लेकिन आधुनिक सभ्यता के प्रचलन ने नारी को अपनी स्थिति के प्रति जागृत किया है। आलोच्य उपन्यास में बूढ़े व्यक्ति की पत्नी पर्दे का बहिष्कार करती है जब बूढ़े अब्बा उसे पर्दा करने के लिए कहते हैं, 'अरे भाई, मियाँ आ गए, बूढ़े व्यक्ति ने बहुत आजिजो से अपनी बूढ़ी पत्नी को संबोधित किया था और उस दिन पर्देदार महिला ने भी उससे अपना पर्दा तोड़ दिया था। उसे सारा परिवर्तन बहुत अजीब लग रहा था और उसका कारण समझ से परे था।' इस प्रकार मध्यवर्गीय नारी परम्परावादी रूढ़ियों से खुद को मुक्त करना चाहती हैं।

4. आत्म निर्भरता की चेतना :-

मंजूर एहतेशाम ने आलोच्य उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन के विविध पक्षों तथा मध्यवर्ग की विभिन्न प्रवृत्तियों का चित्रण किया है जिनमें से आत्म चेतना इस वर्ग की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। आत्म चेतना के कारण ही मध्यवर्गीय व्यक्ति आत्म निर्भर होने के प्रति सचेत रहता है, खासतौर पर युवा वर्ग, इन युवाओं का विवाह से पूर्व आत्मनिर्भर होना या अपने पाँव पर खड़ा होना जरूरी माना जाता है। उपन्यास में जमीर का दोस्त इस तथ्य से अवगत है कि बेरोजगारी की स्थिति में शादी करना सही नहीं, क्योंकि जीवन में आर्थिक समस्याएँ सामने आती हैं। इसी कारण वह बेरोजगारी की स्थिति में जमीर के शादी संबंधी फैसले पर हैरानी व्यक्त करता है, क्योंकि वह इस स्थिति से अवगत है इसी कारण वह जमीर में प्रश्न करता है- 'आखिर तुम्हें इतनी जल्दी क्यों है?' जब जमीर अहमद खान ने राहत से शादी करने के निर्णय की सूचना विवेक को दी थी तो उसने आश्चर्यचकित होकर पूछा था।

'शादी करते वक्त आदमी कम से कम खुद अपने पैरों पर तो खड़ा हो।' अतः विवेक का यह कथन शादी के निर्णय से पूर्व आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित करता है।

5. नशे के खिलाफ चेतना :-

भारतीय समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ प्रचलित हैं जिसमें नशे भी एक हैं। नशे के कारण परिवार में कलह क्लेश उत्पन्न होता है। नशा करना भारतीय समाज में अच्छा नहीं माना जाता। शराब तथा अन्य नशे करने वालों को बुरी नजर से देखा जाता है। मुस्लिम मजहब में भी शराब पीना अच्छा नहीं माना जाता, क्योंकि शराब के नशे में व्यक्ति खुदा और बंदे के फर्क को भूल जाता है जिसकी पुष्टि उपन्यासकार ने आलोच्य उपन्यास में की है- 'कुछ लोग तो नशे में खुद को खुदा ही समझने लगते हैं। शायद उन कमजोरों की वजह से मजहब में शराब मना की गई हो।' इस प्रकार इस्लाम मजहब में शराब को अच्छा नहीं माना जाता। मजहब की इसी भावना के प्रति जब जमीर में चेतना भाव उत्पन्न होता है तो वह अपने शराब पीने की लत पर ग्लानि महसूस करता है और उसे अपना शराब पीना हराम लगता है जिसका चित्रण उपन्यास में इस प्रकार हुआ है- 'शराब पीना जमीर अहमद खान को अपने जीवन का पहला एक ऐसा तकनीकी हराम काम लगा था जिसको करने के बाद सुधारा नहीं जा सकता था। बहरहाल, विभाजन हो चुका था और यथार्थ को खंदापेशानी कबूल करने की खातिर उसने जल्दी-जल्दी सोड़े के कुछ और घूंट लिए थे और कुछ समय बाद खुद को जागृति की ऐसी अवस्था में पाया था जिसका न तो पहले कोई अनुभव था, न ही तसव्वुर।' इस प्रकार जमीर को शराब पीना एक बुराई लगती है और इसी बुराई के बारे में जागृत होना उसकी चेतान को स्पष्ट करता है।

6. शिक्षा के प्रति चेतना :-

शिक्षा व्यवस्था अज्ञानता के अंधकार को मिटाने का सर्वोत्तम साधन है। यह एक निर्वाद सत्य है कि शिक्षा किसी भी राष्ट्र या समाज की प्राणवायु, उसकी प्रेरणा और ऊर्जा है। राष्ट्र का भविष्य उसके द्वारा हासिल किए गए शैक्षणिक स्तर पर निर्भर करता है। अकसर शिक्षा ग्रहण करते समय विद्यार्थी विषयों के चुनाव में अनदेखी कर देते

हैं जिसके बारे में उन्हें बाद में एहसास होता है। इसलिए विद्यार्थी को उसके प्रति चेतन रहना चाहिए, क्योंकि विषय चुनाव में की गई गलती से भविष्य में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जमीर ने अपने बचपन में अपनी पढ़ाई के दिनों में विषय चुनाव में अनदेखी बरती जिसके कारण उत्पन्न मुश्किलों का उसे भली-भाँति एहसास बाद में होता है और वह पछताता भी है। इसी वस्तु स्थिति से चेतन वह दूसरों से विषय चुनाव के लिए सजग रहने की बात उपन्यास में करता है- 'लिखने पढ़ने का मोह दरअसल जमीर अहमद खान की पुरानी कमजोरी थी और आज तो वह यकीन के साथ कह सकता था कि स्कूल में अगर अपने विषयों के चुनाव में गड़बड़ न की होती, तो एक बिल्कुल दूसरी जिंदगी जी रहा होता।' इस प्रकार उपन्यास का लेखक शिक्षा में विषय चयन के प्रति चेतन है। जिसका आभास उसे बाद में होता है। इसलिए वह दूसरे विद्यार्थियों को भी इसके प्रति चेतन रहने की सलाह देता है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' में मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का चित्रण किया है जिसमें उन्होंने सामाजिक जीवन के प्रति मध्यवर्गीय चेतना को अभिव्यक्त किया है। शिक्षा के प्रसार तथा आधुनिकता के परिणामस्वरूप मध्यवर्गीय जीवन के विविध पक्षों में परिवर्तन आया है और नई चेतना का उदय हुआ है जिसका चित्रण आलोच्य उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास में संघर्षरत मध्य वर्ग के सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्त किया गया है। इसके साथ ही आपसी संबंधों, शिक्षा के प्रति, नशे के खिलाफ, नारी की स्थिति के प्रति चेतना तथा युवा वर्ग की आत्मनिर्भर बनने जैसी बातों में चेतना अभिव्यक्त की है। इस प्रकार मंजूर एहतेशाम ने मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज की सामाजिक संदर्भों से संबंधित चेतना को आलोच्य उपन्यास में चित्रित किया गया है।

संदर्भ-सूत्र :-

1. अनु कुमारी, मंजूर एहतेशाम के कहानी संग्रह में सवेदना और शिल्प, नीहू प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013, पृ. 23
2. वीणा गौतम, आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1987, पृ. 25
3. वही, पृ. 25
4. मंजूर एहतेशाम, 'दास्तान-ए-लापता', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 182
5. वही, पृ. 193
6. वही, पृ. 182
7. वही, पहला संस्करण, 2010, पृ. 31
8. वही, पृ. 92
9. वह, पृ. 92
10. वही, पृ. 92



समाज में बढ़ते अपराध, कारण और निवारण

-डॉ० आभा शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय (बी०एड०) वी०एस०एस०डी० कॉलेज, कानपुर

समाज के विषय में हम सभी लोग बात करते हैं लेकिन वास्तव में समाज क्या है, इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं, हम समाज की चर्चा प्रतिदिन करते हैं लेकिन वास्तविक समाज क्या है इसे नहीं जानते। अतः समाज के सही अर्थ को जानने के लिए समाज को जानना होगा।

समाज से तात्पर्य एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रिया-कलाप करते हैं। समाज लोगों का ऐसा समूह होता है जो अपने अन्दर के लोगों के मुकाबले अन्य समूहों से कभी कम मेल-जोल रखता है। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए अलग-अलग रस्मों-रिवाजों का पालन करते हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाइवर का कथन है कि “सामाजिक सम्बन्धों का ज्ञान ही समाज है।” इस प्रकार जहाँ जीवधारी है वही समाज सम्भव हो सकता है। मानव शिशु के लिए समाज नितान्त आवश्यक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज की मानव जीवन में बहुत उपयोगिता है, समाज के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है, लेकिन आजकल समाज का रूप बदल रहा है क्योंकि समाज में अपराध बढ़ते जा रहे हैं। वैसे तो बढ़ते अपराधों के खिलाफ सरकार भी कभी कदम उठा रही है लेकिन फिर भी अपराधों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इन दिनों देश भर में हत्या, चोरी, लूट, बलात्कार, आत्महत्या जैसी घटनायें अधिक होने लगी हैं, आम आदमी अपराध की इन घटनाओं से सहम गया है जब व्यक्ति की आँख खुलती है तो सुबह अखबार पढ़ते वक्त ज्यादातर खबर अपराध की होती है, जो कि उसके पूरे दिन को प्रभावित करती है और इनका प्रभाव इतना अधिक हो जाता है कि कभी-कभी रात्रि में स्वप्न बनकर उसके मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं। इस प्रकार ये अपराध समाज की एक अलग छाप छोड़ रहे हैं। अगर देखा जाये कि आखिर ये अपराध क्यों बढ़ रहे हैं, इनका मुख्य कारण क्या है तथा ये अपराध किस प्रकार के हैं।

यहाँ एक बात और विचारणीय है कि आखिर अपराध है क्या? इसका अर्थ यही है कि जब हम नियमों का उल्लंघन करते हैं तो वह एक अपराध बन जाता है, या फिर हम समाज विरुद्ध कोई कार्य करें तो वह भी अपराध की श्रेणी में आता है। आज समाज में बाल अपराध की घटनायें बहुत ज्यादा बढ़ती जा रही है। ऐसे बालक जो समाज द्वारा निर्मित सामाजिक, आर्थिक, नैतिक व शैक्षणिक नियमों का उल्लंघन करते हैं, बाल अपराधी कहलाते हैं आजकल अपराध के अन्तर्गत चोरी करना, झूठ बालना, जेब काटना, नशा करना, लड़कियों से छेड़खानी करना, बलात्कार, वर्जित स्थानों पर प्रवेश करना, सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि पहुँचाना इत्यादि सभी बाल अपराध की श्रेणी में आते हैं, आजकल युवा इतने गलत रास्ते पर चलकर समाज को बहुत नुकसान पहुँचा रहा है लेकिन हमने कभी ये सोचा है कि इन अपराधों का कारण वास्तव में क्या है इस पर अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि बाल अपराध या अपराध के कुछ निम्न कारण हैं जैसे-

(1) आनुवाशिक कारण, (2) व्यक्तिगत कारण, (3) शारीरिक दोष, (4) पारिवारिक कारण, (5) कठोर अनुशासक, (6) बुरी संगति, (7) महत्वाकांक्षाएँ, (8) सांवेगिक विकास का अभाव, (9) आर्थिक कारण इत्यादि। ये ऐसे कारण हैं जिनके कारण युवा कभी अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए तो कभी आर्थिक स्थिति के कारण अपनी कमी को पूरा करने के लिए तो कभी प्रेम प्रसंगों आदि की पूर्ति करने के लिए बहुत गलत-गलत कार्य कर रहा है, और इन कारणों से समाज में अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है।

अगर हम आँकड़ों की बात करें तो गाँवों के मुकाबले शहरों में बाल अपराध अधिक बढ़ रहे हैं।

आँकड़े :-

देश में बच्चों के खिलाफ हर दिन 350 अपराध उत्तर प्रदेश में हैं, बाल अपराधों का आकड़ा वर्ष 2007 में 1.8 प्रतिशत से बढ़कर 2017 में 28.9 प्रतिशत हुआ, इस प्रकार नेशनल क्राइम रिकार्ड्स ब्यूरो (एन0सी0आर0बी0) की 2016-17 रिपोर्ट में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश बच्चों के खिलाफ अपराधों में अक्वल रहे हैं। मध्य प्रदेश में 19,038 और उत्तर प्रदेश में 19,145 मामले सामने आये हैं दोनों राज्यों में अलग-अलग 14.8 प्रतिशत अपराध दर्ज हुए हैं। इस दौरान झारखण्ड में सबसे ज्यादा 73.9 प्रतिशत, तो मणिपुर में 18.7 प्रतिशत की कटौती हुई।

इस प्रकार एन0सी0आर0बी0 के आँकड़ों के अनुसार देश में 2018 में महिलाओं के खिलाफ अपराध के 3,78,236 मामले दर्ज हुए, आँकड़ों के अनुसार 2019 में बलात्कार के कुल 32,033 मामले दर्ज हुए जो साल भर के दौरान महिलाओं के विरुद्ध अपराधों के कुल मामलों का 7.3 प्रतिशत था। एन0सी0आर0बी0 के ताजा आँकड़ों के अनुसार भारत में 2019 में 52 लाख गम्भीर या संज्ञेय अपराध दर्ज किए गए।

एन0सी0आर0बी0 के अनुसार 2019 में हत्या के कुल 28,918 मामले दर्ज हुए जिसमें 2018 (29,017 मामले) की तुलना में 0.3 प्रतिशत की मामूली कमी दिखाई देती है।

वर्ष 2019 में अपहरण के मामलों में 0.7 प्रतिशत की मामूली गिरावट आई है। आँकड़ों के अनुसार 2019 में इन मामलों की संख्या 105037 रही जबकि 2018 में यह संख्या 105734 थी इसके अनुसार अपहरण में कुल मामलों में से 2019 में 23,104 पुरुष और 84,921 महिलायें पीड़ित थी। आँकड़ों के अनुसार वर्ष 2019 में मानव तस्करी के 2260 मामले दर्ज किये गये जबकि 2018 में यह संख्या 2,278 थी और इसमें .8 प्रतिशत की मामूली गिरावट दर्ज की गई, तस्करी के शिकार हुए कुल मामलों में 6,616 लोगों में से 2,914 बच्चे और 3,702 वयस्क शामिल हैं इस प्रकार एन0सी0आर0बी0 के मुताबिक उत्तर प्रदेश में हर 2 घण्टे में एक रेप का मामला रिपोर्ट किया जाता है जिसका अर्थ है हर रोज महिलाओं के खिलाफ हो रहे अपराध के मामले 162 रिकार्ड किए गए जो कि वर्ष 2017 के मुकाबले 7 प्रतिशत ज्यादा हैं वर्ष 2017 में महिलाओं के खिलाफ अपराध में कुल 56,011 मामले दर्ज किए गए थे।

अतः इन आँकड़ों से एक बात सामने आयी है कि देश में अपराधों की संख्या तथा उनके प्रकार दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, चाहे वह बाल अपराध हो, चाहे किशोर अपराध, महिला अपराध, चोरी, लूट या बलात्कार सभी क्षेत्रों में बढ़ोत्तरी होती जा रही है। इसलिए इस बढ़ोत्तरी को कम करने के लिए भी कुछ उपाय ढूँढने होंगे।

बाल अपराध को रोकने के उपाय :-

बाल अपराध को रोकने के लिए वर्तमान में दो प्रकार के उपाय किये गये हैं प्रथम उनके लिए नए कानूनों का निर्माण किया जाए और द्वितीय सुधार संस्थाओं एवं स्कूलों का निर्माण किया गया है जैसे- उन्हें रखने की सुविधाएँ हैं, उन्हें विद्यालय में नैतिक शिक्षा दी जाये जिससे कि वह अपने मूल्यों को समझ सके उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाये उनके लिए अच्छे शिक्षकों की नियुक्ति की जाये जिससे की शिक्षण का उचित माहौल बन सके जिससे की बच्चों को अपराधी बनने से रोका जा सके तथा साथ ही बाल बन्दीगृह तथा बाल न्यायालयों की व्यवस्था की जाए जिससे की उनमें सुधार किया जा सके।

महिला अपराध को रोकने के उपाय :-

इन अपराधों को रोकने के लिए कानून ने बहुत कदम उठाये हैं।

कानून की कुछ मुख्य धारारें जैसे-

1. आई०पी०सी० धारा 376 बलात्कार
2. प्रकृति के विरुद्ध अपराध धारा 377
3. दहेल सम्बन्धी अपराध धारा 304बी
4. पति व नाते द्वारा स्त्री के प्रति क्रूरता धारा 498ए
5. दूसरा विवाह धारा 494
6. घरेलू हिंसा अधिनियम
7. कार्य स्थल पर लैगिन उत्पीड़न

इस प्रकार कानून बनाकर ही हम केवल अपराधों को कम नहीं कर सकते, अगर हमें इन अपराधों को कम करना होगा तो इसके लिए सबसे पहले हमें अपने मन से स्त्रियों को सम्मान देना होगा, अगर विचार शुद्ध होंगे तो अपराध स्वतः ही कम हो जायेंगे।

अपराधों को रोकने के कुछ अन्य उपाय :-

वैसे तो अपराध का क्षेत्र अब काफी बढ़ता जा रहा है जिसका निवारण या समाधान एकदम से सम्भव नहीं है लेकिन अगर हम प्रयास करें तो यह काम इतना कठिन या असम्भव नहीं है, अतः इसका निवारण करने के लिए हमें एक नागरिक बनकर तथा सरकार को कुछ कदम उठाने होंगे जैसे-

1. कोई भी व्यक्ति जन्मजात अपराधी नहीं होता है वह किसी भी परिस्थिति के कारण अपराधी बनता है। अतः सबसे पहले व्यक्ति की मानसिक स्थिति को समझकर उसके अपराध करने के कारण को जानना होगा तथा फिर उसका समाधान देना होगा।
2. इसी प्रकार सरकार को अपनी कानून व्यवस्था में सुधार करके कठिन नियम तथा कानून बनाकर अपराधों को आगे बढ़ने से रोकना होगा।
3. पुलिस को अपनी कार्य शैली में बदलाव लाना होगा तथा ट्रैफिक व्यवस्था में भी सुधार करना होगा जिससे की अपराधी को सही सजा मिल सके।
4. महिलाओं से सम्बन्धी अपराधों को रोकने के लिए कानून बनाकर उन पर अमल करना लोगों को सिखाना होगा।
5. देश की शिक्षा एक ऐसी कड़ी है जो समाज में बढ़ते अपराध को रोकने में एक अहम् भूमिका निभाती है इसलिए लोगों को ज्यादा से ज्यादा शिक्षित करना होगा।
6. सरकार को ज्यादा से ज्यादा रोजगार के अवसर देकर बेरोजगारी को दूर करना होगा क्योंकि बेरोजगारी काफी हद तक अपराध की जननी है क्योंकि बेरोजगार युवा धन व नौकरी के अभाव में बहुत गलत रास्ते पर चल रहे हैं। जो कि समाज में अपराधों की संख्या में बढ़ोत्तरी कर रहे हैं।
7. अपराधियों को सजा देकर उनके लिए जेल या फिर सुधार गृह की व्यवस्था करनी चाहिए।
8. बाल अपराधियों के लिए बाल गृह सुधार की व्यवस्था करनी चाहिए।
9. महिलाओं के उत्पीड़न को रोकने के लिए कानून व्यवस्था को सही ढंग से लागू कराया जाना चाहिए।
10. महिलाओं के रोजगार के स्थान पर विशेष सहायता देकर उनकी परेशानियों का समाधान करना होगा, जिससे उनका शोषण कम हो।

निष्कर्ष :-

अन्त में निष्कर्ष स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि जिस तरह समाज में अपराध बढ़ते जा रहे हैं उनकी रोकथाम की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि अगर समाज को सही और उन्नत बनाना है तो हमें समाज से अपराध कम करने होंगे जिससे कि समाज के लोग सुरक्षित रह सके तथा समाज उन्नति कर सके। देश में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर बेरोजगारी को रोकना होगा तथा महिलाओं के सम्मान की रक्षा के लिए कानून व्यवस्था को कठोर करना होगा। अतः अन्त में सुझाव यही है कि लोगों को अपनी सोच को बदलना होगा तथा सरकार को भी कठोर कदम उठाना होगा।

सन्दर्भ सूची :-

1. <https://www.kuchhkhas.xyz2021/03>
2. <https://ncrb.gov.in>
3. शिक्षा के मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य (रीता चौहान/पी0डी0 पाठक)
4. शिक्षा के मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य (डॉ0 मालती सारस्वत)
5. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक (डॉ0 रामशकल पाण्डेय)



हिंदी साहित्य में नारी के विभिन्न रूप

-Dr. Praveen Kumar Mishra

Assistant Professor, Department of Hindi,

Dwaraka Doss Goverdhan Doss Vaishnav College, Arumbakkam, Chennai- 600106

नारी सृष्टि की अद्वितीय कृति है। नारी का सम्पूर्ण जीवन ही परोपकार के लिए समर्पित है। कभी माँ, कभी पत्नी और कभी बेटी बनकर अपने कर्तव्यों का सर्वदा पालन करती है।

‘नारी के शिक्षित होने में ही समाज और नारी का हित है।’

समाज में यदि स्त्री शिक्षित होगी तो वह एक ही नहीं दो और दो से अधिक घरों को शिक्षित तथा कुशल बना सकती है।

‘सन् 1963 के वनस्थली विद्यापीठ में भाषण देते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि लड़के की शिक्षा केवल एक व्यक्ति की शिक्षा है परन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है।’¹

‘स्त्री दासता की जड़े परिवार की संस्था में होती है। परिवार ही उन्हें यह सिखाता है कि मातृत्व बड़ी दिव्य चीज होती है और पति परमेश्वर होता है।’²

भारतीय समाज में इन्ही बातों को अपना धर्म मानकर स्त्री अपने कर्तव्य को निभाती है। किन्तु स्त्री के इन्ही सरल स्वभाव के कारण ही उन्हें कमजोर और आश्रित समझ लिया जाता है। नारी अपने हर रूप में ही अपने कार्य के प्रति अडिग रहती है। चाहे वह भाई के लिए प्यार हो, माता-पिता का सम्मान हो या फिर पत्नी के रूप में हो। पत्नी के रूप में नारी अपने पति के लिए सर्वस्व समर्पित कर देती है। सदैव सहभागिनी रही है। आम जीवन में ही नहीं अपितु वेदों-पुराणों में भी नारी को अपने पत्नी धर्म का पालन करते देखा गया है। चाहे वह रामायण हो या महाभारत हो। हर युग में नारी अपने पति के साथ उसकी शक्ति बनकर सक्रिय दिखाई देती है।

जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक ‘रघुकुल रीति’ में जब पिता राजा दसरथ के द्वारा राम को वनवास मिला तब सीता ने अपने पत्नी धर्म को निभाते हुए राजमहल के सुख को त्यागकर श्री राम के साथ वन जाने को तैयार हो जाती हैं। श्री राम जी के द्वारा मना करने पर सीता जी कहती हैं। -

‘जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।

पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।

जिय बिनु देह, नदी बिनु नारी।

तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे।

सरद बिमल बिधु बदनु निहारे।।’³

माता सीता के इस त्याग को सम्पूर्ण विश्व में पूजा जाता है इसलिये स्त्री अपने पति के हर कर्म में भागीदारी निभाती है। चाहे वह सुख हो या फिर दुःख।

स्त्री के बिना पूजा-पाठ, हवन कुछ पूर्ण नहीं माना जाता है। जब भी कोई विवाहित पुरुष किसी भी धार्मिक कार्य को करता है तो पत्नी के बिना वह यज्ञ पूर्ण नहीं होता है क्योंकि पति और पत्नी एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है।

रामचरितमानस में भी देखा गया है कि श्रीराम द्वारा पत्नी सीता का त्याग करने के पश्चात् अश्वमेध यज्ञ करते समय, गुरुजन के परामर्श पर, सीता जी की सोने की मूर्ति स्थापित की गई थी।

आम जीवन की तरह ही रामचरितमानस में स्त्री के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है। जहाँ माता सीता जैसी पवित्र पतिव्रता और सर्वश्रेष्ठ स्त्री का वर्णन मिलता है। वहीं मंथरा और कैकेयी जैसी स्वार्थी, छल-कपट वाली स्त्री का भी वर्णन देखने को मिलता है। मंथरा, कैकेयी के कान भरकर राम को वनवास भेजवाने में सफल हो जाती है।

मंथरा- 'सुतहि राजु, रामहि बनबासू।
देहु लेहु सब सवति हुलासू।।
भूपति राम सपथ जब करई।
तब मागेहु जेहि बचन न टरइ।।'⁴

और दूसरी तरफ कैकेयी जो राम को अधिक प्रिय थी। अपने पुत्र भरत के मोह में पड़कर, भरत को राज्य दिलवाने का प्रयास करती है और राम को वनवास भिजवाने में सफल हो जाती हैं। दसरथ के प्राण से भी प्रिय पुत्र श्रीराम को एक-दूसरे से दूर कर देती है। -

कैकेयी - 'सुनहू प्रानप्रिय भावत जी का।
देहु एक बर भरतहि टीका।।
माँगऊँ दूसर बर कर जोरी।
पुरवहु नाम मनोरथ मोरी।।
पापस वेष विसेषि उदासी।
चौदह बरिस रामु बनवासी।।'⁵

भारत में ग्रामीण स्त्रियों की स्थिति अभी भी अच्छी नहीं कही जा सकती है। मुंशी प्रेमचन्द्र का उपन्यास 'गोदान' उन्ही के जीवन का एक उदाहरण है। एक गरीब घर की स्त्री किस तरह से अपना सम्पूर्ण जीवन कष्टों में व्यतीत करती है और अंत में मृत्यु के समय 'गोदान' के लिए उसके हाथ में कुछ नहीं रहता। होरीराम की मृत्यु के पूर्व का मार्मिक वर्णन है।

'होरी अपनी पत्नी धनिया को दीन आँखों से देखा। दोनों कानों से आँसू की दो बूँदे टुलक पड़ी। क्षीण स्वर में बोला- मेरा कहा-सुना माफ करना धनिया। अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गई। रो मत धनिया, अब कब तक जिलाएगी? सब दुर्दशा तो हो गई। अब मरने दे।'⁶

पति की मृत्यु के पश्चात् धनिया के पास कुछ न था। सबके द्वारा गोदान कराने की बात कहने पर धनिया का दुःख छलक जाता है।

'बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली- महाराज घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है, और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।'⁷

हमारे समाज में देखा गया है कि जब कोई स्त्री कुछ ठान ले तो वह यमराज से भी अपने पति के प्राण छीन लाये। इतना ही नहीं अपितु परिवार व देश के सम्मान के लिए वीरांगना 'झाँसी की रानी' बन जाती है। जिस तरह मानव को जीवित रखने के लिए रुधिर संचार का माध्यम नाड़ी होता है, उसी तरह मानव समाज की वृद्धि विकास हेतु नारी की आवश्यकता होती है।

‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।’⁸

यह बात हमारे वेदों और पुराणों में कही गई है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती है, उनका सम्मान नहीं होता है, वहाँ किए गए समस्त अच्छे कर्म निष्फल हो जाते हैं। लेकिन यह बात आज केवल नाम मात्र रह गई है।

विमल थोरात की ‘दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर’ में भी देखने को मिलता है कि आर्थिक अभाव के थपेड़ों को सहते हुए रात-दिन रोटी की चिंता को मिटाने की हर संभव कोशिश करती दिखाई देती है। दया की विधवा माँ, बेटे को जीवन में अभाव, अपमान से बचाने के लिए अथक श्रम करती है। दलित माँओं के प्रति दया नतमस्तक है।

‘अल्कोहल के नशे में डूबा बाप

एक दिन कलेजा फटकर मरा

नंगा आया था...नंगा जाऊँगा,

यह घिस वाक्य था जिसका

हमको अनाथ कर गया

गिरता आकाश संभालने की

नन्हे हाथों को नहीं थी समझ

गाँव गाडे से जुट गई माँ।’⁹

पेट की आग बुझाने के लिए ही, माँ को श्रम करने पड़े। जिस यातनामय संघर्ष को माँ ने हिम्मत और धैर्य से पूरा किया, उसे दया पवार ने जीवन के अंत तक याद किया।

समाज में स्त्रियों को कम तथा पुरुषों को ज्यादा ताकतवर समझा जाता है। मगर अब ऐसा समझना गलत होगा क्योंकि स्त्री और पुरुष दोनों ही एक रथ के दो पहियों के समान हैं। यदि एक कमजोर हुआ तो समाज और जीवन रूपी दोनों रथ आगे नहीं बढ़ सकते हैं। समाज में जो स्थान एक पुरुष का है अब वही स्थान एक स्त्री का भी है। आज का मानव एक ऐसे समाज में जी रहा है जहाँ विजयदसमी हो या दीपावली, नारी रूप की पूजा की जाती है। लेकिन समाज में रह रही नारियों को स्वच्छंद जीने नहीं देते। आधुनिक युग में स्त्रियों की दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए साहित्यकारों ने अपने लेखनी से अथक प्रयास किया है।

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने स्त्रियों की दशा की तरफ समाज का ध्यान आकर्षित करने के लिए मर्मस्पर्शी पंक्तियाँ लिखी। -

‘अबला जीवन हाथ तेरी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।’

इतना ही नहीं जयशंकर प्रसाद ने स्त्रियों की महत्ता का बोध, समाज के लोगों को अपनी इन पंक्तियों से कराया।

‘नारी तुम केवल श्रद्धा हो,

विश्वास रजत, नग, पग तल में।

पियूष स्रोत सी बहा करो,

जीवन के सुन्दर समतल में।।’¹⁰

साहित्यकारों ने स्त्री की ममता, वात्सल्य और राष्ट्र के निर्माण में योगदान देने वाले गुणों के महत्त्व को समझाने और जागरूक करने का प्रयास किया है।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन वैदिक काल से ही नारी का स्थान सम्माननीय रहा है। वेदों में अनेक स्थलों पर अनेक विदुषी नारियों का वर्णन मिलता है। सती शतरूपा जो कि स्वयम्भुव मनु की पत्नी थी। वे चरों वेदों की प्रकाण्ड विदुषी थी। शाकल्य देवी, जो महाराज अश्वपति की पत्नी थी। जिन्होंने कन्याओं के लिये शिक्षणालय स्थापित की थी। विदुषी तपती, आदित्य की पुत्री और सावित्री की छोटी बहन थी। तपती ने अपने पुत्र कुरु को स्वयं वेदों की शिक्षा दी, जिनके नाम पर कुरुकुल प्रतिष्ठित हुआ।

वेदों में ही नहीं अपितु आधुनिक युग में भी देखा जाये तो ऐसी ही अनेक स्त्रियों का रूप मिलते हैं जिन्होंने अपना ही नहीं बल्कि पूरे देश का गौरव बढ़ाया है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि स्त्री समाज की वह मजबूत जड़ है, जिससे समाज रूपी वृक्ष खड़ा हुआ है। स्त्री का समाज में सर्वोपरि स्थान है। हर क्षेत्र में स्त्रियाँ आगे बढ़कर समाज ही नहीं अपितु देश और पूरे विश्व में गौरव स्थापित कर रही हैं। इसीलिए यह कहना गलत नहीं होगा-‘नारी तेरे कितने रूप?’

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ. सुधा सिंह - नारी समस्या और समाधान, पृष्ठ सं.- 09
2. मुद्रा राक्षस - स्त्री, दलित और जातीय दंश, पृष्ठ सं.- 78
3. जगदीशचंद्र माथुर - रचनावली-1, रघुकुल रीति, पृष्ठ सं.- 377
4. जगदीशचंद्र माथुर - रचनावली-1, रघुकुल रीति, पृष्ठ सं.- 357
5. जगदीशचंद्र माथुर - रचनावली-1, रघुकुल रीति, पृष्ठ सं.- 361
6. मुंशी प्रेमचन्द्र - गोदान, पृष्ठ सं.- 371
7. मुंशी प्रेमचन्द्र - गोदान, पृष्ठ सं.- 371
8. मनुस्मृति के वचन - 3/56
9. डॉ. विमल थोरात - दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, अशक आँखों में है लहू भी है, पृष्ठ सं.- 36
10. जयशंकर प्रसाद - कामायनी, लज्जा सर्ग, पृष्ठ सं.- 54



उषाकिरण खान के कथा साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का सांस्कृतिक विश्लेषण

–हरप्रीत कौर,

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला-147002 (पंजाब)

सृष्टि के आरंभ से ही सृष्टि के निर्माण और संचालन में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव जाति की सभ्यता और संस्कृति के विकास का मूल आधार नारी को ही माना जाता है। नर और नारी सृष्टि के दो मूलभूत तत्त्व हैं। दोनों के सहयोग और समन्वय से ही सृष्टि की रचना होती है। नारी सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक होने के साथ ही सनातन संस्कृति एवं परम्पराओं की संवाहक होती है। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज और परिवार में नारी और पुरुष दोनों की अहम भूमिका रही है। वैदिक काल में नारी को सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे। वाचस्पति गैरोला इस संदर्भ में लिखते हैं कि, 'वैदिक युग की संयुक्त परिवार व्यवस्था पितृसत्तात्मक थी। पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता था, किन्तु पुत्राभाव में पुत्री को उत्तराधिकारिणी माना जाता था।' लेकिन जैसे मातृसत्तात्मक व्यवस्था पितृसत्तात्मक व्यवस्था में परिवर्तित हुई, वैसे-वैसे नारी के अधिकार सीमित होते चले गए। धीरे-धीरे स्त्री की स्वतंत्रता को छीनकर उसे पुरुष की इच्छा और उद्देश्यपूर्ति की साधन मात्र बना दिया गया है। आशारानी व्होरा के अनुसार, 'नारियों के समस्त अधिकार छीन लिए गए। स्वतंत्रता नाममात्र को रह गई। यह दमनचक्र दसवीं शताब्दी में मुगलों के भारत आगमन के साथ गतिशील हुआ और 19वीं शताब्दी तक अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया।' नारी दुष्कार और शोषण मात्र की वस्तु रह गई। सृष्टि के आरम्भ से ही नारी को समाज में विभिन्न भूमिकाओं को निभाना पड़ता है। भारतीय संस्कृति में नारी को स्नेह एवं ममता, करुणा एवं वात्सल्य, उत्सर्ग एवं त्याग के कारण माता, पत्नी, बहन, प्रेमिका आदि विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है। आदिकाल से भारतीय संस्कृति में नारी को बहुत विशिष्ट स्थान हासिल है। सीता, सावित्री, रानी लक्ष्मीबाई, मीराबाई जैसी अनेक नारी पात्रों ने अपनी क्षमता और संवेदनशीलता के बल पर समय समय पर अपने आपको सच की कसौटी पर प्रमाणित किया है।

प्रत्येक समाज में नारी का स्थान उस युग के साहित्य के द्वारा चित्रित होता है। भारतीय समाज में शुरू से लेकर अब तक नारी के प्रति दृष्टि का सच्चा लेखा-जोखा साहित्य की विभिन्न विधाओं में देखने को मिलता है। समय समय पर नारी जीवन के सामाजिक परिवेश में परिवर्तन आ जाने के कारण साहित्य का अपना रूप परिवर्तित होता है। साहित्यकारों ने वैदिक युग से लेकर उत्तर आधुनिक युग तक के नारी जीवन में आए परिवर्तनों को दिखाया है। प्राचीन और मध्यकालीन युग में नारी की अत्यंत दयनीय स्थिति को आधुनिक काल में एक नई पहचान मिली है। साहित्यकारों ने उसके अंतर्मन को समझने का प्रयास किया है। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति आदरणीय व श्रेष्ठ थी। यह भी कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में स्त्री का स्थान सम्मानजनक था। कालांतर में स्त्री की दशा बद से बदतर होती गई। पुरुष की निगाह में वह अब सिर्फ देह मात्र ही बनकर रह गई। उसका अपना अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाने के कारण पुरुष समाज उस पर हावी हो गया। ऐसे में विभिन्न साहित्यकारों ने उसकी वेदना को समझा और साहित्य के माध्यम से उसकी मुक्ति का प्रयास किया और समाज में उसकी विभिन्न क्षेत्रों में भूमिका को उद्घाटित किया।

समकालीन महिला रचनाकार उषाकिरण खान ने अपने कथा-साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का विशुद्ध चित्रण करने का प्रयास किया है। इन्होंने अपनी विशाल दृष्टि, विलक्षण शक्ति तथा उद्भूत क्षमता से नारी जीवन के समस्त पहलुओं को रूपायित किया है। उषाकिरण खान के कथा-साहित्य में विशेषकर मिथिला क्षेत्र के ग्रामीण समाज की नारी का जीवंत चित्रण मिलता है। इन्होंने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से मिथिला और बिहार की छठी-सातवीं सदी के पूर्व मध्यकालीन युग से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी तक के आधुनिक समाज में नारी के विभिन्न रूपों की सांस्कृतिक झांकी को प्रस्तुत किया है।

हिन्दी साहित्य में साहित्यकारों की दृष्टि नारी के विभिन्न रूपों की ओर उन्मुख हुई। हिन्दी कथा-साहित्य के माध्यम से यहां नारी के माँ, पत्नी, बहन, प्रेमिका, शिक्षिका के गौरवशाली, परम्परावादी एवं मर्यादापूर्ण जीवन का चित्रांकन मिलता है। वहीं दूसरी तरफ विधवा, प्रेमिका और वैश्या रूप में हो रही दुर्दशा, अस्पृश्यता का भी वर्णन मिलता है। लेखिका उषाकिरण खान ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से नारी के विभिन्न रूपों का स्वरूप प्रस्तुत किया है। मिथिला क्षेत्र के समाज में नारी के विभिन्न रूपों के द्वारा जीवन में आ रहे निरंतर उत्थान और ह्वास का सांस्कृतिक दृष्टि से विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

पत्नी रूप में नारी :-

भारतीय परिवार में नारी को पत्नी रूप में अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है। पत्नी से ही शक्ति प्राप्त कर पति शक्तिमान बनता है। पत्नी ही पुरुष के जीवन के सृजन, पोषण और उन्नयन की आधारशीला रही है। पत्नी की योग्यता एवं क्षमता पर ही पारिवारिक ढांचा निर्भर करता है। लेखिका उषाकिरण खान ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से मिथिला परिवेश की नारी के जीवन को आधार बनाकर भारतीय समाज में नारी की स्थिति एवं मनोभाव को उद्घाटित किया है। लेखिका ने मध्यकाल की परम्परावादी नारी से लेकर आधुनिक काल की नवीन संवेदनाओं और वैयक्तिक चेतना से परिपूर्ण नारी के पत्नी रूप को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। उपन्यास 'भामती' के माध्यम से इन्होंने पूर्व मध्यकालीन नारी की स्थिति का बड़ी सूक्ष्मता से वर्णन किया है। नायिका 'भामती' के द्वारा पत्नी के त्याग और समर्पण को रेखांकित किया है। 'सौदामिनी भामती के प्रति नतमस्तक हो गई है। ऐसा दीप की जैसा जीवन अंगीकार करना कोई साधारण सी घटना नहीं है। स्त्री होते हुए स्त्रीत्व के सुख-शृंगार से वंचित।' भामती बिना गृहस्थ सुख भोगे अपने पति की निःस्वार्थ भाव सेवा करते हुए अपना जीवन बिताती है। प्रस्तुत उदाहरण में लेखिका के द्वारा नारी मन की स्थिति को संकेतित किया गया है और प्राचीन मैथिल समाज में नारी की दशा और दिशा को लेकर प्रश्न उठाया है। उपन्यास 'हसीना मंजिल' में पति के साथ अच्छे संबंध न होने पर यातनाओं की शिकार नारी का चित्रण मिलता है। 'मैं उसके हाथ लगी रस्ती में बंधी गाय नहीं हूँ कि जिधर कहेगा उधर चली जाऊंगी उसके साथ कहीं।' प्रस्तुत उदाहरण में लेखिका ने मुस्लिम नारी पात्र हसीना के द्वारा स्वाभिमान और सबला पत्नी रूप को रेखांकित किया है।

माँ रूप में नारी :-

नारी का पत्नी रूप के बाद दूसरा महत्वपूर्ण रूप माता है। नारी में वात्सल्य की भावना सहज, स्वाभाविक और प्राणतिक है। वह उस भावना से अलग नहीं हो सकती। वात्सल्य भाव नारी का प्राकृतिक गुण है जिसे उससे अभी भी अलग नहीं किया जा सकता। 'अपने अंगांग से, हृदय के सुकुमार तन्तुओं से एक नूतन सप्राण पदार्थ की सुष्टि करके उसका जगतीतल पर नवोन्मेष करना नारी के अस्तित्व का सर्वाधिक गौरवमय पहलू है।' नारी के जननी रूप का संबंध अपना रक्त संबंध है। इसलिए नारी ममता की अनुभूति को तीव्रता के साथ अनुभव करती है। मातृभाव में ही नारी की परिपूर्णता मानी गई है। माता के इस ममतामयी और गौरवमय रूप को स्वीकार करते हुए लेखिका ने इसे अपने कथा-साहित्य में बारीकी से प्रस्तुत किया है। उपन्यास 'सीमांत कथा' में लेखिका ने विवाह के वर्षों बाद पैदा हुए बेटे विधुभाल और उसकी माता के आपसी प्रेम को दर्शाया है। 'सबका दर्द समझता है मेरे बेटा, एक मेरा

ही नहीं समझता। सबको रास्ता सुझाने का बीड़ा उठा रखा है इसने। एक अपना ही पथ भूल गया।' प्रस्तुत उदाहरण में विधुभाल और उसकी माँ के आपसी प्यार को दिखाने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार लेखिका ने विधुभाल और उसकी माँ के आपसी प्रेम एवं असीम त्याग को दिखाने का प्रयास किया है।

बहन रूप में नारी :-

नारी के परम्परागत पारिवारिक रूप में बहन रूप का चित्रण हुआ है। बहन और भाई का संबंध एक ऐसा पवित्र बंधन है जो कभी नहीं टूटता है। बहन-भाई के परस्पर प्रेम की पवित्रता अनूठी है। लेखिका ने बहन के पावन, पवित्र, अटूट संबंध को अपने कथा साहित्य के माध्यम से चित्रण किया है। उपन्यास 'भामती' के माध्यम से परिवार की आधारभूत मान्यताओं के परिपेक्ष्य में लेखिका ने बहन-भाई के संबंधों का चित्रण किया है। 'वयस में सुलक्षणा पंडित जी से छोटी थी परंच व्यवहार में माता की क्षतिपूर्ति करती थी। माता तो सुलक्षणा को जन्म देने के बाद मर गई। कुछ दिन पश्चात् पिता भी नहीं रहे। उस समय पंडित जी सात वर्ष के थे। बहन को हृदय से लगाकर पाला उन्होंने... ग्यारह वर्ष की सुलक्षणा सत्रह वर्ष के अपने बड़े भाई परमज्ञानी वाचस्पति मिश्र की बहन नहीं माता बन गई।' प्रस्तुत उदाहरण में वाचस्पति मिश्र और उनकी बहन सुलक्षणा के द्वारा बहन-भाई के रिश्ते में विश्वास और आपसी प्रेम को उद्घाटित किया गया है। वहीं दूसरी ओर कहानी 'स्वास्तिक' में बहन-भाई के निश्चल प्रेम की ओर संकेत किया गया है। 'जो जितनी धन गर्विता होती, वह उतनी मूल्यवान राखी भेजती। सतीश को हँसी आती है-चाँदी और सच्चे मोतियों की राखी भेज शायद इसकी बहन ने इसके पिता-माता द्वारा की गई सेवा तथा समर्पण का उपकार चुकाया है। शायद यही उसके कर्तव्य की इतिश्री हो गई। एक लिफाफे का आकार बड़ा देखकर उसने खोला था। तो बड़े से स्पंज पर बना स्वास्तिक, उसके ऊपर लिखा गया 'मेरे भैया' आकृष्ट कर गया। वह राखी थी- कान्ति की। कान्ति ने कूच बिहार से राखी भेजी थी।' प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने कान्ति एवं सतीश के माध्यम से बहन-भाई के आपसी प्रेम के अटूट संबंध और राखी के बंधन की महत्ता को सहजता से अभिव्यक्त किया है।

प्रेमिका रूप में नारी :-

नर-नारी का प्रेम स्वाभाविक रूप से होता है। प्रेम आत्मगत अनुभूति है जिसकी पूर्ति के लिए नर का नारी और नारी का नर के साथ संबंध होना आवश्यक है। प्रेम में एक आत्मा का दूसरी आत्मा से संबंध होता है। प्रेम व्यक्ति के विकास और समाज की प्रगति में सहायक होता है। लेखिका ने नारी के प्रेमिका रूप को पारिवारिक एवं सामाजिक दृष्टि के अंतर्गत उद्घाटित किया है। उपन्यास 'रतनारे नयन' में ज्योति नामक पात्र के माध्यम से प्रेम संबंधों से समाज में बढ़ रही नई चेतना को दिखाने का कार्य किया है। किस तरह ज्योति और शान्तुन प्रेम संबंधों के चलते घर से भागकर शादी कर लेते हैं। 'ज्योति की सहेली कृपा का फोन आया था। उसने कहा है पिछली इकतीस मई को ज्योति ने कोर्ट मैरिज कर ली है। सारे पेपर्स उसके ड्रेसिंग टेबल की दराज में रखे हैं।' प्रस्तुत उदाहरण में ज्योति नामक पात्र अपने प्रेमी शान्तुन से भागकर शादी कर लेती है। लेखिका ने आधुनिक समाज में प्रेम समानांतर एवं नैतिक मूल्यों की विशाल परम्परा के चलते प्रेम के यथार्थपरक रूप को दर्शाया है।

विधवा रूप में नारी :-

भारतीय समाज में विधवा जीवन एक बड़ी समस्या है। वैदिक काल में विधवा रूप आज की भांति तिरस्कृत नहीं रहा। समाज में नारी की सामाजिक स्थिति में जैसे-जैसे गिरावट आती गई वैसे-वैसे ही उसके वैधव्य नियम भी कठोर होते गए। विधवा के जीवन में यौन संबंधी समस्याओं का अपना अलग स्थान रहा है। लेखिका ने विधवा नारी के जीवन की व्यथा को दिखाने का प्रयास किया है। उपन्यास 'फागुन के बाद' में ब्राह्मण कुल की विधवा पंडिताइन एवं उसकी विधवा बेटी दश्या की मानसिक स्थिति का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। दश्या अपनी संवेदना जानकी से प्रकट करती हुई कहती है, 'नहीं, जानकी, तुम कुँवारी हो। तुम्हारी शादी होगी। भगवान न करे तुम्हारे

साथ यदि यह हादसा हो भी जाए तो तुम फिर से अपनी माँग भर सकती हो। हम ब्राह्मण कन्या तो जीवनपर्यंत ऐसे ही रहेंगी।' प्रस्तुत उदाहरण में लेखिका ने विधवा दश्या और उसकी माँ के संघर्षमयी जीवन का वर्णन किया है। समाज में विधवा नारी को पुनर्विवाह की कोई व्यवस्था न होने के कारण ब्राह्मणी समाज में नारी को आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

कामकाजी रूप में नारी :-

समाज के विकास में महिलाओं के योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। आज समाज में बढ़ते विकास के कारण महिलाओं की भागीदारी को तय करते समय व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, पारिवारिक स्थिति आदि में महिला एवं पुरुष दोनों को समान रूप से देखे जाने की आवश्यकता है। आधुनिक युग में नारी ने उच्च शिक्षा अर्जन हेतु उन्मुख होकर उसने अपने आपको आर्थिक सुरक्षा प्रदान की है। वह अर्थोपार्जन के कारण ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो पाई है। नारी अपनी इच्छाओं की पूर्ति आर्थिक, विपन्नावस्था से उबरने के लिए और आत्मनिर्भर बनाने के लिए नौकरी पेशा जीवन व्यतीत करती है। लेखिका ने अपनी रचनाओं में नारी के कामकाजी रूप को दिखाने का प्रयास किया है। उपन्यास 'फागुन के बाद' में लेखिका ने निम्न जाति से संबंध रखने वाली जानकी के द्वारा शिक्षिका नारी की सच्ची तस्वीर को प्रस्तुत किया है। 'शिक्षा-संस्कृति का प्रकाश इनसे सहन नहीं हो पा रहा है। यह सही है, इनके बीच से निकलकर शिक्षिता हुई जानकी इनकी जड़ता को अपने तरीके से तोड़ती। अंधकार से प्रकाश में लाने की प्रक्रिया का सही अनुपात इसे पता होगा।' प्रस्तुत उदाहरण में जानकी जैसी शिक्षिता नारी में चेतना आने के कारण उनका जीवन में परिवर्तन आ रहा है, साथ ही साथ समाज में एक नया बदलाव आ रहा है। लेखिका ने निम्न वर्ग की जानकी को आधार बनाकर अपेक्षाकृत नारियों को प्रेरणा प्रदान करने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लेखिका उषाकिरण खान ने अपने कथा-साहित्य में पत्नी, माँ, बहन, प्रेमिका आदि नारी के विभिन्न रूपों के द्वारा उसके सती-साध्वी, विधवा, ममतामयी, साहसी, नौकरी-पेशा रूप को उभारा है और विधवा, उपेक्षित नारी के करुण रूपों को उभारकर उनके प्रति गहरी संवेदना प्रकट की है। लेखिका ने अपनी रचनाओं में नारी को सामाजिक वर्जनाओं के घेरे से निकालकर, शिक्षा और नौकरी पेशा कार्य में लीन कराकर उनके अंदर साहस, आत्मविश्वास, शक्ति, आत्म-निर्भरता का विकास किया है। यहां एक ओर लेखिका नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर वैधव्य के अभिशाप को झेल रही नारी की करुण कथा को साकार रूप में प्रस्तुत किया है। जीवन की विविध समस्याओं को भोगती नारी के अन्तर्मन की पीड़ा को तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को लेखिका ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान की है और इसी के साथ इस बात पर जोर दिया है कि अगली सदी स्त्रियों की होगी।

संदर्भ-सूत्र :-

1. वाचस्पति गैरोला, भारतीय संस्कृति और कला, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, सं. 2006, पृ. 150
2. आशारानी व्होरा, भारतीय नारी : दशा और दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, नई दिल्ली, सं. 1983, पृ. 7
3. उषाकिरण खान, भामती, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2017, पृ. 110
4. उषाकिरण खान, हसीना मंजिल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. द्वितीय, 2012, पृ. 35
5. शान्ति कुमार, नानूराम व्यास, रामायणकालीन समाज, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1987
6. उषाकिरण खान, सीमांत कथा, जिज्ञासा प्रकाशन, पटना, सं. 2002, पृ. 79
7. उषाकिरण खान, भामती, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2017, पृ. 18
8. उषाकिरण खान, जलधार, शिवना प्रकाशन, सीहोर, मध्यप्रदेश, सं. 2020, पृ. 10
9. उषाकिरण खान, रतनारे नयन, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2006, पृ. 36
10. उषाकिरण खान, फागुन के बाद, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2017, पृ. 144
11. वही, पृ. 119



साहित्य और समाज का सम्बन्ध

– डॉ. खरटमोल मदन नामदेव

हिंदी विभाग, सौ. सुवर्णलता गांधी महाविद्यालय, वैराग, जिला सोलापुर।

साहित्य और समाज का सम्बन्ध अतीव घनिष्ठ रहा है। व्यक्ति साहित्य का सर्जक होता है। इस कारण वह समाज का अभिन्न अंग होता है। व्यष्टि से समष्टि बनती है। एक-एक व्यक्ति मिलकर समाज बनता है। व्यक्ति समाज की इकाई है और वह उसकी धुरी है। इसलिए व्यक्ति समाज से अलग होकर नहीं रह सकता। वह तीन चीजे है - समाज, मित्रता और प्यार। समाज के भीतर ही व्यक्ति के कार्य-व्यापार चलते हैं। साहित्य शब्द में निहित शाब्दिक अर्थ में चेतना को देखा जा सकता है। साहित्य शब्द संस्कृत के 'सहित' शब्द से लिया गया है। जो 'साहित्य' अर्थात् 'स+हित' है। जिसमें व्यापक मानव समाज के कल्याण और हित की भावना प्रधान रही है। व्यक्ति समाज से विचारों के प्रभाव को ग्रहण करके स्वं अनुभव के माध्यम से उसे ग्रहण करके अपने कल्पना के रंग में रँगकर साहित्य के रूप में उसे प्रदान करता है। रचनाकार जन सामान्य से अधिक संवेदनशील होता है और वह अधिक जागरूक भी होता है। इसलिए वह समाज का अधिक से अधिक सही चित्र प्रस्तुत करने की साहस रखता है। जो वह समाज की सोच और समाज के स्वरो को मुखरित करता है। हिंदी के श्रेष्ठ आलोचक बाबू गुलाबराय ने इस संबंध में ठीक ही कहा है - 'साहित्यकार समाज का मुख और मस्तिष्क होता है।'

साहित्य और समाज युग सापेक्ष होता है। जिस प्रकार से युग बदलता है उसी प्रकार से समाज भी बदलता रहता है। जिस प्रकार समाज के रहन-सहन, आचार-विचार, मूल्य-व्यवहार आदि बदलते हैं। उसी प्रकार से साहित्य के भावबोध भी बदलते रहते हैं और उसकी चितवृत्तियाँ भी बदलती रहती हैं। जैसी समाज की चेतना होगी वैसा ही उस युग के साहित्यकार का साहित्य अथवा तेवर होगा। साहित्य जन की चितवृत्तियों का परिपाक होता है। साहित्यकार समाज से जो अनुभूतियाँ ग्रहण करता है वह उसे अपनी रचना या कृति के माध्यम से उसे शत सहस्र गुना गौरव भरा बनाकर उसे रचना या कृति के माध्यम से प्रस्तुत करता है। साहित्यकार अपनी रचना से समाज की वास्तविकता का दर्शन हमें करते हुए वह अपने विचारों को उजागर करता है। इसलिए साहित्य और समाज यह दोनों एक-दूसरे को निरंतर प्रभावित करते रहते हैं। साहित्यकार अपने समय और समाज के विचारों का प्रतिबिम्ब अपनी रचना या कृति के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इस कारण साहित्य समाज का दर्पण होता है। जैसा समाज होगा वैसा ही उस युग का साहित्य दृष्टिगोचर होता है। इसलिए किसी भी रचनाकार के साहित्य को पढ़कर उस युग विशेष के समाज के संबंध में जानकारी सहजता से प्राप्त हो जाती है। रचनाकार अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह साहित्य निर्माण के जरिए करता हुआ अपनी अनुभूतियाँ प्रकट करता है। जो एक प्रेरक के रूप में परिपुष्ट रचना दे देता है। उसकी इस सोच और चिंतन ही साहित्य को आगे बढ़ाती है। दूसरी ओर हम देखेंगे की साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ने के पश्चात् उस युग के समाज की यथा स्थिति का दर्शन हमें हो जाता है। समाज की भूमिका अति प्राचीन काल से साहित्य को रचने में महत्वपूर्ण रही है। साहित्य की रचना करते समय रचनाकार समाज के अनेक पक्षों पर अपनी निगाह जमाते हुए उन सारे विचारों, तथ्यों और चिंतनों को प्रकट करता है।

हमारा देश एक बहुभाषी देश है। अगर हमें राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना है, तो उन सारी विभिन्न भारतीय भाषाओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करना होगा। तो जरूरी हो जाता है कि हम इस बहुभाषिकता से भरे साहित्य के मध्य में ऐक्य के अंतःसूत्रों को तलाशना होगा। राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में भारतीय साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण बन जाती है। अगर इस कार्य को कारगर तरीके से नहीं किया गया तो हमें समय और समाज इन में से कोई भी हमें माफ नहीं कर पायेगा। इस में कोई दो राय नहीं होगी। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखे गए इन साहित्य का अपना-अपना एक अलग ही महत्व होता है। जो साहित्य के माध्यम से समाज की जड़े पक्की कराता है। साहित्य में समाज के पर्याप्त वर्णन मिलते हैं, जिनमें समुह, परिवार, समाज एवं राष्ट्र की कल्पना की गई है। आज कल समसामयिक साहित्य रचा जा रहा है। उनमें उनका परिवेश, उनकी समस्याएँ, उनके जीवन मूल्य, उनकी संस्कृति पर होने वाला अतिक्रमण आदि को केंद्र में रखकर उनकी चर्चा हो रही है। जरूरत इस बात की भी है कि इन सारे भारतीय भाषाओं में लिखें साहित्य को अपनी ओर से इन सारी बातों से रूबरू होकर अपनी असली पहचान करने में सिद्धता हासिल करनी पड़ेगी। इस कारण साहित्य अपनी हर पहचान और उसके स्व स्वरो की पहचान ही समाज की समृद्धि एवं अधोगति के लिए जिम्मेदार बनाती है। हमारी संस्कृति भी एकल संस्कृति नहीं है। जो विभिन्न धर्मों, जातियों, संप्रदायों, विविध भाषाओं एवं साहित्य के योग से भारतीय संस्कृति और समाज की निर्मिती हुई है। जिनका अंतःसंबंध बहुत नज़दीक का होता है- 'साहित्य मनुष्य के सुरम्य चिंतनो और संचित अनुभवों की हृदयस्पर्शी भाषाई, अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। वह विगत युगों के मानवीय संघर्षों को जानने का तथा मानव संस्कृति और सभ्यता को उसके सही हालत में पहचानने का सशक्त साधन भी है।'¹

इस कारण साहित्य के हर पहचान को ही समाज का संबंध समृद्धि एवं दृढ़ बनाने के लिए जिम्मेवार बनाया जाता है। हमारी संस्कृति भी एकल संस्कृति नहीं है। भारतीय साहित्य की इस एकता का परिज्ञान ही हमारे साहित्यकारों को एक ऐसे सममूल्य और सहोदर एवं सामंजस्य का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। जो राष्ट्र राज्य के राजनीतिक विचार से आधिक उज्ज्वल एवं स्थायी हो। जिससे हमें संपूर्ण भारत का परिचय होता है। उसके एकता के महत्व का अहसास होता है। वह एकता केवल राजनैतिक नारों से नहीं लाई जा सकती, वह मात्र संस्कृतिक जागरण और साहित्य द्वारा ही संभव हो सकती है। भारतीयता के इस आपसी मेल-मिलाप के फलस्वरूप से ही केंद्रीय विचारों में विविधता एवं एकता की अनुपूरक बनकर वह उसे परिपुष्ट करती हुई नज़र आती है। भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ चिंतक मैथिलीशरण गुप्त की चेतावनी को हमें नहीं भूलना चाहिए। उनका मानना है कि, 'साहित्यकार जीवन और जगत् का सुक्ष्म पारखी होता है। इसलिए उसने उसी स्वर को अपने साहित्य में मुखरित किया है। जो युग विशेष में उभरकर आया है। इसे ही समाज का साहित्य में प्रतिबिम्ब कहा गया है।'² इस प्रकार से अर्थ स्पष्ट होता है कि समाज और साहित्य इन दोनों की स्वीकृति में ही एकता की कुंजी बसी हुई है। साहित्य में भारतीयता की खोज कभी भी एकआयामी नहीं हो सकती, भारत बहुआयामी है और साहित्य में भारतीयता बहुआयामी दृष्टि से ही हमें परिचित होती है। भारतीय साहित्य की जीवंतता का परिचय हमारे बहुलवादी संदर्भों से ही मिल जाता है। इस कारण भारतीय साहित्य की एकता की धारणा को समाज की एकता की धारणा को जन्म देती है- 'सारे मानव-समाज को सुंदर बनाने की साधना का नाम ही साहित्य है।'³

भारतीय साहित्य के संदर्भ में जो प्रादेशिकता तथा वैश्विकता के बारे में देश या प्रदेश एवं राष्ट्र में जो एक तनाव मिलता है। वह तनाव एवं दूरी एक-दूसरे के प्रतिपूरक के रूप में स्वीकार करे तो साहित्य की सत्यम् शिवम् सुंदरम् की अनूभूति हमें होती है। शायद भारत की विविधता में एकता को एक-दूसरे के अनुपूरक बनकर ही रहना पड़ता है। यदि किसी राष्ट्र का साहित्य उन्नत और समृद्धशाली है, तो वह राष्ट्र अपनी उन्नति के शिखर पर तथा समृद्धि एवं गौरव के मार्ग पर अग्रसर होता है। परंतु यदि ऐसे साहित्य का अभाव उस राष्ट्र में है तो उस राष्ट्र को गौरव और

मान मिलना काफी मुश्किल बन जाता है। साहित्य उन्नत और समृद्धशाली न होने से किसी भी राष्ट्र का समाज दिशाहीन बनकर बिखर जाता है। उस राष्ट्र का आज नहीं तो कल संस्कृति, सभ्यता निश्चित ही खतरे में पड़ जाती है। वह निर्जीव बना राष्ट्र के चिरस्थायी में कोई शेष नहीं रहता है। हमारा प्राचीन साहित्य संसार के अन्य किसी भी राष्ट्र के साहित्य की अपेक्षा बलशाली एवं समृद्ध था। इस कारण से ही हमारे देश को विश्व के लोग जगद्गुरु के रूप में स्वीकारते थे। विश्व के करीब-करीब सभी राष्ट्रों के लोग हमारे यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। हम विद्या और बुद्धि, शक्ति और साहित्य में संसार में सर्वश्रेष्ठ थे। इसका कारण था कि हम संसार में अग्रगामी थे। हमारे साहित्य के कारण ही हमारा राष्ट्र उन्नति शील मार्ग पर चल रहा था। उस समय अनेक सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ हमारे साहित्य की गुणवत्ता भी सर्वश्रेष्ठ थी। इसलिए शायद हमारे जीवन में साहित्य के इस मूलभूत मूल्यों ने ही हमें गौरव प्रदान कर हमारे साहित्य को सम्मानित किया था।

हमारे अनेक सामाजिक परिवर्तनों में साहित्य ने ही अपनी निर्णायक भूमिका निभायी है। साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए वह अवश्य ही अपने सामाजिक वातावरण और परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। वर्तमान साहित्यकारों ने अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए वह ऐसे साहित्य का निर्माण कराकर हमें अपने देश के आत्म-गौरव, मान-सम्मान और प्रतिष्ठा को स्थापित कर समाज एवं देश का सर उँचा कर देते हैं। इस कारण देश का सर्वांगीण विकास और गौरव में इज़ाफा होता है। समाज के अनेकानेक सामूहिक चरित्र का पुनरूत्थान होकर साहित्य और समाज की गरिमा बढ़ जाती है- 'साहित्य के साथ व्यक्ति और समाज जुड़ा हुआ है। अतः साहित्य में व्यक्ति के आत्म-निवेदन के साथ व्यक्ति और समाज के विचारों और भावों की अभिव्यक्ति भी होती है।'⁴

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और साहित्य उसकी स्वस्थ मानसिकता एवं सामाजिकता की रचनात्मकता अभिव्यक्ति है। साहित्य और समाज का संबंध प्राचीन काल से घनिष्ठ बना रहा है। विश्व के किसी भी भूभाग एवं खण्ड, क्षेत्र और भाग में रचे गये साहित्य को देख लीजिए, आप निर्विवाद रूप में उसके केंद्र में समाज और व्यक्ति को ही हम देखते हैं। अर्थात् साहित्य और समाज का परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्ध अनिवार्य रूप से जुड़े हुए हैं। समाज जहाँ एक ओर साहित्य के लिए अनिवार्य है। वहीं दूसरी ओर साहित्य की जरूरत समाज को अपने सबलीकरण और विकास के लिए महत्वपूर्ण होती है। इस संदर्भ में एक विचारक अपनी बात रखते हुए कहता है- 'साहित्य केवल बुद्धि का विकास नहीं है। वह जीवन की वास्तविकता की उपेक्षा करके सजीव नहीं रह सकता।'⁵ साहित्य में समाज की अनेक सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक समस्याएँ होती हैं। जिसको लेकर रचनाकार मंथन करता हुआ अपने पक्ष को रखकर अपने विचार कुंज को प्रस्तुत करते हुए अपनी रचना को रचता है। जैसे सामाजिक जीवन, आचार-विचार, व्यवहार, मूल्य, रीति-नीति, ज्ञान, धर्म और संस्कृति आदि साहित्य के अंग-प्रत्यंग होते हैं। जो उसके भाव-पक्ष और कला पक्ष को निर्मित करते हैं। साहित्य अपनी सांस्कृतिक-चेतना के इस ठोस धरातल पर खड़ा होकर पुनः उसी को व्यापक मानव-समाज हित के लिए संस्कारित और परिष्कृत करता है।

साहित्य और समाज का सम्बन्ध घनिष्ठ होता है। जो उसकी उद्देश्य विहीन न होकर वह सामाजिक और मानवीय कल्याण के बृहद् उद्देश्यों से संयोजित होती है। साहित्य मानव के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संस्कारों को और अन्य मूल्यों एवं हितों की रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रकट करता है जैसे- 'साहित्य समाज एवं देश विशेष की सांस्कृतिक गतिविधियों को सुरक्षित रखता है। प्राचीन यूनानी और रोमन संस्कृति का स्वरूप वहाँ के प्रसिद्ध ग्रंथ इलियड और ओडिसी के द्वारा हमें ज्ञात होता है। हमारे देश के प्राचीन ग्रंथ रामायण और महाभारत राम और कृष्ण के काल की संस्कृति का दिग्दर्शन करने में समर्थ हैं।'⁶

अनेक साहित्यिक विधाओं में समाज में व्याप्त असन्तोष, अत्याचार, विसंगति, राजनैतिक प्रपंच, भाई-भतीजावाद, बेरोजगारी और अनेक तत्कालिक सामाजिक विद्रूपताओं पर व्यंग्य वाणी से प्रहार किये जाते हैं। साहित्यकार अपनी पूरी

ईमानदारी के साथ इस सामाजिक जागरूकता का परिचय देकर अपने साहित्य को चित्रित करता है। साहित्य के विभिन्न आन्दोलन और युगानुरूप प्रकारों से उजागर करते हैं। वह युग और परिवेशगत चेतना के विभिन्न अंगों का दर्शन हमें कराता है। इस तरह नवनवीन साहित्य की अनेकानेक उपलब्धियों को वह गिनाता है। साहित्यकार समाज और युग-परिस्थिति का प्रत्यक्ष दर्शी बनकर रूबरू होता है। इसलिए साहित्य में सामाजिक समस्याओं का सकारात्मक सोच को रखते हुए अपनी धराना को निवेदित करता है। हमारी जैसी सामाजिक भूमिका होगी वैसा ही हमारा साहित्य रचा जाएगा। जो साहित्य लिख गया है। वह अपने समय और समाज का प्रतिबिम्ब होता है। इस कारण हमारा साहित्य और समाज को अन्योन्योश्रित हो जाता है। साहित्य के निर्माण कार्य में समाज की भूमिका बहुत ही निर्णायक एवं महत्वपूर्ण होती है। उसी प्रकार साहित्य द्वारा सामाजिक जागरूकता के अनेक प्रश्न आज का नहीं है। जो अनादि काल से आज तक उठायें गये हैं। इसमें कोई दो राय नहीं।

संक्षेप में कहेंगे कि साहित्य के सामने समाज की स्थिति निरंतर बनी रही है। साहित्यकार अपनी विभिन्न कृतियों एवं रचनाओं के माध्यम से उन्हें उजागर करता आ रहा है। वह एक सजग एवं जागरूक व्यक्ति बनकर उसे प्रस्तुत करता है। वह अपनी संवेदना के धरातल पर समाज जीवन के विविध मूल्यों की परख कराकर अपनी अनेक रचनाओं के माध्यम से समाज की अनेकानेक समस्याओं को प्रकट करता है। वह अपनी उपस्थिति से समाज को प्रभावित किये बिना नहीं रहता है। वह खुद कभी-कभी समाज से प्रभावित होता है तो कभी-कभी समाज भी उससे प्रभावित हो जाता है। उसके लिए वह अपनी सामाजिक भूमिका को छोड़ता नहीं है। साहित्यकार अपने साहित्य को बिना समझ के वह समाज को कहाँ से लेकर कहाँ तक ले जाना है इसकी सूझ-बुझ उसे बराबर रहती है। उसे यह भी अच्छी तरह से मालूम होता है कि वह किसको वितरित कर रहा है? साहित्यकार अपनी रचनाओं में समाज के मंगल और सुधार की बात करता है। वह खुद से लेकर समाज को और पूरे मानवता के लिए समर्पित करता है। साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की उन तमाम सारी वर्तमान समस्या को और युग परिवेश के तेवर को प्रकट करता है। जो अपनी कल्पना की उड़ान भरता हुआ निरंतर समाज की लोकमंगल की फिराक में रहता है। जो उसे एक सफल साहित्य के रूप में देना चाहता है। इस कारण वह एक श्रेष्ठ रचनाकार बन जाता है।

संदर्भ सूचि :-

1. कृष्णा सोबती व्यक्ति एवं साहित्य : डॉ. ब्रिजिट पॉल - पृष्ठ नं. 86
2. अनालोचित साहित्यिक निबंध : डॉ. श्रीनिवास शर्मा - पृष्ठ नं. 147
3. हिंदी का अलोचनात्मक इतिहास : डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृष्ठ नं. 182
4. आधुनिक हिंदी निबंध : प्रो. महेन्द्र रायजादा - पृष्ठ नं. 148
5. बाजारवाद और साहित्य : राजेंद्र मिश्र - पृष्ठ नं. 12
6. आधुनिक हिंदी निबंध : प्रो. महेन्द्र रायजादा - पृष्ठ नं. 149



शिक्षा और समाज

-Dr. Kumar Abhishek

Assistant Professor, Department of Hindi

Dwaraka Doss Goverdhan Doss Vaishnav College, Arumbakkam, Chennai -600106

‘शिक्षा शब्द संस्कृत की ‘शिक्ष’ धातु में ‘अ’ प्रत्यय लगाने से बना है। शिक्षा का अर्थ है सीखना तथा सीखाना, इसलिए शिक्षा का अर्थ सीखने और सीखाने की क्रिया से होता है।’

शिक्षा और समाज दोनों का अंतरतम संबंध है। इन दोनों विषयों के केंद्र में मनुष्य है। मनुष्य, मनुष्य का विकास, मानवत्तर गुणों की अभिवृद्धि, मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति और मानवीय समाज में सभ्यता, संस्कृति का रक्षण, उसकी उन्नति, प्रगति एवं परिवर्तन-संवर्धन पर विचार।

वर्तमान सामाजिक संदर्भों में सबसे पहले हम शिक्षा पर विचार करते हैं। शिक्षा मनुष्य को मनुष्य बनाने का साधन है। शिक्षा मनुष्य को संस्कारित करती है, समाजोपयोगी बनती है एवं परिवार नामक संस्था के प्रति उत्तरदायी बनती है। परंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या वर्तमान शिक्षा इन उद्देश्यों की पूर्ति कर रही है? मुझे लगता है, वर्तमान शिक्षा अपने लक्ष्य में असफल रही है। कारण (1) शिक्षा की गुणवत्ता में ह्रास, (2) शिक्षा का व्यवसायीकरण और (3) शिक्षा का राजनीतिकरण।

संक्षेप में यह कहना गलत न होगा कि वर्तमान शिक्षा मनुष्य को न बनाकर गला काट प्रतिस्पर्धा और अंधी दौड़ का घोड़ा बना रही है। उपभोक्तावादी संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने शिक्षा को वस्तु के रूप में परिवर्तित कर दिया है। महंगी शिक्षा प्राप्त करने के बाद छात्र निवेशित पूंजी का ब्याज और लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता है। चाहे वह मेडिकल, इंजीनियरिंग, सिविल सेवा या अध्यापक का क्षेत्र हो। शिक्षा के इस व्यवसायीकरण ने शिक्षा को आम आदमी की पहुंच से दूर कर दिया है।

शिक्षा एक व्यापार हो गया है और इसमें अर्जित लाभ-राशि ने राजनेताओं को आकर्षित किया है। उच्च शिक्षा को राजनेताओं ने हस्तक्षेप कर हथिया लिया है। किसी भी विश्वविद्यालय में उपकुलपति से लेकर अन्य पदों तक की नियुक्ति बिना राजनीतिक हस्तक्षेप के सम्पन्न नहीं होती। कहीं-कहीं प्रतिभाओं को हाशिए पर डाल दिया जाता है।

मनुष्य के सर्वांगीण विकास हेतु उपयोगी बनाना है तो इसे व्यवसायीकरण और राजनीति के शिकंजों से मुक्त कर इसकी रीति-नीति और पद्धति में अमूलचुल परिवर्तन करने होंगे। शिक्षा को भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता से भी जोड़ना होगा ताकि मनुष्य के जीवन में शारीरिक सुख के साथ-साथ अध्यात्म और परमार्थ सुख की गंगा भी बहती रहे। मनुष्य की पहचान उसके सुकर्मों से हो।

समाज - व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। अर्थात् हम सबको मिलाकर जो समुदाय बनता है, वह समाज होता है। हमारा समाज भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, संप्रदाय तथा वर्गों में बंटा हुआ है, और इन सबकी अपनी-अपनी संस्कृति, परम्पराएँ, रीति-रिवाज तथा अन्य विशेषताएँ हैं। जीवन में समाज का अपना महत्व होता है, इसे नकारा नहीं जा सकता। किन्तु वर्तमान स्थिति यह है कि हमारा समाज दो वर्गों में बंटा है। एक पुरातन पीढ़ी का समाज तथा दूसरा युवा-आधुनिक पीढ़ी का समाज।

उच्च शिक्षा से शिक्षित युवा पीढ़ी का अपना एक अलग समाज है, जहां भविष्य के सुनहरे सपने हैं और उन सपनों को पूरा करने के लिए उनकी अपनी उधमता तथा नौकरी है। सयुक्त परिवारों के टूटने का एक कारण जहां अपना शहर-गाँव छोड़कर अन्य स्थान पर बसना है वहीं इस बसने के क्रम में जातीय बंधन से विलग होना भी है।

इस नए समाज, नई संस्कृति से जहां एकल परिवारों में बेतहाशा वृद्धि हुई है, वहीं उच्च शिक्षित पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव की स्थिति भी बनी है। युवा पीढ़ी की सोच, आचार-विचार पाश्चात्यता से प्रभावित हैं। जिसका सीधा असर उनके बालकों पर पड़ रहा है। ये सारे संकट कहीं ना कहीं हमारी आज की शिक्षा पद्धति की देन है।

वर्तमान में भारतीय समाज नैतिक मूल्यों के पतन से ग्रस्त है। सांप्रदायिक हिंसा बढ़ती जा रही है, सभी जगह भ्रष्टाचार का बोलबाला है और पारिवारिक विघटन की समस्या काफी तेजी से अपना पैर पसार रही है। वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ती जा रही है और नारी जाती के सम्मान में काफी गिरावट नजर आ रही है। इस चिंतनीय स्थिति से उबरने के लिए हमें ऐसी शिक्षा नीति की आवश्यकता है जहां नैतिक मूल्यों के संवर्धन के साथ-साथ आधुनिक, संवेदनशील विचारधारा की महक हो। पुरातन के प्रति मोह तथा नवीन के प्रति आग्रह हो। तभी एक स्वस्थ समाज की स्थापना हो सकेगी।

मानव जाति के विकास का आधार शिक्षा ही है। अतः शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता भी है। वह मानव निर्माण की प्रक्रिया है। शिक्षा ही सामाजिक व्यवस्था या देश की रीढ़ है। जिस प्रकार विकृत रीढ़ से एक व्यक्ति स्वस्थ नहीं कहला सकता, उसी प्रकार विकृत शिक्षा व्यवस्था से समाज व देश का निर्माण नहीं हो सकता। शिक्षा ही वह विशेष निधि है जो इस सम्पूर्ण जगत में केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि शिक्षा के बिना विकसित मानव की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

सही अर्थों में शिक्षा मनुष्य को मानसिक स्वस्थता प्रदान करती है एवं साथ ही उसके व्यक्तित्व को ऊंचा उठाने वाले सदगुणों का विकास करती है। मनुष्य समाज में ही जन्मता है और मरता है। उसके समस्त क्रिया-कलाप समाज को प्रभावित करते हैं। समाज की उन्नति उसके श्रेष्ठ नागरिकों पर ही निर्भर करती है। यह मानव को पग-पग पर मार्गदर्शन देती है। महात्मा गांधी बुनियादी शिक्षा एवं स्वावलंबी शिक्षा को अधिक जोर देते थे। उनके अनुसार-

‘शिक्षा का असली उद्देश्य यह होना चाहिए कि स्वावलंबी व्यक्ति का निर्माण होना।’ (2)

शिक्षा वह हथियार है जिसका प्रयोग करके समाज के किसी भी टूटे हुए अंग को जोड़ा जा सकता है एवं सामाजिक प्रगति शिक्षा की प्रगति से ही संभव है।

समाज को सुदृढ़ एवं दोष मुक्त कराने की अदम्य क्षमता शिक्षा में होती है। भारतीय समाज भी कई प्रकार के परिवर्तनों द्वारा प्रगति की ओर बढ़ रहा है। पुराने समाज में छुआछूत, बाल-विवाह, स्त्री शिक्षा का अभाव आदि कई समस्याएँ होती थी। लेकिन आधुनिक समाज में शिक्षा के प्रभाव द्वारा सामाजिक कुरीतियाँ और विद्रुपताएँ कम होने लगी हैं। नारी शिक्षा द्वारा समाज और परिवार ज्यादा मजबूत होने लगे हैं। नारी आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती है तो, पारिवारिक समस्याएँ भी कुछ हद तक कम हो जाती हैं। आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने से उसका आत्मविश्वास भी बढ़ जाता है। बाल श्रम रोकने से गरीब बच्चों को भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। सबकी शिक्षा व्यवस्था समान स्तर की हो जाने से, पिछड़े वर्ग की आर्थिक दशा भी सुधर जाएगी।

जीवन में अधिक तकनीकी उन्नति की बढ़ती हुई मांग ने गुणात्मक शिक्षा के क्षेत्र को बढ़ाया है। शिक्षा देशों की वृद्धि और विकास के लिए समाज में प्रत्येक व्यक्ति की सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा देती है। यह समाज में सामान्य संस्कृति और मूल्यों को विकसित करने के द्वारा सभी को सामाजिक और आर्थिक दोनों रूपों से सक्षम बनाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज के हर क्षेत्र में शिक्षा अहम भूमिका निभाती है।

समाज का हाल विवशता से भरा है। हम-आप जैसी शिक्षा पाएंगे वही आचरण व्यवहार में लाएँगे। समाज

अचानक नहीं बनता बिगड़ता। शिक्षा उसके निर्माण एवं विनाश में अहम महत्व रखता है। समाज के अस्तित्व की पहचान शिक्षा से ही होती है, जिसे हम साहित्य के दर्पण में देख सकते हैं। यदि साहित्य को समाज से अलग कर दिया जाए तो समाज का कोई महत्व न होगा और वहीं शिक्षा को उससे जोड़ दिया जाए तो उसके अस्तित्व में चार चाँद लग जाएंगे। परन्तु शिक्षा का जो रूप आज दृष्टिगोचर हो रहा है वह अत्यंत डरावना है। आधुनिक युग के इस शिक्षा के स्तर को देखते हुए डॉक्टर महेश चन्द्र सिंघल कहते हैं -

‘हमारी शिक्षा हमें देशभक्त व सदाचारी बनाने में असफल रही है। माता-पिता अपनी संतानों को विद्यालय इसलिए भेजते हैं कि वह अच्छी बातें सीखे और बड़े होकर उनके काम आए। लेकिन उनकी सभी आशाओं पर तुषाराघात होता है।’(3)

इससे यह निर्णय लिया जा सकता है कि आज हर किसी के हृदय में शिक्षा के प्रति एक निराशा का भाव ही निहित है फिर भी आशावादी होकर ही हर व्यक्ति इस क्षेत्र से जुड़ा हुआ है।

निष्कर्षतः यह कहना अतिशयोक्ति न होगा की शिक्षा और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। समाज शिक्षा प्रक्रिया का एक प्रमुख ध्रुव है, शिक्षा व्यक्ति के मूल प्रवृत्तियों को शोधित और पुनः निर्देशित कर उसे स्वयं को समाज में समायोजित करना सिखाती है।

संदर्भ :-

1. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत-रमन बिहारी लाल, पृ.- 02
2. आधुनिक विचार और शिक्षा - नन्द किशोर आचार्य, पृ. - 111
3. भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ - डॉक्टर महेश चन्द्र सिंघल, पृ. -03



वैदिक समाज में गुरुकुल परंपरा और ब्रह्मतत्त्व प्रसंग

– ओयेन्द्रिला राय

शोध छात्र, संस्कृत-पालि-प्राकृत विभाग, विश्व-भारती विश्वविद्यालय।

प्रस्तावना :-

भारतीय संस्कृति के अनुसार वेद को अपौरुषेय, नित्य, तथा अभ्रान्त ग्रंथ के रूप में माना जाता है। प्राचीन युग में आचार्य, शिष्य, प्रशिष्य, प्रशिष्य का शिष्य- इस तरह से परंपरा में प्राप्त हुई परम ज्ञान का आकरस्वरूप वेद को निर्भूल रक्षा करने के लिए गुरु के निकट वेद का अध्ययन किया जाता है। और वेद की विविध प्रचलित शाखाओं का कारण है वेद का अध्ययनभेद, ना कि वेद ग्रंथ में भेद।

“अध्ययनभेद एव शाखाभेदनिदानं न तु ग्रन्थभेद इति।

एकैकवेदस्य अनेकशाखात्वेऽपि तात्त्विकभेदाभावात्।।”¹

केवल गुरु के निकट ही सम्यक रूप से विविध शाखाओं में वेदाध्ययन संभव है। प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य- इन तीनों वर्णों के शिक्षार्थी गुरुकुल परंपरा में ज्ञानलाभ करते थे। लेकिन उससे पहले तीनों वर्णों को विधि के अनुसार उपनयन संस्कार सम्पन्न करना अनिवार्य कर्तव्य के रूप में परिगणन किया गया है। किउकी इस संस्कार के पश्चात ही वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त होता है-

“संस्कारस्य तदर्थत्वाद्द्विद्यायां पुरुषश्रुति।”²

इसलिए गुरुकुल परंपरा में प्रवेश करने से पहले शिक्षार्थियों का उपनयन संस्कार अनिवार्य रूप से आवश्यक है। “स्वाध्यायोऽध्येतव्य”³ इस श्रुतिवचन से सम्बन्धित है। “अष्टवर्ष ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत।”⁴

अर्थात् उपनयन और अध्ययन क्रमिक कर्तव्य है। जिस तरह गुरु के निकट नहीं जाने से शिष्य वेदाध्ययन में असमर्थ है, उसी तरह शिष्यों के अध्ययन की स्पृहा के विना गुरु का अध्यापना संभव नहीं है। गुरु कर्तृक प्रदान किया गया वेदवाणी को स्वयं अध्ययन करना है स्वाध्याय। ‘स्वाध्यायोऽध्येतव्य’ अर्थात् वेद का अध्ययन कर्तव्य है- इस वेदविधि के अनुसार गुरु गृह में रहकर वेद के साथ साथ वेदांग तथा व्याकरणादि शास्त्रों के अध्ययन का विधान किया गया है, किउकी वेद और तदंगीभूत शास्त्रों का अध्ययन एकविधि के अनुसार निर्धारित होता है-

“साङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।”⁵

वेद और वेदांग के एकत्र अध्ययन करने से ही इष्टप्राप्ति संभव होता है और इसका माध्यम है स्वाध्याय। इसलिए सर्वदा स्वाध्याय का पालन करने का विधान दिया गया है :-

“स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।”⁶

उपनयनविधि संपन्न पुरुष ही आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति के माध्यम से स्वाध्यायविहित वेदाध्ययन का अधिकारी हो पाता है। उपनयन के पश्चात शिक्षार्थी को सुदीर्घ त्याग और तपस्या से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरु से ज्ञानार्जन करना पड़ता था। कठोर तपस्या से गुरुगृह में रहकर अध्ययन व्रत का पालन करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का पालन करने के समय अंतरेन्द्रिय और बाह्येन्द्रियों का संयम करते हुए निद्रा, आलस्य, क्रोध, लालच,

अहंकार और आत्माभिमान का त्याग आवश्यक है। इसी गुणों का पालन करते हुए विहित अध्ययन और अध्यापना को ब्रह्मतत्त्व प्राप्ति का यज्ञस्वरूप कहा गया है-

“अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।”⁷

श्रुति में निर्देशित है कि ब्रह्मज्ञान का महत्वपूर्ण साधन है श्रोत्रियत्व, अवृजिनत्व और अकामहतत्व :-

“यश्च श्रोत्रियः अवृजिनः अकामहतः।”⁸

साथ ही जीवन के इस पर्याय में गीतवाद्य, नृत्य, विलासिता और स्त्रीसंसर्ग का कठोर रूप से निषेध किया गया है। ब्रह्मचर्य व्रत से भ्रष्ट हुआ ब्रह्मचारी को ‘अवकीर्ण’ कहा जाता है। साथ ही स्त्रीसंग के कारण भ्रष्ट हुए ब्रह्मचारी के लिए प्रायश्चित्त का विधान भी दिया गया है-

“यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपेयात् स गर्दभं पशुमालभेत।”⁹

वैदिक युग में गुरुकुल परंपरा का और एक विशेषता है गुरु के गृहस्थाली काम में सहयोग करना। ‘ऐतरेय आरण्यक’ और ‘शांखायन आरण्यक’ में आचार्य के गाइयों को विचरण कराने का उल्लेख किया गया है। साथ ही छात्रावस्था में रहने के दौरान शिष्य को भिक्षावृत्ति के द्वारा अन्न संस्थान करना कर्तव्य के रूप में जाना जाता था। शतपथ ब्राह्मण में पाया जाता है शर्म और अहंकार को त्याग करते हुए विद्यार्थियों को भिक्षा के द्वारा अन्नसंग्रह करना पड़ता था। उपनयन समाप्त होने के पश्चात् जो शिक्षा प्रतिष्ठान का आचार्य दश हजार छात्रों के भरण पोषण का संपूर्ण दायित्व लेकर शिक्षा प्रदान करते थे उनको ‘कुलपति’ उपाधि दिया जाता था-

“मुनीनां दशसहस्रं योऽन्नदानादिना।

अध्यापयेद् हरेंद्रं वापि सैव कुलपति स्मृतः।।”¹⁰

मुंडक उपनिषद् में आचार्य शौनक को बृहद विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता के रूप में वर्णन किया गया है-

“शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ।”¹¹

गुरु के द्वारा शिक्षनीय विषयों में सर्वप्रधान है संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदादि शास्त्रों का अध्ययन। साल दर साल आने वाले नए छात्रों को मौखिक रूप से इन पवित्र ज्ञानराजि को प्रदान किया जाता था। विष्णु पुराण में जो अठारह विषय को विद्या के रूप में स्वीकार किया गया है उनमें भी वेद का उल्लेख पाया जाता है-

“अङ्गानि चतुरो वेदाः मीमांसा न्यायविस्तरः।

पुराणं धर्मशास्त्रञ्च विद्याः हि एताः चतुर्दशाः।।

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।

अर्थशास्त्रं चतुर्थन्तु विद्या हि अष्टादशैव ताः।।”¹²

शिक्षार्थियों को वेदादि शास्त्रों के साथ-साथ दुसरे विषयों पर भी अध्ययन करना पड़ता था। छान्दोग्य उपनिषद् में आचार्य सनतकुमार के समीप नारद के द्वारा आयत्त किया गया विद्याओं का उल्लेख इसी बात को दर्शाता है-

“ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं देवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवतोऽध्येमि।।”¹³

उसके अलावा भी प्रकृति के सामान्यतम वस्तु से शिखने वाली विषयों में ज्ञानार्जन करना आवश्यक होता था। इसी वजह से वैदिक युग के शिक्षाव्यवस्था में दो तरह की पाठ्यक्रम देखा जा सकता है, जिसमें से एक है परा विद्या और दुसरी है अपरा विद्या :-

‘द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चौवापरा च।’¹⁴

परा विद्या के प्रसंग में कहा गया है जिस विद्या के माध्यम से अविनश्वर अक्षरज्ञान प्राप्त होता है वह परा विद्या है। अर्थात् जो विद्या के द्वारा ब्रह्म का स्वरूप उपलब्ध होता है उसे ही परा विद्या कहा गया है।

‘‘अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।’’¹⁵

दूसरी और ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष- एह अपरा विद्या है-

‘‘तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।’’¹⁶

अर्थात् इसका तात्पर्य है ऋग्वेदादि ग्रंथों को अपरा विद्या कहा गया है। लेकिन इन ग्रंथों तथा शास्त्रों के द्वारा प्राप्त हुई ब्रह्मज्ञान ही है पराविद्या। भारतीय दर्शन अनुसार पराविद्या को ही अधिक मान्यता दिया गया है किउकी परा विद्या के माध्यम से गुरु अपने शिष्य के आत्मिक विकास के द्वारा ब्रह्मज्ञान प्रदान करते हैं। और केवल आत्मसंयम के माध्यम से ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। कठोपनिषद में इस अविनश्वर अक्षरज्ञान को श्रेष्ठ कहा गया है-

‘‘एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।’’¹⁷

लेकिन अपने शिष्यों को इस गूढ़ ज्ञान की शिक्षा प्रदान करने से पहले गुरु विभिन्न विचारधाराओं से अपने शिष्यों की परीक्षा लेते हैं। और केवल निरहंकारी, जिज्ञासु, विनयी, निर्लोभ शिष्य ही इस परमज्ञान के भागीदार होते हैं। और ऐसे शिष्यों के यश लिए ही गुरु प्रार्थना करते हैं :-

‘‘सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्।’’¹⁸

केवल धैर्यवान और निर्लोभ शिष्य ही ब्रह्मज्ञ होता है और इसका प्रकृष्ट उदाहरण है कठोपनिषद में यम के द्वारा नचिकेता का ब्रह्मज्ञान लाभ। उदालकपुत्र नचिकेता अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए यमराज के घर में गमन करता है। वहां तीन रात्रि यमराज के इंतजार में रहने के लिए नचिकेता को तीन वरदान प्राप्त होता है। तीसरा वरदान में वह यमराज से आत्मा के स्वरूप को जानने का इच्छा जाहिर करते हैं। लेकिन ऐसे ही कोई भी व्यक्ति को ब्रह्मज्ञान नहीं दिया जा सकता। इसीलिए नचिकेता की परीक्षा लेने के लिए यमराज ब्रह्म ज्ञान को छोड़कर वरदान के रूप में उसे बहुत सारा धन दौलत और दीर्घायु पाने का वरदान देना चाहते हैं। लेकिन विषय वैभव की चिंता से कई ऊपर था नचिकेता का ब्रह्मज्ञान पाने की इच्छा। नचिकेता की इस दृढ़ निश्चय को देखकर यमराज नचिकेता को ब्रह्मतत्त्व प्रदान करते हैं-

‘‘कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।

स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्व्या धृत्या नीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।।’’¹⁹

इस तरह सभी प्रकार के वैषयिक चिंता त्यागपूर्वक निष्काम कर्म करने हुए श्रद्धा और विनय के साथ गुरु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो सकता है-

‘‘परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।’’²⁰

विषय भावना से निर्लिप्त रहकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का और एक दृष्टांत मिलता है बृहदारण्यक उपनिषद के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद में। याज्ञवल्क्य कात्यायनी और मैत्रेयी नाम की अपने दोनों पत्नीयों में संपत्ति बांटकर सन्यास लेने का इच्छा जाहिर करते हैं। लेकिन मैत्रेयी अपने पति याज्ञवल्क्य से सवाल करती है की संपत्ति के द्वारा क्या ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है -

‘‘सा होवाच मैत्रेयी यन्नुम इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्, स्यां न्वहं तेनामृता’’²¹

लेकिन वास्तविक रूप में पार्थिव संपत्ति के द्वारा ब्रह्म तथा आत्मा के स्वरूप को उपलब्धि नहीं किया जा सकता। और इस उत्तर को सुनने के बाद मैत्रेयी कहती है जिसके द्वारा अमृतत्व को प्राप्त नहीं किया जा सकता, उस संपत्ति पर मैत्रेयी का कोई आसक्ति नहीं है। बल्कि याज्ञवल्क्य उन्हें वो ज्ञान प्रदान करें जिसके द्वारा मैत्रेयी अमृतत्व प्राप्त कर सके। ब्रह्मज्ञान के लिए मैत्रेयी का वैभव के प्रति इस वैराग्य को देखकर ऋषि याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी से प्रसन्न होकर ब्रह्मज्ञान प्रदान करते हैं-

“स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया वै खलु नो भवती सती प्रियमवृधद्धन्त तर्हि भवत्येतद्व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति।”²²

गृह से ही शिक्षा की पहले कदम की शुरुआत होता है। इसलिए भारतीय संस्कृति में माता-पिता को सर्वप्रथम गुरु कहा जाता है, किउकी माता-पिता केवल सन्तान को जन्म नहीं देते, बल्कि संतानों की आत्मिक विकास में उनका महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए उनका दर्जा स्वर्ग के समतुल्य माना जाता है-

“पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।

पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः।।”²³

शतपथ ब्राह्मण में पिता के द्वारा पुत्र के वेदाध्ययन कराने का उदाहरण देखने मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद में वरुण के द्वारा अपने पुत्र भृगु को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने का दृष्टांत मिलता है-

“भृगुर्वै वारुणिः, वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति।”²⁴

शिक्षा समाप्त होने पर गृह में समाहित पुत्र को ज्ञान के प्रकृत स्वरूप को प्रदान करता घटना विरल नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद के आरुणि-श्वेतकेतु संवाद में अपने आत्माभिमानि पुत्र को सही मार्गदर्शन देने का वृतांत इसी तस्वीर को दर्शाता है। श्वेतकेतु वारा वर्ष का होने के बाद पिता उद्दालक तथा आरुणि उसे वेदाध्ययन करने के लिए गुरु के समीप जाने का उपदेश देते हैं। वारा वर्ष के ब्रह्मचर्य पालन के पश्चात पितृ गृह में प्रत्यावर्तन करने पर आरुणि देखते हैं की पुत्र अविनीत और ज्ञानाभिमानि वनकर लौटा है-

“स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय”²⁵

परंतु अगर वेदाध्ययनकारी आत्माभिमानि हो जाता है फिर वह कभी भी आत्मा के स्वरूप को उपलब्धि नहीं कर पाता। इसीलिए अपने पुत्र के अंतर से आत्माभिमान का उच्छेद करते हुए विनय की भावना जगाने के उत्तरदायित्व आरुणि अपने कंधे में ले लेते हैं। साथ ही पुत्र को ब्रह्मतत्त्व का गूढ उपदेश प्रदान करते हैं।

“सः यः एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।”²⁶

केवल मानव ही नहीं, अहंकार के वशवर्ती होने पर देवता भी ब्रह्मविद्या प्राप्त नहीं कर सकते जिसका वर्णन केनोपनिषद में भली भांति प्राप्त होता है। देवता के साथ असुरों के युद्ध में देवगण विजय लाभ करते हैं और इस विजय को वह अपना कृतित्व मानकर आत्माभिमान करने लगते हैं। जिस वजह से वह ब्रह्म के स्वरूप को जानने की योग्य नहीं रह पाते। इसीलिए अग्नि, वायु एक के बाद एक यक्षरूपी ब्रह्म को प्रत्यक्ष करने के बावजूद उन्हें नहीं पहचान पाते। दुसरे देवता के मुकाबले इन्द्र का आत्माभिमान सर्वाधिक होने की वजह से ब्रह्म इन्द्र को वार्तालाप करने का अवसर भी नहीं देते हुए अन्तर्हित हो जाते हैं। लेकिन इस दोष के अलावा इन्द्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के योग्य अधिकारी होने के खातिर अग्नि और वायु की तरह यक्ष का स्वरूप जाने वगैरे वापस नहीं लौट जाता। इन्द्र की इस धैर्य और जिज्ञासा को देखकर हैमवती वहां पर प्रकट होती है और इन्द्र के भक्तिपूर्वक जिज्ञासा करने पर यक्ष का प्रकृत परिचय बताती है। साथ ही बताती है कि ब्रह्म के इच्छा से ही देवताओं ने असुरों को परास्त किया है। अर्थात् वह केवल निमित्तमात्र है, इस उपलब्धि का ज्ञान देते हैं-

“सा ब्रह्मेति होवाच। ब्राह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति।”²⁷

अर्थात् निरहंकारी शिष्य ही गुरु के निकट ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। लेकिन ब्रह्म को जानकर अहंकार करने वाला व्यक्ति कभी भी परमात्मा के प्रकृत स्वरूप को नहीं जान पाता -

“यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।²⁸

इन गुणावली के साथ-साथ एकमात्र ब्रह्मजिज्ञासु शिष्य ही ब्रह्मतत्त्व प्राप्त कर सकता है। अर्थात् सभी प्रकार की पार्थिव ज्ञान का अधिकारी होने के बावजूद अगर शिष्य के अंतर में शोक की अनुभूति उत्पन्न होती है वह ही ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त करने में समर्थ होता है। छान्दोग्य उपनिषद में ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने से पहले नारद अपने गुरु सनतकुमार के सामने इसी मनोभाव को व्यक्त करता है-

“सोऽहं भगवो मंत्रविदेवास्मि नात्मवित् श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य वारं तारयात्विति।²⁹

वैदिक युग में विद्यालाभ करने के खातिर आचार्य के गृह में रहने का रीति प्रचलित था। इसीलिए ब्राह्मणों का ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए क्षत्रियों के शिष्यत्व ग्रहण करके उनके घर में रहने का घटना विरल नहीं था। ‘शतपथ ब्राह्मण’ में विदेह राजा जनक की परिचय मिलता है जिनसे कई ब्राह्मण ऋषियों ने ज्ञान लाभ किया था। दुसरी और काशीराज अजातशत्रु ने वेदज्ञ ब्राह्मण गार्ग्यवालाकि को ब्रह्मज्ञान प्रदान किया था। गर्वितस्वभाव गार्ग्यवालाकि राजा अजातशत्रु के समीप उपस्थित होकर उन्हें ब्रह्मज्ञान प्रदान करने की इच्छा जाहिर करते हैं। लेकिन उनके ज्ञान प्रदान करने के पश्चात काशीराज का ब्रह्मविद्या में अगाध ज्ञान को देखकर वह अचम्बित हो जाता है और हाथ में समिध धारण करते हुए राजा से शिक्षा प्रदान करने की अनुरोध करता है-

“तत उ ह वालाकिः समित्पाणिः प्रतिचक्रम उपायानीति।”³⁰

क्षत्रिय के द्वारा ब्रह्मणों को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने का और एक विशिष्ट उदाहरण प्राप्त होता है कौषितकी उपनिषद में गाङ्ग्यपुत्र राजा चित्र से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रह्मण पुत्र श्वेतकेतु और उनके पिता आरुणि का एकसाथ राजा के समक्ष उपस्थित होना -

“सदस्येव वयं स्वाध्यायमधीत्य हरामहे, यन्न परे ददति। एहि उभौ गमिष्याव इति।”³¹

आरुणि का इसी अभिमानशून्य स्वभाव से संतुष्ट होकर राजा उन दोनों को ब्रह्मलोक प्राप्ति का रहस्यविद्या प्रदान करते हैं-

“तं होवाच ब्रह्मार्होऽसि गौतम यो नमानमुपागा एहि व्येव त्वा ज्ञापयिष्यामीति।”³²

गीता में स्त्री और शूद्र जाति को वेदाध्ययन में अनधिकारी कहा गया है। लेकिन रामायण, महाभारत, पुराण तथा वैदिक साहित्यों के कई क्षेत्र में ब्रह्मचारिणी रमणी का निर्देशन प्राप्त होता है। ऋग्वेद का देवीसूक्त की ऋषि के रूप में अम्भृण का कन्या आम्भृणी का उल्लेख वैदिक युग में नारी शिक्षा को स्पष्ट रूप में प्रकाशित करता है। यजुर्वेद में कथित है ब्रह्मचर्य समाप्त होने पर युवती को योग्य पात्रों में प्रदान किया जाता था-

“ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।”³³

इसके अलावा भी ‘आश्वलायन श्रौतसूत्र’ में ‘वडवा प्रातिथेयी’ 4 नाम की यशस्विनी ब्रह्मज्ञ नारी और बृहदारण्यक प्रभृति वेदादि शास्त्रों में गार्गी प्रमुख ब्रह्मवादी नारी का उल्लेख से स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में स्त्री जाति सक्रिय रूप से वेदाध्ययन में योगदान करते थे।

दूसरी और गौतम के द्वारा अज्ञातकुल जावालि को ब्रह्मतत्त्व प्रदान यही प्रमाण करता है, केबल विनयी, निरहंकारी और जिज्ञासु शिष्य ही ब्रह्मज्ञान के अधिकारी है। गुरु गृह में शिक्षार्थियों के जीवन आरम्भ होता था वेदाभ्यास से, और शिक्षाग्रहण समाप्त होने के दिन पालनीय समावर्तन उत्सव में गुरु अपने शिष्यों को गार्हस्थ्य

आश्रम में रहते समय पालनीय धर्म का वर्णन करते हैं-

“सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।।”³⁵

इसी चिंतन को निभाते हुए आज भी समावर्तन उत्सव का पालन किया जाता है।

आत्मसंयम, सेवापरायणता, आत्मनिर्भरता के द्वारा छात्र जीवन का पालन करने की वजह से शिक्षार्थ उच्च चिंतन के द्वारा संसार धर्म का पालन करने में सक्षम हो पाता है। और इस संसार धर्म पालन करने का सर्वोत्तम मार्ग है आध्यात्मिक मार्ग। अपने गुरु के प्रति पूर्ण विश्वास के साथ समर्पण से ही इस मार्ग का पालन संभव हो पाता है जहां गुरु शिष्य का संबंध भक्त और भगवान के जैसे प्रतीत हो जाता है। श्रुति प्रस्थान के द्वारा आध्यात्मिक मार्ग का जो दिशा प्रदान किया गया था, वही उत्तर काल में श्रीमद्भगवद्गीता में देखा जा सकता है जहां स्मृति प्रस्थान के द्वारा श्री कृष्णा विषादग्रस्त अर्जुन को आध्यात्मिक रूप से जीवन दर्शन का ज्ञान प्रदान करते हैं। उसी तरह आधुनिक युग में भी आध्यात्मिक मार्ग का दर्शन दिखाते हुए गुरु श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानंद जी को देखा जा सकता है।

वैदिक युग के शिक्षाव्यवस्था केवल आध्यात्मिक विकास में ही सीमित नहीं था, बल्कि छात्रों के नैतिक मानविक तथा सामाजिक मूल्यबोध के शिक्षा प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था, यह आचार्य तथा माता पिता को देवता के रूप में भक्ति तथा श्रद्धा करने का शिक्षा भी प्रदान किया गया है -

“मातृ देवो भवः। पितृ देवो भवः। आचार्यदेवो भवः। अतिथि देवो भवः।”³⁶

इस तरह की कई नैतिक शिक्षा से समृद्ध होने के खातिर आज भी दक्षिण भारत के कई स्थान पर वैदिक रीति का पालन करते हुए विद्याभ्यास किया जाता है। जिस तरह एकमात्र गुरु ही अपने शिष्यों को निश्चित रूप से सही मार्गदर्शन दिखाने में समर्थ होते हैं, उसी तरह गुरु की ख्याति तथा सार्थकता निहित होती है शिष्यों के सफलता से। ‘श्रद्धावान लभते ज्ञानम्’³⁷ इसी चिंतन को ध्यान में रखते हुए गुरु का सेवा करना, गुरु के ऊपर अविचलित विश्वास रखकर श्रद्धा के साथ आज्ञा का पालन करना ही शिष्य के जीवन का मूल लक्ष्य है। और इसी वजह से कई संस्कृत वांगमय में इस चिंतन का आवाहन करते हुए शिष्य अपने गुरु की स्तुति के द्वारा अपने गुरुदक्षिणा को सार्थक कर पाता है-

“यस्य निःश्वेसितं वेदा यो वेदोऽखिलं जगत्।

निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्।।”³⁸

गुरु के प्रति श्रद्धा हेतु दक्षिणा के रूप में एकलव्य का द्रोणाचार्य को अपनी अंगुली भेंट करना भी गुरुभक्ति का और एक चरम दृष्टांत है। इससे यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगा की शिक्षारूप पक्षी का दो पंख होते हैं गुरु और शिष्य। एक पंख के बिना जैसे पंछी उड़ने में असमर्थ है, वैसे ही गुरु के बिना शिष्य और शिष्य के बिना गुरु अधूरा है। ‘कादम्बरी’ में भी इसी सोच को ध्यान में रखते हुए कहा गया है, शिष्यों ही शिक्षकों का शोभावर्धन करते हैं और इसी वजह से आवहमानकाल से पितृस्वरूप गुरु के अन्तर में घोषित होती है महामंत्र-

“सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।”

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।³⁹

पादटीका -

1. ऐतरेयालोचनम्
2. अपशूदाधिकरणम्
3. तैत्तिरीयोपनिषद

4. मीमांसा दर्शनम्
5. मीमांसा दर्शनम्
6. तैत्तिरीयोपनिषद, अनुवाक-11, मंत्र 1
7. मनुसंहिता, अध्याय-3, मंत्र-70
8. ऋग्वेद
9. आश्वलायन श्रौतसूत्र
10. ऋग्वेद
11. मुण्डकोपनिषद, मुण्डक-1, खण्ड 1, मंत्र- 3
12. नारद पुराण
13. छान्दोग्योपनिषद, अध्याय- 7, खण्ड- 1, मंत्र- 2
14. मुण्डकोपनिषद, मुण्डक- 1, खण्ड 1, मंत्र- 4
15. मुण्डकोपनिषद, मुण्डक- 1, खण्ड 1, मंत्र- 4
16. मुण्डकोपनिषद, मुण्डक- 1, खण्ड 1, मंत्र-4
17. कठोपनिषद, अध्याय- 1, वल्ली- 2, मंत्र -17
18. तैत्तिरीयोपनिषद, वल्ली- 1, मंत्र -1
19. कठोपनिषद, अध्याय-1, वल्ली 2, मंत्र- 11
20. मुण्डकोपनिषद, मुण्डक- 1, खण्ड- 2, मन्त्र 12
21. बृहदारण्यकोपनिषद, अध्याय- 4, ब्राह्मण- 8 , मंत्र- 3
22. बृहदारण्यकोपनिषद, अध्याय- 4, ब्राह्मण- 8 , मंत्र- 8
23. पद्मपुराणम्
24. तैत्तिरीयोपनिषद, वल्ली- 3, अनुवाक- 1, मंत्र- 1
25. छान्दोग्योपनिषद, अध्याय- 6, खण्ड- 1, मंत्र- 3
26. छान्दोग्योपनिषद, अध्याय- 6, खण्ड- 1, मंत्र- 7
27. केनोपनिषद, खण्ड- 4, मंत्र -1
28. केनोपनिषद, खण्ड- 2, मंत्र 3
29. छान्दोग्योपनिषद, अध्याय- 7, खण्ड- 1, मंत्र- 3
30. कौषितकी उपनिषद, अध्याय- 4, मन्त्र- 18
31. कौषितकी उपनिषद, अध्याय- 1, मन्त्र- 1
32. कौषितकी उपनिषद, अध्याय- 1, मन्त्र- 1
33. यजुर्वेद 8-1
34. आश्वलायन श्रौतसूत्र।
35. तैत्तिरीयोपनिषद, वल्ली- 3, अनुवाक- 1, मंत्र- 1
36. तैत्तिरीयोपनिषद, वल्ली- 1, अनुवाक- 10, मंत्र- 2
37. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय- 4, श्लोक-39
38. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, मङ्गलाचरणम्, श्लोक- 2
39. ईशोपनिषद, शान्तिमन्त्र।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. अनिर्वाण, वैदिक साहित्य, प्रथम संस्करण, संस्कृत बुक डिपो।
2. उपनिषद, अतुल चन्द्र सेन, सीतानाथ तत्त्वभूषण, महेश चन्द्र घोष, प्रथम संस्करण हरफ प्रकाशनी।
3. उपनिषद, प्रथम संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर।
4. आश्वलायन श्रौतसूत्र, चट्टोपाध्याय अमर कुमार, प्रथम संस्करण, दि एशियाटिक सोसाइटी।
5. नारद पुराण, प्रथम संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
6. भट्टाचार्य डॉ. शंकर तपन, अपशूद्राधिकरणम्, प्रथम संस्करण, संस्कृत पुस्तक भंडार।
7. मनुसंहिता, वन्द्योपाध्याय डॉ. शास्त्री मानवेन्दु, प्रथम संस्करण, श्रीवलोराम प्रकाशनी।
8. वसु योगीराज, वेदेर परिचय, प्रथम संस्करण, फार्मा के.एल. मुखोपाध्याय।
9. वेदान्तसार, प्रथम संस्करण, उद्बोधन कार्यालय।
10. शर्मा सत्यनारायण, श्री जाबाल दर्शन उपनिषद, प्रथम संस्करण, पंचवती स्प्रिचुअल फाउंडेशन।
11. सप्ततीर्थ पण्डित श्री भूतनाथ, मीमांसा-दर्शनम्, प्रथम संस्करण, संस्कृत बुक डिपो।
12. सामश्रमी सत्यव्रत, एतरेयालोचनम्, द्वितीय संस्करण।
13. ऐतरेय ब्राह्मणम्, डॉ. सुधाकर मालवीय, प्रथम संस्करण, तारा प्रिंटिंग ओयार्कस।
14. हालदार गुरुपद, व्याकरण दर्शनेर इतिहास, प्रथम संस्करण, संस्कृत बुक डिपो।



साहित्य और समाज का संबंध

– श्रीमती प्रेमलता पाटील

सहायक प्राध्यापक, (हिंदी) शासकीय महाविद्यालय डोलरिया (मध्यप्रदेश)

सारांश :- साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है, अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा-बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है।

मूल शब्द :- लोकजीवन, परमुखापेक्षिता, विश्व बंधुत्व, अन्यायोश्रित, भाग्य नियन्ता।

प्रस्तावना :-

साहित्य समाज का दर्पण है, समाज का प्रतिबिम्ब है, समाज का मार्गदर्शक है तथा समाज का लेखा-जोखा है। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से प्राप्त होती है। साहित्य लोकजीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन-सहन, खान-पान व अन्य गतिविधियों का पता चलता है। समाज साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य समाज पर प्रभाव डालता है। दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य का समाज से वही संबंध है, जो संबंध आत्मा का शरीर से होता है। साहित्य समाज रूपी शरीर की आत्मा है, साहित्य अजर-अमर है। महान विद्वान योनानागोची के अनुसार समाज नष्ट हो सकता है, राष्ट्र भी नष्ट हो सकता है, किन्तु साहित्य का नाश कभी नहीं हो सकता।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और वह समाज से हर पल नए-नए अनुभव प्राप्त करता है एवं प्रत्येक अनुभवों को कल्पना के माध्यम द्वारा मनुष्य अपने कला को सृजित करता है। इसी कारण प्रसिद्ध ग्रीस आचार्य एरिस टोटल ने साहित्य को जीवन एवं जगत का अनुकरण मानते थे। उनके मतानुसार साहित्य जीवन एवं जगत का नकल है। जीवन एवं जगत में हो रहे घटनाओं को साहित्यकार अपने कला से नकल करता है एवं फिर से उसी समाज को लौटा देता है। साहित्यकार जिस समाज एवं वातावरण में रहते हैं उस समाज एवं वातावरण की सभी स्थितियाँ उसे हमेशा प्रभावित करते रहता है। साहित्यकार अपने रचना के जरिए जो भी समाज को देना चाहत है उसे वह बड़ी ही चतुराई से प्रस्तुत करता है एवं समाज के प्रत्येक सुख-दुःख एवं समस्याओं का चित्र समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। समाज का उत्थान-पतन, समाज की रीति-रिवाज, आस्था एवं संस्कृति स्पष्ट रूप में साहित्य में अपना प्रभाव डालता रहता है। साहित्य भी समाज के परिवर्तित स्वरूप के साथ बदलता रहता है। आधुनिक संदर्भ में भी साहित्य एवं समाज में परस्पर संबंध है। दोनों एक-दूसरे के लिए बने हैं। समाज में हो रहे विसंगति एवं विकृति, प्रगति, उपलब्धि, अभाव,

विसमता, समानता, सौंदर्यता, प्रेम, स्नेह, मातृत्व, देशप्रेम, विश्व बंधुत्व जैसे विविधा पक्षों को साहित्यकार अपने साहित्य में सृजित करते हैं, जो नितान्त लोकहित के लिए होता है। जिस प्रकार से समाज का प्रभाव साहित्य के ऊपर पड़ता है वैसे ही साहित्य का प्रभाव समाज पर भी पड़ता है। क्योंकि कवि अथवा लेखक समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः वे लोग समाज को अपने नवीन विचार प्रदान करते रहते हैं। जब समाज में कोई समस्या आती है, समाजिक जीवन मूल्य का पतन होने लगता है तब साहित्य ही उसे दूर करने में अपनी भूमिका निर्वाह करता है। ऐसे समय में साहित्यकार समाज को नया रास्ता दिखाने का काम करता है। साहित्य के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक एवं सनाकृतिक परिवर्तनों को देखा जाता है।

आज विश्व में धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिकता, अलगाववाद तथा आतंकवाद गंभीर समस्याओं के विनाश के लिए साहित्य प्रयत्नशील है। साहित्यकार साहित्य का सृजन अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि समाज के उपयोग के लिए करता है। चाहे वह ऋग्वेदिक रचनाकार हो या वह वेदव्यास का भागवतगीता हो या फिर बाल्मीकी का रामायण, शेक्सपियर का नाटक, एरिस्टोटल का काव्यशास्त्र हो सभी समाज के उपयोग एवं मार्ग दर्शन के लिए सृजित किए गए थे। हिन्दी साहित्य के लोक कल्याणकारी कवि तुलसीदास ने समाज के कल्याण के लिए रामचरितमानस का सृजन किया यह उनके पहले श्लोक से ही स्पष्ट होता है। उसके बाद तो हिन्दी समाज में आमूल परिवर्तन आया। तुलसीदास रचित रामचरितमानस पढ़ने के लिए लोगों ने शिक्षार्जन करना शुरू किया, जिसके द्वारा हिन्दी समाज में शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ जिससे समाज में नवचेतना का प्रसार हुआ। इसी से यह कथन स्पष्ट होता है कि साहित्य रचना लोकहित के लिए होता है। साहित्य सृजन के लिए साहित्यकार, विषयवस्तु समाज के ही विभिन्न पक्षों से लेता है। चाहे वह ऐतिहासिक, पौराणिक या फिर सामाजिक विषयवस्तु क्यों न हो। यह सभी विषयवस्तु का समाज में ही सृजन होता है और इसी से साहित्यकार अपने दृष्टिकोण द्वारा समाज को उसके मूल्यांकन एवं विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करता है।

प्राचीनकाल से लेकर आज तक साहित्यकार समाज के प्रत्येक परिवर्तनों को देखते आया है इसी से यह प्रमाणित होता है कि साहित्य का सृजन एवं समाज की भूमिका एक दूसरे के पूरक है। प्रत्येक समाज का अपना अलग रहन-सहन, परंपरा, संस्कृति, संस्कार और इतिहास है पर साहित्य इन सभी बातों को समेटकर प्रत्येक समाज के घटना को दूसरे समाज से आदान-प्रदान करता है। शेक्सपियर की नाटकों, बालजाक की कहानी, लियो टोल्स्टोय की कहानियाँ, मेक्सिम गोर्की के उपन्यास, हेनरी के कहानी, हवितम्यान के कविताएं, शैली एवं किट्स के कविताएं, जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ, रवीन्द्रनाथ के कविताएं, प्रेमचंद के उपन्यास आदि इन सभी को देखने पर ही साहित्य एवं समाज के बीच संबंधा समझ में आते हैं। यह सभी साहित्य सृजनाओं के द्वारा समाज के विभिन्न घटनाक्रम को लिखकर अनुभव एवं कल्पना द्वारा सृजना किया गया है और इसी से मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण भूमिका को देख सकते हैं।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है- 'जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।' सचमुच किसी भी राष्ट्र की भाषा एवं साहित्य के अध्ययन के आधार पर वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का सहज ही आकलन किया जा सकता है, क्योंकि साहित्य में मानवीय समाज के सुख-दुःख, आशा-निराशा, साहस-भय और उत्थान-पतन का स्पष्ट चित्रण रहता है। साहित्य की इन्हीं खूबियों के कारण इसे समाज का दर्पण कहा जाता है। मुंशी प्रेमचन्द ने साहित्य को 'जीवन की आलोचना' कहा है। वास्तव में, देखा जाए तो साहित्य एक स्वायत्त आत्मा है और उसकी सृष्टि करने वाला भी ठीक से यह नहीं बता सकता कि उसके रचे साहित्य की गूँज कब और कहाँ तक जाएगी। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि साहित्य समाज में नैतिक सत्य की चिन्ता है, तो यह समाज की दूरगामी वृत्तियों का रक्षक तत्व भी है। तभी तो प्रेमचन्द ने साहित्यकारों को सावधान

करते हुए साहित्य के लक्ष्य को बड़ी मार्मिकता से रेखांकित करते हुए कहा था- 'जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य-प्रेम न जागे, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची -दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।'

साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है। हालाँकि जहाँ दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है वहीं साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिह्नित करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विणतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों को भी साहित्य में स्थान देता है। साहित्य और समाज एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं, एक के विनाश से दूसरे का भी अंत हो जाता है। इसलिए विश्व के जिन प्राचीन समाज का आज अस्तित्व कहीं दिखाई नहीं देता, उसका मूल कारण वहाँ के साहित्य का नष्ट-भ्रष्ट हो जाना है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब नहीं अपितु उन्नायक है और समाज साहित्य के लिए महत्वपूर्ण भाव भूमि है। साहित्य हमेशा मानव को सकारात्मक सोच के साथ-साथ समाज के लिए मनुष्य को कुछ करने की प्रेरणा प्रदान करता है, राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत कराता है और 'वसुदेव कुटुम्बकम्' की भावना विकसित करता है। यह संसार मानव समाज का घर है और इसमें मानव समाज किस प्रकार की भूमिका निर्वाह करने पर समाज का कल्याण होगा यही प्रेरणा देती है। अपने साहित्य सृजन में विषयवस्तु के अतिरिक्त पात्रों को भी लेखक समाज से ही चुनता है। समाज से लिया गया पात्र किसी विशेष समाज का प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ कतिपय पात्र विश्वजनित बन जाता है, जो समाज को कुछ न कुछ सदेश दे रहा होता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'साहित्य सामाजिक मंगल का विद्यालय है' यह सत्य है कि व्यक्ति विशेष की प्रतिभा से ही साहित्य रचित होता है किंतु और भी अधिक सत्य यह है कि प्रतिभा सामाजिक प्रगति की ही उपज है। साहित्यकार को समाज का छायाकार या चित्रकार भी कहा जाता है क्योंकि साहित्यकार अपनी कृति को समाज में चल रही मान्यताओं और परंपराओं के वर्णन द्वारा ही सजाता है इसलिए साहित्य और समाज में अन्यायोश्रित संबंध प्रत्येक देश के साहित्य में देखने को मिल जाता है। कबीर ने अपने समय के आडंबरों, सामाजिक कुरीतियों और मान्यताओं के विरोध में अपनी आवाज उठाई। ठीक इसी तरह प्रेमचंद ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में किसी न किसी समस्या के प्रति संवेदना जताई है। कोई भी साहित्यकार चाहे कितना भी अपने को समाज से अलग रखना चाहे लेकिन वह ऐसा नहीं कर पाता है। कवि वाल्मीकि की पवित्र वाणी आज भी हमारे हृदय मरूस्थल में मंजु मंदाकिनी प्रवाहित कर देती है। गोस्वामी तुलसीदास जी का अमर काव्य आज अज्ञानान्धकार में भटकते हुए असंख्य भारतीयों का आकाशदीप की भाँति पथ-प्रदर्शन कर रहा है। कालिदास का अमर काव्य भी आज के शासकों के समक्ष रघुवंशियों के लोकप्रिय शासन का आदर्श उपस्थित करता है।

आज भारतवर्ष युगों युगों से अचल हिमालय की भाँति अडिग खड़ा है, जबकि प्रभंजन और झंझावात आए और चले गए। यदि आज हमारे पास चिर-समृद्ध साहित्य ना होता तो ना जाने हम कहां होते और होते भी या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता था। साहित्यकार समाज का प्राण होता है। समाज में रहकर समाज की रीति-नीति, धर्म-कर्म और व्यवहार वातावरण से ही अपनी रचना के लिए प्रेरणा ग्रहण करता है और लोक भावना का प्रतिनिधित्व करता है। अतः समाज की जैसी भावनाएं और विचार होंगे वैसा ही तत्कालीन साहित्य भी होगा। इस प्रकार सामाजिक गतिविधियों तथा समाज में चल रही परंपराओं से समाज का साहित्य अवश्य ही प्रभावित होता है। साहित्यकार समाज का एक जागरूक प्राणी होता है। वह समाज के सभी पहलुओं को बड़ी गंभीरता के साथ देखता है और उन पर विचार करता है फिर उन्हें अपने साहित्य में उतारता है।

साहित्य, समाज से भाव सामग्री और प्रेरणा ग्रहण करता है तो वह समाज को दिशाबोध देकर अपने दायित्व का भी पूर्णतः अनुभव करता है। परमुखापेक्षिता से बचाकर उनमें आत्मबल का संचार करता है। साहित्य का पांचजन्य उदासीनता का राग नहीं सुनता, वह तो कायरों और पराभव प्रेमियों को ललकारता हुआ एक बार उन्हें भी समर भूमि में उतरने के लिए बुलावा देता है। इसलिए श्री महावीर प्रसाद जी ने साहित्य की शक्ति को तोप, तलवार, तीर और बम के गोलों से भी बढ़कर स्वीकार किया है। बिहारी के एक दोहे से-

“नहिं पराग नहीं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।

अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।।”

राजा जयसिंह को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो गया और उसके जीवन में बदलाव आ गया। भूषण की वीर भावों से ओतप्रोत ओजस्वी कविता से मराठों को नव शक्ति प्राप्त हुई। इतना ही नहीं स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान जैसे कई कवियों ने अपनी ओजपूर्ण कविताओं से न जाने कितने युवा प्राणों में देशभक्ति की भावना भर दी।

निष्कर्ष :-

किसी भी समाज की वास्तविक पहचान उसके साहित्य से होती है। साहित्य ही समाज का प्रेरक, निर्धारक एवं भाग्य नियन्ता है। दूसरी ओर समाज की चित्तवृत्ति के अनुरूप ही साहित्य का निर्माण होता है। साहित्य में समाज की आशा, अपेक्षा, आकांक्षा, हताशा, उत्साह, अवसाद, हर्ष, विषाद के भाव व्याप्त रहते हैं। साहित्य और समाज दोनों ही एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं। साहित्य समाज के मानसिक तथा सांस्कृतिक उन्नति और सभ्यता के विकास का साक्षी है। ज्ञान राशि के संचित कोष को साहित्य कहा जाता है। साहित्य एक ओर जहां समाज को प्रभावित करता है वहीं दूसरी ओर वह समाज से प्रभावित भी होता है। साहित्य ने सदैव समाज को नई दिशा देने का कार्य किया है। साहित्य जनमानस को सकारात्मक सोच तथा लोककल्याण के कार्यों के लिए प्रेरणा देने का कार्य करता है। साहित्य के विकास की कहानी मानव सभ्यता के विकास की गाथा है, इसलिए यह अति आवश्यक है कि साहित्य लेखन निरंतर जारी रहना चाहिए, अन्यथा सभ्यता का विकास अवरुद्ध हो जाएगा। प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग के प्रगतिशील विचारों द्वारा किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित होता है। साहित्य हमारी कौतूहल और जिज्ञासा वृत्तियों और ज्ञान की पिपासा को तृप्त करता है और क्षुधापूर्ति करता है। तात्पर्य यह है कि समाज के विचारों, भावनाओं और परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार और उसके साहित्य पर निश्चित रूप से पड़ता है। अतः साहित्य, समाज के विकास का मुखर सहोदर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मिश्र, डॉ. रामदरश, साहित्य-संदर्भ और मूल्य, साहित्यागार, एस.एम.एस, हाडवे, जयपुर सं. 1961
2. गुप्ता, एम. एल., भारतीय समाज एवं साहित्य, विकास नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली- प्र. सं. 1967
3. मिश्र, शिव कुमार, साहित्य और सामाजिक संदर्भ, कला प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1977
4. चतुर्वेदी, राम स्वरूप, साहित्य के नये दायित्व, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, सं. 1986
5. ठाकुर, डॉ. देवेश, साहित्य की सामाजिक भूमिका, संकल्प प्रकाशन, मेरठ -2, प्र.सं. 1986
6. गुप्ता, डॉ. विश्वम्भरदयाल, साहित्य-समाजशास्त्रीय संदर्भ, सीता प्रकाशन, हाथरस, प्रथम संस्करण, 1987
7. दास, डॉ. श्याम सुंदर, साहित्यालोचना, इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लि. इलाहाबाद, सं. 1993
8. शर्मा, रामविलास, भारतीय साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996
9. रोडनवर, डॉ. सुमा, विष्णु प्रभाकर की कथा साहित्य में सामाजिकता, अलका प्रकाशन, 34/6, एच.ए.एल. कॉलोनी, रामादेवी, कानपुर, सं. 2005



इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानियों में कामकाजी स्त्री की बदलती मानसिकता

—सतवीर कौर

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी विभाग), पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला-147002 (पंजाब)

इक्कीसवीं सदी भूमंडलीकरण एवं वैश्वीकरण की सदी है जिसमें संसार अब वैज्ञानिक चमत्कारों का अनुभव कर आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है। विज्ञान, तकनीक, सूचना एवं जनसंचार में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति उत्पन्न कर दी है, जिससे समस्त विश्व एक ग्राम का रूप ले चुका है। 21वीं सदी बौद्धिकता की सदी है, विमर्शों की सदी है जहां हर बात के पीछे तर्क है। इस बदलते हुए परिवेश का प्रभाव समाज के प्रत्येक पक्ष पर पड़ रहा है। वैश्विक परिवेश में बहुत ही तेजी से बदलाव हो रहा है। साथ ही इस परिवर्तनशीलता की गति में भी तीव्रता आई है। विश्व पटल पर जहां देशों के मध्य सम्बन्ध तेजी से बनते बिगड़ते जा रहे हैं, वहीं समाज के स्वरूप में भी कई तरह के बदलाव साफ-साफ परिलक्षित हो रहे हैं। कई पुरानी मान्यताएं टूट रही हैं। तेजी से बढ़ रहे सोशल मीडिया के प्रभुत्व और लोगों में शिक्षा के स्तर एवं जागरूकता के परिणामस्वरूप कई सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों पर लोग बोलने, चर्चा करने तथा उनके प्रतिकार का साहस कर पा रहे हैं। यह इस बदलाव का ही नतीजा है कि हिन्दी साहित्य भी एक दायरे का अतिक्रमण करते हुए विभिन्न समसामयिक विषयों पर प्रकाश डालते हुए नित हो रही नई-नई रचनाओं से समृद्ध होता जा रहा है।

इस बदलते जीवन स्वरूप को 21वीं शती की महिला कथाकारों ने अपनी कहानियों में अंकित किया है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अपनी सक्रियता दिखाते हुए 21वीं सदी की कहानियों में ज्वलंत विषयों को चित्रित किया गया है। 21वीं शती की हिन्दी कहानी में महिला रचनाकारों की उपस्थिति नई बात नहीं है। इन महिला कथाकारों ने अपनी कहानियों में प्रेरक व सर्जक की भूमिका निभाते हुए अपनी प्रवणता एवं संवेदनशीलता का परिचय दिया है। महिला कथाकारों ने यह सिद्ध किया है कि स्त्री द्वारा भोगे गए जीवन का प्रमाणिक व यथार्थ वर्णन जितनी सत्यता के साथ एक स्त्री करेगी उतना पुरुष नहीं कर सकता। इन लेखिकाओं की कहानियों में मूलतः महिला ही केन्द्र में है और यह समय की मांग भी है। इन महिला कथाकारों की कहानियों में सामाजिक संबंधों की जगह वैयक्तिकता को अधिक महत्त्व दिया गया है।

सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ स्त्रियों की स्थिति और मानसिकता में भी परिवर्तन आया जिससे एक आधुनिक समाज का उदय हुआ। स्त्रियां शिक्षित हुई शिक्षित होकर उनका खोया हुआ आत्मविश्वास जागा। स्त्री महसूस करने लगी कि वह सिर्फ देह मात्र नहीं है। उसकी अपनी आवश्यकताएं हैं, अपनी इच्छाएं हैं, जिसे वह पूरा करना चाहती है। स्त्री को यह एहसास हो गया कि अपनी इच्छाएं वह तभी पूरी कर सकती है जब वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो। इसी एहसास ने स्त्रियों में आत्मविश्वास जगाया अपनी अस्मिता अपनी पहचान को बनाने के लिए स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्त कर विभिन्न कार्य क्षेत्रों में प्रवेश पाने लगी। आज वह हर क्षेत्र में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। बदलते परिवेश के कारण स्त्रियों को परंपरागत रूढ़िवादी भूमिका से मुक्ति मिली है। वह अब मात्र 'ग्रहणी

की ही भूमिका तक सीमित नहीं है बल्कि आधिपत्य जवाबी और परिपक्व स्त्री के रूप में सहज देखी जा सकती है।' आज हमारे समाज की हर नारी जानती है कि उसकी आत्मनिर्भरता स्वतंत्र रूप से जीने और विकास करने के लिए आवश्यक है। आर्थिक स्वतंत्रता ही एक स्त्री के जीवन को व्यक्तिगत आधार प्रदान करती है। जिससे वह अपने निर्णयों के लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहती। स्त्री आर्थिक आत्मनिर्भरता के संबंध में प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका सिमोन के विचार में 'यदि कोई सचमुच में स्वतंत्रता चाहता है तो उसके लिए सबसे पहले और सबसे ज्यादा जरूरी है नौकरी पेशा होना, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना।'

पहले पुरुष अर्जक था और नारी आश्रिता थी। अब स्त्री शिक्षित है और उसके अर्जिका रूप ने पुरुष की श्रेष्ठता को चुनौती दी है। अब नारी पुरुष के समान ही उच्च पदों पर आसीन है और उसका यह रूप एक सामाजिक यथार्थ बन गया है। इससे नारी की मानसिक स्थिति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता में परिवर्तन आया है।

आज घरों, दफ्तरों, बैंकों, विश्वविद्यालयों आदि में कार्य करने वाली स्त्रियों को कामकाजी स्त्री कहा जाता है। कामकाजी स्त्री कहने से एक भ्रम यह भी पैदा होता है कि अन्य स्त्रियां कामकाज नहीं करती केवल गपशप ही करती रहती हैं। 'वह जो प्रायः काम धंधे में लगा रहता हो या जिसके हाथ में अनेक काम रहते हों उसे कामकाजी कहा जाता है।'

प्रायः उन स्त्रियों को कामकाजी कहा जाता है जिन स्त्रियों का श्रम प्रकट रूप से अर्थोपार्जन में लगा हो। स्त्रियां घर के सभी छोटे-बड़े काम करती हैं उन्हें कामकाजी स्त्रियों के वर्ग से बाहर नहीं किया जा सकता है। हाँ, पद के आधार पर कामकाजी स्त्री का भेद करके उन्हें यह नाम दिया जा सकता है। बौद्धिक या शारीरिक क्षमता का उपयोग करके स्वतंत्र रूप से कोई उत्पादन कार्य करके अर्थोपार्जन करने वाली स्त्रियों को कामकाजी स्त्री कहा जाता है।

आधुनिक युग में नारी की शिक्षा ने उसकी मानसिकता को तेज गति से बदला है। शिक्षा ने उसे आर्थिक सुरक्षा दी है और वह स्वावलंबी बनकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी हो गई है। वह पुरुष की दासी बनकर उसके द्वारा दिए गए मानसिक कष्टों को भाग्य की विडंबना कहकर चुप नहीं बैठती। वह अपने भाग्य की विधाता स्वयं है। शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबन ने नारी में आत्म सम्मान का भाव भरा है। वह समाज द्वारा निर्धारित स्त्री-पुरुष के लिए अलग-अलग मानदंडों को चुनौती देती है, पुरुष के समान अपने अधिकारों की मांग करती है और समाज में अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम करने के लिए प्रयत्नशील है।

आज की शिक्षित और कामकाजी स्त्री स्वयं को पुरुष के हाथों की कठपुतली नहीं बनने देना चाहती। वह अपने अधिकारों के प्रति जागृत है। उसे पता है कि अगर वह भी पुरुष के समान घर को चलाने के लिए काम करना चाहती है, तो घर और परिवार की जिम्मेदारियों का दायित्व सिर्फ उसका नहीं बल्कि घर के प्रति पति की भी उत्तनी ही जिम्मेदारी है। मालती जोशी की कहानी 'पंख तौलती चिड़िया' में ऐसी ही कामकाजी स्त्री का चित्रण हुआ है जो अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए काम करना चाहती है और उसका पति उसे बच्चों तथा पारिवारिक कार्य तक सीमित होने के लिए कहता है, तो वह इस बात का विरोध करती है। उसका पति उससे कहता है कि 'और मान लो स्लेकट हो गई तो? ये घर ये बच्चे किसके भरोसे छोड़कर जाओगी?'

'क्यों? आपकी गैरहाजरी में यह सब मैंने संभाला अब आपकी बारी है।'

'मतलब, मैं काम-धंधा छोड़कर अब तुम्हारे बच्चे पालूंगा।'

'ये बच्चे सिर्फ मेरे नहीं हैं... आपके भी हैं।'

'शायद समझ गए थे कि नदी ने तटबंध तोड़ दिया है। पानी सिर से ऊपर हो गया है। अब उसे बांधा नहीं जा सकता।' इस तरह आज की आत्मनिर्भर स्त्री पुरुष सत्ता के समक्ष एक चुनौती बनकर खड़ी है। वह अपने निर्णय स्वयं ले रही है और किसी भी प्रकार का समझौता जो उसकी स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न करता है उसे करने से इनकार

करती है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'मेरा' एक लम्बी कहानी है। इस कहानी में मृदुला गर्ग ने एक स्वतंत्र आत्मनिर्भर स्त्री को कहानी के केन्द्र में रखा है। मीता महेन्द्र से प्रेम विवाह करती है। महेन्द्र इंजीनियर है वह विदेश में जाकर रहना चाहता है जिसके लिए जरूरी है कि अभी कोई संतान न हो, किन्तु मीता गर्भवती हो जाती है। महेन्द्र चाहता है कि वह गर्भपात करा ले, किन्तु मीता इसे स्वीकार नहीं करती है तथा ठोस निर्णय लेती है कि वह माँ बनेगी तथा और मेहनत करके ज्यादा काम करेगी जिससे बच्चों का पालन-पोषण सुचारु रूप से कर सके। एक नौकरी पेशा शिक्षित स्त्री ही इस तरह के निर्णय लेने में सक्षम हो पाती है। गर्भपात न कराने का मीता का यह दृढ़ निर्णय उसे शांति देता है। 'पर उस शांति में निष्क्रियता नहीं, निर्णय झलक रहा है। तृष्टि का ऐसा भाव है, जो पर्वतारोही के मुख पर दुर्गम पर पहुंच जाने पर खिल आता होगा।' इस तरह आधुनिक कामकाजी स्त्री की मानसिकता में बदलाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहा है। वह अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम है। अपने आर्थिक स्वावलंबन के कारण उसमें आत्मविश्वास जाग उठा है जिस कारण वह अपने जीवन के प्रत्येक पक्ष पर अपना अधिकार जताना सीख गई है।

आज के भौतिकतावादी युग में बाजारवाद और बढ़ती महंगाई के कारण नारी के कंधों पर पुरुष के समान दायित्व आ पड़ा है। उसे घर और बाहर की दोहरी भूमिका को निभाना पड़ रहा है। अपनी बदली हुई मानसिकता के साथ वह अब पहले की दब्बु अबला स्त्री नहीं बल्कि एक प्रतिभा संपन्न आधुनिक स्त्री है। आज की स्त्री केवल इसलिए शिक्षा ग्रहण नहीं कर रही कि अच्छा विवाह हो जाए बल्कि अब वह ऐसी व्यावसायिक शिक्षा पाना चाहती है जो उसके जीवन को एक नई दिशा दे। आज वह अपने अधिकारों के प्रति जागृत है और अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने को आतुर है जिसके लिए वह घर बैठने की बजाए कामकाजी होना श्रेयस्कर समझती है- 'स्वतंत्र नारी विवाहित या अविवाहित पहले की तरह पति या परिवार पर निर्भर, प्रेमी या पिता की इच्छाओं पर नाचती, दया और सम्मान चाहती, अभागिन या दासी नहीं, बराबरी के हक की प्रतिक्षा और मांग करती रुढ़ि मुक्त नारी है, क्योंकि पुरुष के साथ उसका संबंध आज सच्चे अर्थों में मुक्त और स्वतंत्र है।'

शिक्षित नारी रोजी-रोटी की तलाश में घर की चारदीवारी से निकलकर बाहर आयी और विभिन्न पुरुषों से उसका सम्पर्क बढ़ा। पुरुष की ही भांति वह भी नए-नए प्रेम संबंधों को अपना अधिकार समझने लगी। नैतिकता के नए बोध से प्रभावित होकर उसने प्रेम एवं काम को अपनी दैहिक एवं जैविक मांग की दृष्टि से अपनाना शुरू किया है। महिला कहानीकारों की कहानियों में स्त्री को बड़े ही खूबसूरत ढंग से व्यक्त किया है। इनकी कहानियों में आई आधुनिक कामकाजी स्त्री परम्परावादी आदर्श मूल्यों को पूरी तरह नकारती हुई अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की स्थापना करने में सफल दिखाई देती है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'एक और विवाह' की एक शिक्षित एवं कामकाजी युवती इसी स्थिति में विवाह को निरर्थक महसूस करती है 'मैं व्यवस्थित विवाह में विश्वास नहीं करती वह विवाह जबर्दस्ती किसी की पल्लू पकड़ लेना होता है, दो कारणों में ऐसा करने की आवश्यकता पड़ सकती है- आर्थिक आलंबन की खोज या शारीरिक भ्रूख... पहले की कम से कम हमें जरूरत नहीं है। रहा दूसरा तो उसके लिए विवाह बंधन की आवश्यकता नहीं है। बेहतर है, मुक्त प्रेम जो बासी होने पर फेंक दिया जा सकता है। विवाह तब करना चाहिए जब पुरुष को उसके बिन सब अर्थहीन मालूम पड़े और स्त्री उसके बिना भी पूर्ण समर्पण करने को व्यग्र हो, तभी वास्तविक ऐक्य हो सकता है।'

इसी प्रकार मृदुला गर्ग की ही कहानी 'खरीददार' की नायिका नीना एक आत्मनिर्भर स्त्री है वह विवाह संस्थान के परम्परागत ढांचे को चुनौती देती है। अपनी संकल्प शक्ति और आगे पदोन्नति प्राप्त करके गृह मंत्रालय में संयुक्त सचिव के पद पर बैठी नीना अपने प्रेमी सुनील के यह पूछने पर कि 'नीना जी आपने अब तक विवाह क्यों नहीं किया नीना उत्तर देती है तुम तो ऐसे पूछ रहे हो जैसे कोई कहे आज खाना क्यों नहीं खाया? यह भी कोई अनिवार्य क्रिया

है क्या?’ इस प्रकार हम देखते हैं कि आज की कामकाजी स्त्री जो शिक्षित और आत्मनिर्भर है वह विवाह संस्था को अनिवार्य नहीं समझती वह स्वावलंबी है और अपने निर्णय स्वयं लेने के लिए स्वतंत्र है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण है कि वह किसी पर आश्रित नहीं है इसलिए आज की कामकाजी स्त्री की मानसिकता में आया यह बदलाव का कारण उसकी शिक्षा और आत्मनिर्भरता है।

औरत अपनी कामयाबी के साथ कोई भी समझौता करने को तैयार नहीं है। अलका प्रमोद के कहानी संग्रह ‘किलकारी’ में ऐसी ही एक महत्वाकांक्षी स्त्री रिया को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है जो अपने जीवन का स्वर्णिम समय जिसमें वह आर्थिक जगत में अपनी पहचान बनाकर कामयाबी की ऊंचाइयों को छू सकती है, संतान को जन्म देने में नहीं लगाना चाहती। वह अपने पति आदि से कहती है ‘आदि आय एम सीरियस मैंने सोच लिया है में बच्चों के चक्कर में अपना जीवन बर्बाद नहीं कर सकती।’ रिया का यह कहना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि आत्मनिर्भर होकर आज समाज में स्त्री की मानसिकता में बदलाव आया है। वह संतान पैदा करने या न करने के निर्णय को स्वयं लेने के लिए समर्थ है।

आज की आत्मनिर्भर स्त्री आत्मसम्मान के साथ जीवन जीती है ‘इस्पात’ कहानी की नायिका मित्र दी भी एक कामकाजी स्त्री है। वह हमेशा अपने कामों में लगी रहती है। पढ़ना-पढ़ाना उसकी विशेष रुचि है। उसका ज्यादा से ज्यादा वक्त ग्रंथालय में ही बीतता है। मित्र दी निडर है वह किसी से नहीं डरती है। वह कहती भी है- ‘पहले कॉलेज में लोग बहुत कुछ कहते थे, लेकिन लोगों की परवाह कौन करता है। शुरू-शुरू में बहुत कुछ सुना था। अब बीस साल हो गए पढ़ाते, मजाल है कि कोई प्रोफेसर मित्र का नाम किसी के साथ जोड़ दे।’ आज की आत्मनिर्भर स्त्री पूरी दृढ़ता के साथ अपना काम कर रही है। वह लोगों की परवाह नहीं करती कि कोई उसके बारे में क्या कह रहा है। वह आज की आत्मनिर्भर सशक्त स्त्री है।

निष्कर्ष :-

आज स्त्री बदली हुई मानसिकता के साथ घर की चारदीवारी से बाहर एक कामकाजी स्त्री के रूप में कार्य कर रही है। आर्थिक निर्भरता के कारण उसमें आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव की भावना जागी है। वह अब पुरुषों पर निर्भर नहीं है। उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान है। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता ने स्त्री को सामाजिक दासता से मुक्त कर विवेक सम्मत बनाया है इसलिए उसे आज पुरुष की सत्ता स्वीकार नहीं है। वह अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हो गई है। वस्तुतः इक्कीसवीं सदी की स्त्री अपनी शर्तों पर जीवन जीना चाहती है। उसके जीवन के कुछ आदर्श हैं, कुछ सिद्धांत हैं, कुछ खवाहिशें हैं जिन्हें वह किसी भी हाल में खोना नहीं चाहती है। अपने आत्मसम्मान को बचाने के लिए वह निरंतर संघर्ष कर रही हैं।

संदर्भ-सूत्र :-

1. स्वपिन्त सारस्वत व निशांत सिंह, समाज, राजनीति और महिलाएं, दशा और दिशा, पृ. 59
2. सिमोन बोवुआर, स्त्री के पास खोने के लिए कुछ नहीं है, मनीषा पांडेय (अनु), संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2004, पृ. 50
3. रामचन्द्र शर्मा, मानक हिंदी कोश-भाग-एक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1966, पृ. 512
4. मालती जोशी, पिया पीर न जानी, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 81
5. मृदुला गर्ग, स्थगित कल, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2017, पृ. 124
6. राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समान्तर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1971, पृ. 60
7. मृदुला गर्ग, हरी बिंदी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 24
8. वही, पृ. 117
9. अलका प्रमोद, स्वयं के घेरे, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2013, पृ. 3
10. सुधा अरोड़ा, कांसे का गिलास, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 2004, पृ. 131



साहित्य और समाज का संबंध

- शिवलाल अहिरवार

सहायक प्राध्यापक - हिंदी, शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, देवरी, जिला-सागर (म. प्र.)

साहित्य का अर्थ :-

साहित्य की परिभाषा करते हुए कहा गया है 'हितेन सहितम्' अर्थात् जो हित साधन करता है, वह साहित्य है। साहित्य उस रचना को कहते हैं जो लोकमंगल का विधान करती है। मुंशी प्रेमचंद के अनुसार 'साहित्य जीवन' की आलोचना है। इस युक्ति से यह स्पष्ट है कि साहित्य का जीवन से घनिष्ठ संबंध है। साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति किसी ना किसी रूप में अवश्य होती है, वह नितांत जीवन निरपेक्ष नहीं हो सकता, इतना अवश्य है कि उसका कुछ अंश यथार्थ होता है, तो कुछ काल्पनिक होता है। भारतीय चिंतक एवं कवि साहित्य के उपयोगितावादी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। कविवर मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार :-

“मानते हैं जो कला को बस कला के अर्थ ही।

स्वार्थनी करते कला को व्यर्थ ही।।”

कला हमारी मार्गदर्शिका है, साहित्य हमारा प्रेरक है और संस्कृति हमारी पहचान है। इसी की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में हुई है-

‘किंतु होना चाहिए क्या कुछ और कहां?

व्यक्त करती है इसी को तो कला।’

साहित्य और समाज के अंतर्संबंध :-

साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होता है। एक साहित्यकार समाज में विशेष परिवेश में रहकर समाज में क्या घटित हो रहा है, वह सब अपनी रचनाओं में व्यक्त करता है। साहित्य के जिन व्यक्तिक सुख-दुःख, राग-विराग एवं सफलता-असफलता आदि का चित्रण होता है बेशक बे सब समाज में ही पनपते हैं।

साहित्य और समाज में आपसी संबंध हैं और जैसा समाज होता है, समाज में जो रीति रिवाज चल रहे होते हैं, जो दृष्टिकोण चल रहे होते हैं, साहित्य उनके अनुसार ही बनता है इसलिए साहित्य में समाज के अंदर की बातें उनके अंतर्द्वंद उनके दृष्टिकोण उनके विचार विनिमय सबको बताता है। साहित्य जैसी-जैसी घटनाएं समाज में घटित होती हैं वैसा ही आप साहित्य में देखेंगे। साहित्य ने कई प्रथाओं का पर्दाफाश कर सकता है कि हमारे समाज में क्या चल रहा है? साहित्य में जैसा हम समाज में देखते हैं वैसा ही हम लिखते हैं और कहानियां भी वैसी ही बनने लगती हैं अतः साहित्य और समाज के अंतर संबंधों को नकारा नहीं जा सकता है।²

समाज में साहित्य की भूमिका :-

समाज शब्द का अर्थ है, समान कार्य करने वालों का समूह या विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठित संख्या। मानव जीवन की लंबी यात्रा में सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में उसको सही दिशा पर ले जाने का श्रेय साहित्य और साहित्यकार को होता है। साहित्यकार समाज में जो अनुभव करता है मानवीय दृष्टि से देखता है उसी को साहित्य

के माध्यम से व्यक्त करता है इसीलिए साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है। जिस तरह दर्पण में हम अपने प्रतिबन्ध को देखकर सजते-संवरते हैं उसी प्रकार साहित्य के माध्यम से यह सामाजिक कार्य होते रहते हैं। समाज में विकासशील परिवर्तन लाने में साहित्य और साहित्यकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण है। जो चीजें समाज में घटित होती हैं साहित्य में भी वह चीज दिखती है। साहित्य का पहला काम मनोरंजन होता है, उसके बाद ही हम संवेदनशील और उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं। साहित्य मनुष्य को सिर्फ संवेदनशील ही नहीं बनाती बल्कि समाज और व्यक्ति के संबंधों को उद्धृत और मजबूत बनाती है। साहित्य मनुष्य की भावनाओं का पुंज है। समाज में एक व्यक्ति की भावनात्मक और समाजात्मक हाव-भाव को साहित्य ही दिशा देता है। साहित्य मनुष्य के बुरे और संकुचित भावों से ऊपर उठाने का कार्य करता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी - कहते हैं साहित्य का लक्ष्य मनुष्य है। बिना मनुष्य के साहित्य का कोई महत्व नहीं साहित्य सिर्फ मनुष्य को दिशा देती है उसी से फिर समाज की दिशा तय होती है।³

साहित्य का उद्देश्य :-

साहित्य से अभिप्राय यही है कि जो कुछ लिख दिया जाए वह सब का सब साहित्य है। साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा परिमार्जित और सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है। जब उसमें जीवन की सच्चाई और अनुभूतियां व्यक्त की गई हो। बोलचाल से हम अपने करीब के लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं - अपने हर्ष-शोक के भावों का चित्र खींचते हैं। साहित्यकार वही काम लेखनी द्वारा करता है। यदि साहित्यकार के साहित्य में सच्चाई है तो वह साहित्य शताब्दियों और युगों तक मानव हृदय को प्रभावित करता रहेगा। साहित्य की बहुत सी परिभाषाएं की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए। निस्संदेह काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है, पर मनुष्य का जीवन केवल स्त्री-पुरुष प्रेम का जीवन नहीं है। श्रृंगारिक मनोभाव मानव-जीवन का एक अंग मात्र है जिस साहित्य का अधिकांश इसी से संबंध रखता है, वह उस जाति और उस युग के लिए गर्व करने की वस्तु नहीं हो सकता, और ना उसकी सुरुचि की ही प्रमाण हो सकता है। हम इसका दोष उस समय के साहित्यकारों पर भी नहीं रख सकते। साहित्य अपने काल का प्रतिबिंब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदय को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं। हम साहित्यकार से भी यह रखते हैं कि वह अपनी योग्यता और अपने विचारों की विस्मृति से हमें जागृत करें। साहित्य का कार्य केवल मन बहलाने का सामान जुटाना नहीं है। केवल लोरिया गागाकर केवल आंसू बहाकर जी हल्का करना था, तब इसके लिए कर्म की आवश्यकता ना थी। हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईओं का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करें।⁴

संवेदनशील समाज के निर्माण में साहित्य की भूमिका :-

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में जो भी घटित होता है वह साहित्य में प्रतिबिंब होता है। कवि की अनुभूति ही काव्य रूप में अभिव्यक्ति पाती है। यह अभिव्यक्ति किसी भी भाषा में हो सकती है। भाषा केवल माध्यम हैं, भाव ही मुख्य हैं, परंतु यह प्रमाणित है कि संचार की समस्त कृतियों में रिग वेद प्रथम कृति है। इससे यह भी प्रमाणित हो जाता है कि संस्कृत भाषा प्राचीन भाषा है। संसार का प्राचीनतम ज्ञान विज्ञान कोश इसमें निहित है। संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के उत्कृष्ट जीवन मूल्य, जीवन दर्शन, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परंपराओं का प्रतिबन्ध है। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का भी संवाहक है। अनेक साहित्यिक रचनाएं भी समय-समय पर लिखी

गई जिसमें तत्कालीन सामाजिक गतिविधियां उद्घाटित होती हैं। संस्कृत साहित्य में व्यक्त हैं कि परोपकार मानवीय गुण समाज के लिए शांति एवं सुख देता है। परोपकार में त्याग की भावना विद्यमान रहती है। साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की श्रंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। संस्कृत साहित्य और हिंदी साहित्य दोनों ही साहित्य में समाज जागरण के लिए अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है। कभी तत्कालीन स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी व्यक्त की है।

साहित्य समाज का दर्पण है वह कैसे? जिस तरह से आप दर्पण या शीशे में अपने आप को देखते हो या निहारते हो, तो आप उसी तरह से दिखाई देते हो जैसे हो, आपको ठीक उसी तरह से साहित्य भी ऐसे देखने को मिलेगा जैसे समाज है क्योंकि कोई लेखक वहीं कविता लिखता है जो वह समाज में देखता है या सुनता है। समाज की क्रियाकलाप ही उसको लिखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। जैसे मुंशी प्रेमचंद ने अपनी कहानियों या उपन्यास में वही लिखा है जो उस समय उन्होंने देखा और जो उनको अनुभूति हुई उसी को उन्होंने साहित्य रूप में अभिव्यक्त किया और सभी के समक्ष प्रस्तुत कर दिया साहित्य में निश्चित ही लेखक के अनुभव और अनुभूति होती है।⁵

सारांश :-

निश्चित ही साहित्य समाज का दर्पण होता है। कवि समाज से जो ग्रहण करता है, उसी को साहित्यिक रूप में अभिव्यक्त करता है। साहित्य को किसी एक भाषा में बांधना उचित नहीं है, क्योंकि सभी भाषाओं का साहित्य कहीं ना कहीं हमें प्रेरणा देता है, और समाज को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। जब भी आप मायूस होते हैं, असफल होते हैं तब आप साहित्य का सहारा लेते हैं, और पुनः ऊर्जा का संचार होने लगता है और आप अपने कर्तव्य पथ पर निडरता से डटे रहते हैं। भाषा तो सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम है, मुख्य हैं, साहित्यकार के भाव या विचार चाहे संस्कृत साहित्य हो या हिंदी साहित्य। कितने ही कवि और लेखक और उनका साहित्य हमारे समाज को मार्गदर्शन देता है। साहित्य में अद्भुत शक्ति होती है। संस्कृत साहित्य में सभी वेद, पुराण, गीता, रामायण सदियों से हमारे समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं। हिंदी साहित्य की बात की जाए तो हमारा साहित्य निश्चित ही बहुत समृद्ध है। बड़े-बड़े कवि और लेखकों ने हिंदी साहित्य में अपना योगदान दिया है, जैसे तुलसीदास, सूरदास, मैथिलीशरण गुप्त, रहीम, निराला, रसखान, भारतेन्दु, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन, बिहारी जायसी, भूषण और मुंशी प्रेमचंद आदि ने हमारे हिंदी साहित्य के भंडार को समृद्ध करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है वही साहित्य हमारा, हमारे समाज का आज भी मार्गदर्शन कर रहा है।

सन्दर्भ सूची :-

1. <https://www.mychoching.in>
2. लेख, नीता नायर सामाजिक कार्यकर्ता।
3. जय विजय, मासिक पत्रिका पी रवीन्द्र नाथ।
4. साहित्य का उद्देश्य, निबंध प्रेमचंद।
5. लेख, संजीव कुमार।



उद्योग और समाज

– मनीषा शर्मा

सहा. प्राध्यापक-अर्थशास्त्र, शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरी, जिला सागर, मध्य प्रदेश

औद्योगिकरण का अर्थ :-

औद्योगिकरण का अर्थ उस तकनीकी या औद्योगिकरण की उस प्रक्रिया से लगाया जाता है जिसके द्वारा कम समय में और कम लागत में अधिक से अधिक उत्पादन किया जा सके। औद्योगिकरण एक संचार प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं के निर्माण के साथ-साथ आर्थिक विकास पर भी जोर दिया जाता है उद्योगों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है कच्चे माल को लाने ले जाने के लिए यातायात और संचार के साधनों की आवश्यकता पड़ती है ताकि ज्यादा से ज्यादा उत्पादन का क्रय-विक्रय किया जा सके उद्योगों के लिए प्राकृतिक संसाधन यातायात बिजली की आवश्यकता पड़ती है जिससे बिना रुकावट के उत्पादन कार्य किया जा सके और आर्थिक विकास को बढ़ाया जा सके।

उद्योग की समाज में भूमिका :-

औद्योगिकरण की प्रक्रिया यूरोप से शुरू हुई और सबसे पहले 1760 में ब्रिटेन में औद्योगिकरण शुरू हुआ औद्योगिकरण से ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था में बहुत परिवर्तन हुआ इतना परिवर्तन कहीं भी देखने नहीं मिला था यहां का आर्थिक विकास तीव्र गति से बढ़ा लोगों की प्रति व्यक्ति आय बढ़ी इनकी जीवन स्तर में सुधार हुआ रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई और गरीबी धीरे-धीरे कम होने लगी इस तरह से उद्योगिकरण की प्रक्रिया संपूर्ण पश्चिमी देशों जैसे यूरोप संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा इसके अतिरिक्त जापान आस्ट्रेलिया आदि में फैल गई इस परिवर्तन का संपूर्ण समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा और इन देशों ने विकास किया और वृद्धि को प्राप्त कर लिया।

भारतीय समाज और औद्योगिकरण :-

औपनिवेशिक शासन के समय विस्तारवादी नीति अपनाते हुए ब्रिटिश शासन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बहुत ही हानि पहुंचाई यहां के लघु और कुटीर उद्योगों को पूरी तरह से खत्म कर दिया लोग बेरोजगार हो गए जिसमें गरीबी बढ़ने लगी और खाने की समस्या भी पैदा हो गई ब्रिटिश सरकार ने जो भी विकास के कार्य किए वह अपने देश के हित को देखते हुए थे और भारत से पूंजी को भी विदेश भेजने लगे इस तरह से भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई थी आजादी के बाद देश का विभाजन जाने से बहुत बड़ी मात्रा में धन की हानि जिससे जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को यह बड़ा झटका लगा। भारत के सामने बहुत बड़ा खाद्यान्न संकट गहराया भारत को एक व्यवस्थित विकास की जरूरत थी इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश के विकास को बढ़ाने का प्रयास किया गया। और 1956 से आधारभूत एवं पूंजीगत उद्योगों पर विशेष बल दिया गया दूसरी पंचवर्षीय योजना 1956 में ही उद्योगों को प्राथमिकता दी गई क्योंकि औद्योगिकरण के बिना कोई भी देश विकास नहीं कर सकता।

अतः उद्योगिकरण से भारतीय समाज पर परिवर्तन देखने मिला लोगों को रोजगार मिला कृषि में भी औद्योगिकरण लागू किया गया ताकि कृषि से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। क्योंकि भारत एक

विकासशील देश है और यहां की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है 69 प्रतिशत जनसंख्या आज भी कृषि में लगी हुई है और जीवन निर्वाह कर रही है इसलिए कृषि में तकनीक को बढ़ावा देना एक महत्वपूर्ण कार्य था औद्योगिकरण से देश में एक तरफ आर्थिक विकास को गति मिली तो दूसरी तरफ भारतीय समाज में भी परिवर्तन देखा गया लघु और कुटीर उद्योगों को स्थापित किया गया और लघु और कुटीर उद्योग के माध्यम से लोगों को रोजगार मिलना प्रारंभ हुआ भारत में 1948 में पहली उद्योग नीति की घोषणा हुई जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया 1948 की उद्योग नीति में संपूर्ण उद्योगों को 4 वर्गों में बांटा गया। पहले वर्ग में वे उद्योग रखे गये जो सरकार के स्वामित्व में थे -दूसरी वर्ग में 6 उद्योग रखे गए जिनकी नवीन इकाइयों की स्थापना का दायित्व सरकार का था-तीसरी वर्ग में राष्ट्रीय महत्त्व के 18 उद्योगों को रखा गया था जिन पर सरकार के द्वारा ही संपूर्ण नियंत्रण रखा था -चौथा वर्ग अन्य सभी उद्योगों का था जिन्हें निजी क्षेत्र के द्वारा विकसित किया जाना था।

उद्योग नीति 1948 के तहत ही भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना हुई लेकिन इस नीति के तहत सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत बहुत सारे उद्योगों को रखा गया था और परियोजना पर व्यय किया गया मिश्रित। अर्थव्यवस्था को और अधिक शक्ति प्रदान करने के लिए 1956 में नई औद्योगिक नीति लागू की गई इस नीति का उद्देश्य तीव्र आर्थिक विकास, उद्योगीकरण, आधारभूत उद्योग का विकास, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार तथा आर्थिक केंद्रीकरण को समाप्त करना था।

1956 की नीति में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र दोनों के सह-अस्तित्व को स्वीकार किया गया और इन के बीच परस्पर सहयोग की भावना पर जोर दिया गया इस नीति के अंतर्गत उद्योगों को 3 वर्ग में बांटा गया। केंद्र सरकार का एकाधिकार क्षेत्र, सार्वजनिक व निजी उपक्रमों का मिश्रित क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र इस नीति के अंतर्गत निजी क्षेत्र को स्वतंत्रता दे दी गई और उनमें राष्ट्रीयकरण की भावना को समाप्त कर दिया जिससे निजी क्षेत्र में अनिश्चितता का वातावरण खत्म हो गया और इसके अतिरिक्त सरकार ने निजी क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक सहायता के लिए आश्वासन भी दिया इस तरह से निजी क्षेत्र प्रभावशाली रहा। 1948 की औद्योगिक नीति में इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि उत्पादन में निरंतर वृद्धि हो और 1956 की नीति में संशोधन करके इस बात पर महत्त्व दिया गया कि आर्थिक विकास की दर में वृद्धि हो तथा उद्योग विकास में तेजी पर बल दिया गया इसके बाद नई उद्योग नीति 1991 में लागू की गई इसे आर्थिक सुधारों को काल भी कहा जाता है इस नीति में उद्योगों को और अधिक स्वतंत्रता प्रदान करने की बात की गई।

इस नीति के माध्यम से उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण को अपनाया गया जिससे आयात निर्यात बड़ा लघु और कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन मिला और लोगों को रोजगार के अवसर मिलना प्रारंभ हो गए इस नीति में भारत के लिए के विकास की आधारशिला रखी। उद्योगों की स्थापना से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संभव हुआ उत्पादकता में वृद्धि हुई कृषि की पूरक के रूप में सहायक हुए पूंजी निर्माण की दर में तीव्र गति से वृद्धि हुई इसके अतिरिक्त व्यापार बैंकिंग बीमा परिवहन विद्युत इत्यादि का विस्तार हुआ इसके साथ ही उद्योगीकरण के कारण तेजी से शहरीकरण हुआ जिससे शिक्षा स्वास्थ्य यातायात सुविधाओं का विस्तार हुआ। अतः इन नीतियों ने भारत में उद्योग का विस्तार किया और इसका सकारात्मक प्रभाव समाज पर देखने को मिला।

उद्योगों के प्रकार :-

- | | |
|------------------------------|-----------------------------|
| 1. कुटीर उद्योग | 2. सरकारी क्षेत्र के उद्योग |
| 3. एकल स्वामित्व वाले उद्योग | 4. पर्यटन उद्योग |
| | 5. लघु उद्योग |

उद्योगों का वर्गीकरण :-

प्राथमिक क्षेत्र - यह क्षेत्र कच्चे माल से संबंधित है। जैसे-खनन (माइनिंग) कृषि इत्यादि।

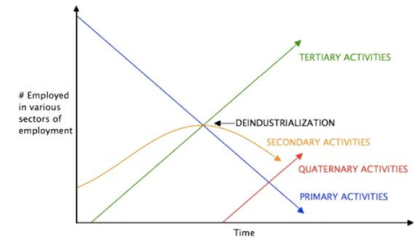
द्वितीयक क्षेत्र - इसके अंतर्गत निर्माण (मैन्युफैक्चरिंग) तेल शोधक कारखाने इत्यादि से जुड़े उद्योग आते हैं।

तृतीय क्षेत्र - क्षेत्र के अंतर्गत सेवाएं जैसे कानून स्वस्थ एवं उत्पादों के वितरण से संबंधित उद्योग आते हैं।

चतुर्थ क्षेत्र - यह चूँकि नया क्षेत्र है इसलिए इसमें ज्ञान आधारित सेवाएं आती है जैसे अनुसंधान डिजाइन एवं विकास कंप्यूटर प्रोग्राम जैव रसायन इत्यादि आते हैं।

इसके अतिरिक्त पांचवें क्षेत्र का भी अस्तित्व के माना जाता

है जो कार्य तो करता है पर इसमें किसी भी तरह का लाभ नहीं होता।



कोलिन क्लार्क का सेक्टर मॉडल (1950)

किसी भी अर्थव्यवस्था में उद्योगों के इन क्षेत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है और सामाजिक के एक बहुत बड़े वर्ग को इन क्षेत्रों रोजगार में रोजगार प्राप्त है।

समाज में दो वर्ग होते हैं संगठित और असंगठित भारत में असंगठित क्षेत्र में बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार हैं। अतः प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्र में असंगठित क्षेत्र के लोगों को बड़ी संख्या में रोजगार प्राप्त है। अतः कह सकते हैं कि एक अच्छे समाज के निर्माण में उद्योग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है!

औद्योगिकीकरण का उद्देश्य -

भारत के आर्थिक विकास को बढ़ाना था और भारत की समस्याएं बेरोजगारी गरीबी भुखमरी इन समस्याओं को दूर करना था औद्योगिकीकरण के माध्यम से लघु और कुटीर उद्योगों को स्थापित किया गया जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार उपलब्ध हो सके उद्योगों के कारण गुणवत्ता वाले उत्पाद सस्ते दामों पर उपलब्ध होने लगे जिससे लोगों की जीवन स्तर में सुधार हुआ और साथ ही जीवन स्तर सुविधाजनक और आसान हुआ और कृषि को प्रोत्साहन मिला शिक्षाविदों का उद्देश्य था कि सामाजिक प्रगति के लिए नई संभावनाओं का सृजन हो और इसके लिए परंपरागत रूढ़ियों को तोड़ना आवश्यक था इसके लिए शिक्षा के साथ यांत्रिक शिक्षा भी आवश्यक थी क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है यहां की 69 प्रतिशत जनसंख्या आज कृषि पर निर्भर है। शिक्षा को बढ़ावा दिया गया जिससे भारतीय समाज में बदलाव देखा गया लोग शिक्षित होने लगे जिससे उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम भी समझ में आने लगे और जनसंख्या वृद्धि में नियंत्रण करने के लिए प्रयास किए जाने लगे और लोग गांव से शहरों की तरफ रोजगार के लिए आने लगे और कुछ को लघु और कुटीर उद्योग के माध्यम से रोजगार संभव हुआ।

औद्योगिकीकरण ने भारतीय समाज को एक व्यवस्थित रूप दिया। उद्योगीकरण के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है जो कि राष्ट्रीय आय को बढ़ाती है बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय देश की विकास का सूचक होती है। भारत गांव का देश है और भारत की 69 प्रतिशत जनसंख्या गांव में निवास करती है। भारतीय समाज में औद्योगिकीकरण के पश्चात अन्य क्षेत्रों में परिवर्तन देखने को मिला लोगों को रोजगार मिला तो दूसरी तरफ सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए औद्योगिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विकासशील से विकसित या समृद्धि की तरफ ले जाती है। अतः उद्योगों का भारतीय समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

संदर्भ :-

1. औद्योगिक अर्थशास्त्र (डॉक्टर एस. सी. जैन) पुन मुद्रित संस्करण 2016 पेज नंबर-28, 78



भारतीय समाज पर संचार माध्यमों का प्रभाव और हिंदी भाषा की स्थिति

- डॉ. सुशीला लड्डा, शोध निर्देशिका

- आलोक सक्सेना, शोध छात्र

हिंदी विभाग, मेवाड़ विश्वविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश :-

भारतीय समाज पर संचार माध्यमों का प्रभाव बहुत ही धनात्मक है। भारत के उत्तर से दक्षिण तक, दक्षिण से पूर्व तक, पूर्व से पश्चिम तक और पश्चिम से उत्तर तक हिंदी के विकास में संचार माध्यमों ने तो अपनी भूमिका बखूबी अदा की, यदि इसे संपूर्ण भारत के लोग दिल से अपनाते तो आज वर्तमान में हिंदी भाषा की स्थिति कुछ और ही होती। हिंदी अपनी राजभाषा है और राष्ट्रभाषा के रूप में कोई संविधान दर्जा दे यह कोई जरूरी नहीं है। जनता मानेगी तो अपने आप हिंदी राष्ट्रभाषा बन जाएगी। साथ ही हिंदी प्रेमी चाहेंगे तो हिंदी अपनी राष्ट्रभाषा जरूर बनेगी। संचार माध्यमों ने तो राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को देश नहीं बल्कि विदेश तक पहुंचाकर विश्वव्यापी बनाने में अपना जमकर योगदान दिया है। मगर फिर भी हमारे देश की हिंदी भाषा अभी राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई हैं। राजभाषा के रूप में मान्यता है। संचार माध्यमों के अंतर्गत आकाशवाणी को ले तो आकाशवाणी, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के ध्येय वाक्य पर अपना विश्वव्यापी कार्य कर रहा है। भारतीय समाज पर आकाशवाणी के कार्यक्रमों का गहरा प्रभाव पड़ता है। आकाशवाणी अपने कार्यक्रमों में सूचना एवं शिक्षा प्रदान करता है। सांस्कृतिक एवं कलात्मक दृष्टिकोण से उनमें क्षेत्रीय कार्यक्रमों की प्रधानता बनी रहती है। यहां श्रोताओं की रुचि का विशेष ध्यान रखा जाता है। आकाशवाणी मनोरंजन के साथ-साथ सामान्य जनजीवन की महत्वपूर्ण परंपराओं का ध्यान रख कर अपने प्रसारण करता है तथा साथ ही सरकार की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय नीतियों को निष्पक्ष होकर प्रसारित करते रहना भी उसका कर्तव्य है।

आज भारतीय समाज पर संचार माध्यमों के अंतर्गत दूरदर्शन की भी अहम् भूमिका सामने आती है। भारतीय समाज के जन-जन के सामाजिक कल्याण और बुनियादी विश्वास हेतु 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' के अपने ध्येय वाक्य पर खरा उतरता हुआ दूरदर्शन, हिंदी भाषा, साहित्य, संस्कृति और कला में बेहद जनोपयोगी सिद्ध हो रहा है। दूरदर्शन ने हिंदी साहित्यिक कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक चेतना का विकास किया है। 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' की लोक अवधारणा से जुड़ा हुआ दूरदर्शन हिंदी और हिंदी साहित्य से जुड़ा हुआ एक बेहतरीन मंच कहा जाए तो कोई अतिणयोक्ति नहीं होगी। दूरदर्शन सामाजिक सरोकार का सबसे बड़ा लोक प्रसारक केंद्र है। भारतीय समाज के जन-जन पर संचार माध्यमों का धनात्मक प्रभाव और समृद्ध हिंदी भाषा की स्थिति निहित व्यक्तित्व जब समाज में खड़ा होता है तो भाषा विवाद नहीं बनती।

प्रस्तावना :-

अपने भारतीय समाज पर संचार माध्यमों का प्रभाव तो बहुत गहरा पड़ता है। कोई भी भाषा हो या साहित्य जब वह किसी भी संचार माध्यम के जरिए प्रसारित होता है तो सामाजिक जन चेतना से ओत-प्रोत होता है। प्रत्येक भाषा श्रव्य और पठन-पाठन से ही अपना प्रभाव छोड़ पाती है। देख कर, सुनकर, समझाकर भाषा का निरंतर प्रयोग ही उसकी परिपक्व सफलता का गहरा राज होता है। भारतीय समाज में मौजूद भाषा के नित्य नए-नए प्रयोग भाषा को समृद्ध बनाते हैं। नए-नए शब्दों की रचना भी भाषा के प्रयोग से होती है। भाषा के विकास में देखना-सुनना-समझना ही उसका विकास विश्लेषित करता है। किसी भी भाषा का कार्यक्रम हो जब वह दृश्य और श्रव्य माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है तो उसकी व्याप्ति असीम और अद्वितीय हो जाती है। दूरदर्शन राष्ट्रभाषा के विकास में बस यही अभिव्यक्ति पेश करता है। अच्छा है कि अभी दूरदर्शन पर हिंदी भाषा की गरिमा को ठेस पहुंचाने वाली कोई बात नहीं मिलती। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर अभी अपनी हिंदी भाषा के खिचड़ी मोह को स्थान नहीं मिला है इसीलिए आकाशवाणी एव दूरदर्शन हिंदी भाषा के विकास में अपनी महत्वपूर्ण अहम् भूमिका अदा कर रहा है। भारतीय समाज की सामाजिक चेतना का विकास भी इसी में निहित है। चाणक्य, रामायण, महाभारत जैसे धारावाहिक अत्यंत लोकप्रिय हुए जिनमें प्रयुक्त हिंदी विशुद्ध व संस्कृतनिष्ठ थी जो हमारे संस्कृति के साथ साथ राष्ट्रभाषा हिंदी की समृद्धि व व्यापकता का परिचायक है।¹

आकाशवाणी का ध्येय वाक्य है - 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।' आकाशवाणी एवं दूरदर्शन एक लोक सेवा प्रसारक होने के नाते सभी भाषाओं का प्रचार एवं प्रसार जमकर कर रहा है। जिनमें हिंदी की प्रधानता देखने को मिलती है। दूरदर्शन का ध्येय वाक्य है- 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्'।

भारतीय समाज में टेलीविजन के माध्यम से प्रसारित विज्ञापनों की भाषा हिंदी होने से अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी अपने उत्पादों को राष्ट्र भाषा हिंदी के माध्यम तक उपभोक्ताओं तक पहुंचा रही है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां न केवल विज्ञापन बल्कि अपने उत्पादों की लोकप्रियता, उत्पादों के पक्ष व विपक्ष के विचारों को जानने तथा अन्य उत्पादों से अपने उत्पादों की तुलनात्मक प्रतियोगिता की होड़ के लिए सर्वेक्षण आदि विभिन्न कार्य हिंदी में ही करवा रही है क्योंकि उन्हें लगता है, अपने उत्पादों को घर-घर पहुंचाने में हिंदी सबसे अच्छा मार्ग है तथा सबसे बड़े उपभोक्ता समूह को हिंदी भाषा से अपने ओर लाकर अपने उत्पादों को बेचा जा सकता है। अतः यह अपने कर्मचारियों को समय-समय पर हिंदी भाषा का प्रशिक्षण भी कराती है।² इस तरह टेलीविजन द्वारा हिंदी भाषा का प्रसार-प्रचार होता है और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की चांदी भी खूब होती है।

विद्वानों का मंतव्य-विवेचन :-

कोई भी भाषा कुल मिलाकर आदतों का समूह है। जब अंग्रेजी में काम करने का आदी व्यक्ति लिखने बैठता है तो अपने मुताबिक अंग्रेजी शब्दजाल का इस्तेमाल करते हुए लेख तैयार करता है फिर उसका अनुवाद कराता है। अनुवादक के पास शब्द चयन की वह आजादी नहीं होती है जो मूल लेखक के पास होती है। अनुवादक पर आम तौर पर दो दबाव काम करते हैं, एक, अनुवाद की शुद्धता, दूसरा समय की सीमा। परिणामतः संप्रेषणीयता के मामले को चाहकर भी अहमियत नहीं दे पाता है। अतः जब तक मूल लेखन में हिंदी का प्रयोग नहीं होता है तब तक संप्रेषणीयता की समस्या बनी रहेगी। अनुवाद के माध्यम से सरल, सुबोध और संप्रेषणीय भाषा की अपेक्षा करना हिंदी के विकास की दृष्टि से हितकर नहीं है।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को सर्वस्वीकार्य बनाने में रेडियो की उल्लेखनीय भूमिका रही है। आकाशवाणी ने समाचार, विचार, शिक्षा, सामाजिक सरोकारों, संगीत, मनोरंजन आदि सभी स्तरों पर अपने प्रसारण के माध्यम से हिंदी को देश के कोने-कोने तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसमें हिंदी फिल्मों और फिल्मी गीतों का विशेष स्थान रहा है। हिंदी फिल्मी गीतों की लोकप्रियता भारत की सीमाओं को पार कर रूस, चीन और यूरोप तक जा पहुंची। आकाशवाणी की विविध भारती सेवा तथा अन्य कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रसारित फिल्मी गानों ने हिंदी को देशभर के लोगों की जबान पर ला दिया। हिंदी को देशव्यापी मान्यता दिलाने में फिल्मों की भी महती भूमिका रही है किंतु फिल्मों से अधिक लोकप्रिय उनके गीत रहे हैं जिन्हें जन-जन तक पहुंचाने का काम आकाशवाणी ने किया। अब वही काम निजी एफएम चैनल कर रहे हैं। एफएम चैनल हल्के-फुल्के कार्यक्रमों, वाद-संवाद और हास्य-प्रहसन के जरिए हिंदी का प्रसार कर रहे हैं।

रेडियो चूंकि पूर्णतः बोले जाने वाले शब्दों का माध्यम है। इसलिए रेडियो की विशिष्टता उसकी भाषा के संदर्भ में भाषित होती है। वास्तव में रेडियो ध्वनि का ऐसा संप्रेषक है, जिससे वाणी का बहुत विकास हुआ है। आज साक्षर, निरक्षर, निर्धन, धनवान, नेत्रहीन सभी के लिए रेडियो बरदान है। रेडियो ही लोकतंत्र का संबल है। यह एक आकाशीय विद्यापीठ है, जिसके क्षरा विश्व का ज्ञान हो जाता है।³

किसी भाषा के प्रचार में आजकल रेडियो का बहुत बड़ा हाथ है। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं या पुस्तकों से रेडियो में यह वैशिष्ट्य है कि वह जीवित भाषा सामने लाता है। जीवित भाषा से तात्पर्य उच्चरित भाषा से है, अर्थात् भाषा जिस रूप में बोली जाती है, उसे रेडियो उसी रूप में प्रस्तुत करता है।⁴

श्रीमती इंदिरा गांधी ने दूरदर्शन के बारे में कहा- 'हम दूरदर्शन का विस्तार न केवल मनोरंजन के साधन के रूप में वरन विकास के लिए शिक्षा के साधन के रूप में करना चाहते हैं।' अन्य बातों के साथ-साथ उन्होंने यह भी कहा था- 'यह पद्धति लोकतंत्र के लिए सहायक सिद्ध होगी। ग्रामों में आधुनिकीकरण में उसका योग निर्णायक हो सकता है। किसानों के लिए देखना ही विश्वास करना है।'⁵

डॉ. हरिमोहन ने इसे वर्तमान युग की उपलब्धि के रूप में माना है- 'जहां तक पत्रकारिता का संबंध है, टेलीविजन माध्यम बहुत ही उपयोगी और लोकप्रिय हो चुका है। इसने लोकप्रियता की सारी सीमाएं पार कर दी हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का सबसे शक्तिशाली स्वरूप यदि कम्प्यूटर के बाद जिस इलेक्ट्रॉनिक संसाधन में उभरा है, तो वह है- टेलीविजन।'⁶

साहित्यकार कमलेश्वर दूरदर्शन के विषय में कहते हैं- 'दूरदर्शन सिनेमा नहीं है। दूरदर्शन अखबार भी नहीं है। यह रंगमंच या लोककलाओं का प्रदर्शन मंच भी नहीं है। यह एक कल्चरल फैक्टरी है। जनसंचार का यह सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है। रेडियो से केवल आवाज सुनी जा सकती है, परंतु दूरदर्शन से आवाज के साथ घटनाओं के चित्रों का भी हूबहू आनंद लिया जा सकता है।'⁷

इंटरनेट और इंटर-एनएसडी पर समाचार :-

भारतीय समाज के आधुनिक युग में संचार माध्यमों के तहत इंटरनेट की भूमिका के बारे में तो अब सभी परिचित हैं। इंटरनेट ने समाज में अपना एक अहम् स्थान ही नहीं बनाया बल्कि आज सभी वर्ग के लोगों की घर बैठे जरूरत भी बन गया। संचार माध्यमों के अंतर्गत आकाशवाणी के समाचार प्रेमी इंटरनेट और इंटर-एनएसडी पर भी नवीनतम समाचार प्राप्त कर सकते हैं और समाचार सेवा प्रभाग (एनएसडी) की आधिकारिक वेबसाइट डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू

न्यूजऑनएआईआर डॉटकॉम और डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू न्यूजऑनएआईआर डॉटएनआईसी डॉटइन हैं। साथ ही, यहां पर मुंबई, धारवाड़, चेन्नई, पटना, भोपाल, और त्रिची जैसी क्षेत्रीय समाचार इकाइयों से समाचार बुलेटिन हिंदी और अंग्रेजी के अलावा मराठी, कन्नड़, तमिल फॉन्ट्स में मिलते हैं। श्रोतागण अपनी विभिन्न 11 भाषाओं में क्षेत्रीय बुलेटिन सुनने के लिए वेबसाइट पर लॉग इन कर सकते हैं। यहां संस्कृत और नेपाली जैसी भाषाओं में राष्ट्रीय बुलेटिन भी देख सकते हैं। इंटरनेट उपयोगकर्ता एनएसडी, विभिन्न प्रसारण विवरणों के बारे में सभी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

भारतीय समाज में विज्ञापनों की भाषा :-

मुझे अच्छी तरह से याद है कि वर्ष 1994-95 में एक कैंडबरी कंपनी की चॉकलेट का विज्ञापन आया था, - 'कुछ बात है जिंदगी में।' और वर्ष 2000 तक तो इस कंपनी का शेयर मार्केट सूचकांक बहुत ऊपर जा चुका था। सारी करामात थी दिलो-दिमाग पर कब्जा करने वाले इस विज्ञापन की। इस विज्ञापन में प्रीती जिंटा को एक स्वच्छंद युवती के रूप में क्रिकेट के मैदान में दिखाया जाता है। जब खेल के मैदान में खिलाड़ी छक्का लगाता है तो वह चॉकलेट को लेकर नाचने लगती है। इसी कंपनी का दूसरा विज्ञापन - 'पप्पू पास हो गया।' कैंडबरी चॉकलेट के इस विज्ञापन ने भी बहुत धूम मचाई। इस विज्ञापन को देखकर घर-घर के बच्चे परीक्षा में पास होने पर अपने अभिभावकों और सगे-संबंधियों से मिठाई के बदले में केवल कैंडबरी चॉकलेट का पैकट मांगने लगे थे।

संचार माध्यमों के जरिए प्रसारित होने वाले विज्ञापनों की भाषा व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रहार करती है। संचार माध्यमों के जरिए प्रसारित होने वाले वाली हमारी साहित्यिक कृतियां ही समाज का दर्पण होती हैं। इस दर्पण के माध्यम से हम अपने समाज की सामाजिक चेतना की एक सत्य तस्वीर देख सकते हैं। दूरदर्शन के 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे धारावाहिकों की लोकप्रियता का कारण भी यही था। लोगों ने इसे दिल से आत्मसात किया था। फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आंचल' आंचलिक वातावरण को दर्शाता है। दूरदर्शन के इस धारावाहिक के माध्यम से लोकभाषा, ग्रामीण जीवन, ग्रामीण संस्कृति का करीब से देखा। जहां एक ओर इसमें गरीब की गरीबी दिखी तो वहीं दूसरी ओर जमींदार की उद्वेगिता। हिंदी वाक्यों का अनोखा प्रयोग भी खूब सुनाई दिया। दूसरा उदाहरण, प्रेमचंद का उपन्यास 'निर्मला' पर बना धारावाहिक। इसमें बेमेल शादी, कम उम्र की लड़की की कल्पनाएं और मानसिकता पर कुठाराघात और संघर्ष झेलते जीवन संघर्ष को दिखा कर प्रस्तुतिकरण और भाषा-वाक्यांशों के जरिए दर्शकों की आंखें, आंसूओं से छलका दी थीं। हिंदी भाषा-वाक्यांश ही इस धारावाहिक की सफलता का राज थे। भारतीय समाज के रास्ते होकर विदेशों तक जानी जाने वाली हमारी हिंदी भाषा अपने देश में भले ही कुछ विषम कारणों और अहम् आदि के चलते हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा न बन पाए मगर वैश्वीकरण में वह अब पीछे नहीं है। संचार माध्यम की क्षमता से ही ऐसा होता तय हो पाया है। इंटरनेट के माध्यम से भी हिंदी का वैश्वीकरण हुआ है।

उपसंहार :-

भारतीय समाज पर संचार माध्यमों का प्रभाव और हिंदी भाषा की स्थिति की भूमिका समृद्ध है। हिंदी हमारी राजभाषा तो रहेगी ही। चाहें उसे लोग माने या न माने। जैसा कि विदित है कि मुगल शासनकाल में फारसी दरबार की भाषा थी। लेकिन जनता नहीं मानती थी, तो मानी भी नहीं। अंग्रेजों जमाने में अंग्रेजी राजभाषा थी लेकिन जनता तो अपनी भाषा या खड़ी बोली में बोलती रही। जनता तो जनता है उसका क्या कर लेगा कोई। कहने का मतलब यह है कि भारतीय समाज पर संचार माध्यमों और हिंदी भाषा की स्थिति भले ही समृद्ध हो मगर राजभाषा के रूप में तो अपनी हिंदी है ही, लेकिन अभी राष्ट्रभाषा के रूप में ठीक से और सर्वसम्मति से सामने नहीं आ पाई है।

भारतीय समाज पर संचार माध्यमों का प्रभाव और हिंदी भाषा की स्थिति की भूमिका में यह कहना होगा कि संचार माध्यम अपना बखूबी काम कर रहे हैं लेकिन सामाजिक तौर पर दक्षिण के लोग ये मानते हैं कि आर्यों का से दूसरी तरह का आक्रमण है। वह इसे भाषाई आक्रमण मानते हैं। वह लोग यह कहते हैं कि हमें हिंदी आती है लेकिन हम आपके कहने पर क्यों बोलें। हमारी भाषा तो है नहीं यह। आपने हम पर थोपी है। यूं तो आपको भी अंग्रेजी आती है। आप अंग्रेजी को मानते हो क्या? नहीं मानते हो, न। तो हम भी क्यों मानें। तो हमारे भारतीय समाज पर केवल संचार माध्यमों के बेहतर प्रभाव से हिंदी, हिंदी तो रहेगी, मगर राष्ट्रभाषा बनने के लिए हम सब को पहले तमाम अवरोध दूर करने पड़ेंगे। अंग्रेजी पढ़े-लिखे ज्ञानी लोगों जिनको हिंदी से लगाव है उनको आगे आना होगा और मानसिकरूप से जो लोग इसको सांस्कृतिक आक्रमण के रूप में देखते हैं उनको समझाना होगा। उनके भ्रम को निकालना होगा। तभी हमारी हिंदी भाषा, राष्ट्रभाषा का पूर्ण दर्जा पा सकेगी।

संदर्भ :-

1. चौधरी, ओमकार, टेलीविजन पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, हरियाणा, वर्ष 2002, पृ. 98
2. वजाहत, रंजन, असगर और प्रभात, टेलीविजन लेखन, असगर और प्रभात रंजन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, वर्ष 2001, पृ. 108
3. सिंह, डॉ. अजय कुमार, मीडिया की बदलती भाषा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, उ.प्र., पृ. 171
4. शर्मा, देवेन्द्रनाथ, राष्ट्रभाषा हिंदी समस्याएं और समाधान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, उ.प्र., पृ. 208
5. चड्ढा, सविता, हिंदी पत्रकारिता : दूरदर्शन और टेलीफिल्में, राजसूर्य प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2000, पृ. 35
6. हरिमोहन, प्रौद्योगिकी और जन-माध्यम, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2002, पृ. 128
7. रावत, ज्ञानेंद्र पत्रकारिता के विभिन्न स्वरूप, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2007, पृ. 108



औपनिवेशकालीन भारत नारी

– श्रीमती जी.एस.एल.डी. सौजन्या

बेंगलूरु।

‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः’ के आधार पर नारी की पूजा करते आ रहे भारत में पाश्चात्य संस्कृतियों के प्रभाव से मूल्यहीनता उत्पन्न होने लगी। जिसके कारण समाज में नारी की स्थिति अत्यंत असमंजसपूर्ण होने लगी। नारी को शारीरिक और मानसिक रूप से शोषित किया गया। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में स्त्री शोषण और जागरण को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ‘प्राचीन आर्यों ने नारी को भोग का नहीं, जीवन-पथ की यात्रा का, पतन का नहीं बल्कि विकास का साधन माना। नारी को शक्ति और प्रेरणा का स्रोत समझा। नारी को समर्थ कोमल मधुर और देवी भावनाओं की सजीव प्रतिमा के रूप में चित्रित किया, जो मनुष्य की शोभा है।’¹

भारत में अनेक विदेशी शक्तियों के प्रवेश से हमारी संस्कृति का पतन होने लगा। इसके साथ भाषा, वेश-भूषा, जीवन-शैली में बदलाव आ गई। इस बदलाव ने भारतीय नारी की हैसियत में भी पतन लाया। औपनिवेशिक भारत अंग्रेजों की गुलामी की शिकार बन गई। उनकी पालन में भारतीय नारी को सबसे ज्यादा हानि हुई। जिसे देवी मानते आए वह भोग की साधारण वस्तु बन गई। देश में जब तक भारतीय संस्कृति अपने स्वरूप को बनाए रखती है, तब तक नारी भी बलवती बनी रहेगी। लेकिन अंग्रेज सरकार के पालन में राष्ट्र के पतन के साथ समस्त देश का अंग प्रत्यंग पतित हो रहा था।

नारी पर अत्याचार औपनिवेशकाल से लेकर अब तक चल रहा है। मुख्य रूप से नारी का शोषण धर्म के आधार पर और जाति के आधार पर जारी रहे।

धर्म के आधार पर नारी शोषण :-

समाज में बदलाव लाने के लिए या किसी भी देश की व्यवस्था में सुधार लाने में स्त्री की अहम भूमिका होती है। पर प्रायः उन पर धार्मिक नियमों का बोझ लादकर पुरुष उन्हें दबाकर रखना चाहते हैं। पुरुष प्रधान समाज में पुरुष अपने महत्त्व को कायम रखने के लिए औरत को अपने अधीन कर देते हैं। धर्म चाहे हिन्दू हो, इस्लाम हो, ईसाई हो या सिख, पुरुष हमेशा नारी को अपने चंगुल में फँसाकर रखता है।

उपनिवेश काल में हिन्दू मुस्लिम भेद-भाव ने स्त्री को शोषण का शिकार बनाया। यशपाल जी के उपन्यास ‘झूठा सच’ की सर्वाधिक सशक्त स्त्री पात्र तारा हिन्दू थी, लेकिन वह धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित की जाती है। धार्मिक रीति-रिवाज, पुरुष का अत्याचार और विभाजन के समय के सांप्रदायिक अत्याचारों को सहते हुए जिंदगी के हर कठिन मोड़ को पार करती है। तारा ‘झूठासच’ उपन्यास के नारी विमर्श का केन्द्र-बिन्दु है जो अपने बेमेल विवाह से शुरू होकर देश के विभाजन के सांप्रदायिक दंगों में बलात्कार की शिकार होती है।

अंत में शोषण की खिलाफ संघर्ष कर जीवन व्यतीत करती है। तारा को धार्मिक रीति-रिवाज, पुरुष का अधिकार सहना पड़ा। विभाजन के समय सांप्रदायिक दंगों के कारण उसका जीवन ही बदल गया। उसकी वैवाहिक जीवन का शुरुआत से पहले ही अंत हो गया। ऐसी सांप्रदायिक अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए उसे उसकी जन्मस्थान

को त्यागना पड़ा।

धर्म की सहायता से जनता सभ्यता की हर मंज़िल को पार करते हुए उन्नति के स्थान पर अग्रसर हुए थे, लेकिन किसी ने भी नहीं सोचा होगा कि लोगे उसी धर्म के नाम पर अपरिष्कृत मानव की बर्बरता तथा पशुता की ओर मुड़ेगे और उनसे कुत्कर्ष होने लगेंगे। धर्म को आधार बनाकर आगे बढ़ने वाली सांप्रदायिक, राजनीति बहशीपन के ऐसे माहौल को जन्म देती है, जिसमें स्त्रियों की नीलामी- पूरी तरह निर्वस्त्र करके, ऐसे करने को शर्म की बात नहीं समझी जाती। उनके सामने स्त्री सिर्फ एक बिकाऊ चीज़ मात्र है। इस तरह की घटना हमारे सांस्कृतिक पतन को सूचित करता है।

‘झूठा सच’ उपन्यास में विभाजन के उस समय हुए सांप्रदायिक दंगों की शिकार बनी स्त्रियों का चित्रण मिलता है, जिन्हें नीलाम करने के लिए लाया गया। हज़ारों मर्दों की भीड़ इकट्ठा हो जाती है, कहकहे लगाते हैं और ग्राहकों के माल रूपी स्त्रियों के नग्न शरीर के अंगों को उभार कर दिखाया जाता है। उस दृश्य को देखकर लगती है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पशुता की होड़ लग गई हो। दोनों ओर से वीरता का जो दिखावा चलता है, उसका शिकार बननी पड़ी है। नारियों को जलंधर में नीलामी एक दृश्य प्रस्तुत किया गया है, जहाँ भीड़ के बीचों-बीच एक आदमी चोटी से पकड़-पकड़ कर निर्वस्त्र स्त्रियों को नीलाम कर रहा था। वहाँ के लोग इस दृश्य का आनंद ले रहे थे। लेकिन भीड़ में से एक सज्जन ने उस प्रदर्शन के खिलाफ आवाज़ उठाया है।

वह सज्जन कहता है- ‘कुछ तो शर्म करो। आग पीछा सोचो तुम लोग इनकी इस तरह बेइज्जती करोगे तो कोई भलमानस इन्हें घर में कैसे बसा सकेगा? इससे तो अच्छा है, इनकी गर्दन झटककर परे फेंक दो। तुम मुसलमानों से किस बात में अच्छे हो? उन्होंने क्या बुरा किया जो तुम नहीं कर रहे हो।’² उपनिवेशी शासन के दौर में हुए सांप्रदायिक उन्माद और कुसंस्कृति के विरुद्ध की आवाज़ है। तारा को जिस घर में बंद किया वहाँ कुछ और हिन्दु स्त्रियाँ भी जिन्हें पूरनामक कसाई नीलामी के लिए जबरदस्ती पकड़ लाया था। जिन के पास पहनने के लिए आवश्यक पोशक भी नहीं थे।

इसी प्रकार ‘भीष्म सहानी’ द्वारा लिखी तमस में भी मुसलमानों के अत्याचार से बचने के लिए पंजाबी स्त्रियों की जुंड ने अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ मस्जिद के कुँए में कूदकर अपने जीवन को त्याग दिए। धर्म पर हो रहे उस समय के सांप्रदायिक दंगों में कई स्त्रियाँ मुसलमान पुरुषों से बलात्कार की गई थी।

नारी शोषण के करुण दृश्य को हमारे सामने प्रस्तुत कर ‘भीष्म साहनी’ जी ने उपनिवेशी शोषण तंत्र की देख-रेख में चल रहे अत्याचारों का खुलासा किया है। इस नीयत को बूलकर नारी के प्रति पुरुषों की भोग्या की दृष्टि ने स्त्रियों के अस्तित्व को सत्यानाश कर दिया। अत्याचार की शिकार बनने वाली स्त्री के दयनीय दृश्य भीष्म साहनी जी ने उनके प्रसिद्ध उपन्यास ‘तमस’ में प्रकाशो पात्र के द्वारा दिखाया है। सांप्रदायिक दंगों के समय अलाहरक्वा ब्राह्मण लड़की प्रकाशों को उठा ले जाता है। प्रकाशों को उसके घर में छिपाकर उसे आत्म समर्पण करने के लिए मजबूर कर देता है। उससे शादी कर लेता है। प्रकाशो को मिठाई खिलाते हुए कहता है- ‘हिन्दू हलवाई की दुकान की है, सूरे नियें बच्चिये, खा!’³

नारी मात्र पीड़ित वस्तु नहीं है वह प्रतिशोध भी करती है। विभिन्न प्रकार के जागरण और नई शिक्षा ने नारी को आंदोलित किया है तथा उसमें चेतना लाई है। वह पुरुष प्रधान समाज के शोषणों के खिलाफ विद्रोह करने के लिए साहस जुटाने को प्रेरित की गई। हिंसा और यौन शोषण की दुहरी शिकार होने पर भी स्त्रियाँ प्रतिरोध को भी वाणी प्रदान करती है।

पहले स्त्रियाँ घर के चार दीवारों के अंदर दमघोंटू वातावरण में जीने के लिए अभिशाप थी। चाहे वह पति के घर में हो या पिता के घर में। उसका जीवन दुख दर्द से भरा था। लेकिन नवजागरण कालीन चेतना में उसने स्त्री

को भी समाज में अपनी इच्छा का जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित किया। इससे नारी अपने पर हो रहे अन्यायों के खिलाफ आवाज़ उठाने तक का साहस भी करती है। नारी की यह चेतना का कारण उसके तह में सदियों से चल रहे शोषण के विरुद्ध का सशक्त विद्रोह था।

नवजागरण काल में स्त्रियों में उभरे इस विद्रोह भावना को 'झूठा-सच' की तारा के पात्र द्वारा देख सकते हैं। विवाह के बाद तारा अपने पति सोमराज तारा को कलंकित करते हुए उसे मारने लगता है। तारा सोमराज को धमकी देती है- 'खबरदार हाथ उठाया तो' इस प्रकार नारी अपने शोषण के खिलाफ अपनी गौरव के लिए आगे बढ़ती है। उन दिनों सामाजिक तथा सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने नारी के लिए आवश्यक मंच भी तैयार किया।

जाति के आधार पर नारी शोषण :-

भारत में सदियों से चातुरर्वण्य आधारित सामाजिक व्यवस्था चलते आ रही है। इसमें अंतिम वर्ण के शूद्रों में सारे अंत्यज यानि दलित तथा पीड़ित जन आते हैं। समाज में इनके शोषण उच्च वर्गों से होता रहा। ज्यादातर इस प्रकार के शोषण का शिकार भी नारियाँ बनती है। अंग्रेज शासन के अधीनता में भी नारियों का यह शोषण खूब चल रहा था।

फणीश्वर नाथ 'रेणु' जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आंचल' में पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव का राजनीतिक परिवर्तन, स्वतंत्रता, विभाजन, भ्रष्टाचार, वैचारिक-नैतिक पतन, शोषण तथा स्वार्थ लिप्सा आदि का सजीव चित्रण प्राप्त होता है।⁴ फणीश्वरनाथ 'रेणु' जी ने 'मैला आंचल' उपन्यास में सेवादास महंत के पात्र द्वारा लछमी को दासिन बनाकर उसका शोषण करने का चित्रण से स्त्री पर उच्च वर्ग के महंत का आक्रमण का प्रदर्शन किया गया।

'गिरिराज किशोर' जी के उपन्यास 'जुगलबंदी' में एक भिखारिन भीख माँगते हुए कहती है- 'बच्चे भूखे हैं। ... मेरा आदमी लड़ाई में मर गया।' अंग्रेज पलटन उस भिखारिन को पैसे देने के बहाने रेल में खींचकर उसका बलात्कार करके उसे चलते हुए रेल गाड़ी से पुल में फेंक देते हैं।

इस प्रकार स्त्री हर कहीं शोषित और पीड़ित है। उसकी रक्षा करने वालों से ज्यादा उसकी भक्षण करने वाले हैं। नारी जीवन की सच्चाईयों के सजीव चित्रण के ज़रिए समाजोद्धार की ओर हमारा ध्यान गिरिराज किशोर जी खींचते हैं। धर्म और जाति पर आधारित सांप्रदायिक राजनीति की जड़े आज भी हमारे समाज में मजबूती से जमती जा रही है। 'अमृतराय' जी के 'बीज' में भी भारतीय नारियों की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण हुआ है। पुरुषों के विलास की वस्तुएँ होने के साथ ही धनाभाव के संकट झेलनेवाली नारी का चित्रण महत्वपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।⁵

इस प्रकार उपनिवेश प्रतिरोधी आधुनिक हिंदी उपन्यासों में स्त्री के शोषण और जागरण को भी उपन्यासकारों ने आवश्यक स्थान दिया है।

संदर्भ :-

1. डॉ. संजय गार्ग, स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, पृ. 180
2. यशपाल, झूठा सच, पृ. 197
3. भीष्म साहनी, तमस, पृ. 294
4. यशपाल, झूठा सच, पृ. 343
5. के.पी.सिंह, हिंदी उपन्यास जनवादी परंपरा, पृ. 133



नरककुंड में बास : शोषण के शिकार

- डॉ. लीलाकुमारी. एस.

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस. एन. कॉलेज, कोल्लम।

श्री जगदीशचन्द्र वस्तुतः समाज सापेक्ष चिन्तन के पक्षधर हैं। समाज में व्याप्त जातीय, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक वैषम्य के प्रति इनके मन में प्रबल आक्रोश रहता है। इस बात को जगदीशचन्द्र ने स्वीकार भी किया है- 'उपन्यास लिखने का मुख्य कारण वर्तमान कालिक भारतीय व्यवस्था से चिढ़ हैं।' उनकी अनुभव भूमि ठोठ गाँव है तथा जलंधर और दिल्ली रचना भूमि है। वे कुल दस उपन्यास तथा एक कहानी संग्रह पहली रपट प्रकाशित हैं।

'नरककुंड में बास' (1994) जगदीशचन्द्र द्वारा लिखित एक उपन्यास है। इसका नायक काली गाँव के आंतरिक एवं बाह्य दबाव के कारण वहाँ से पलायन होकर जालंधर शहर पहुँचता है, जहाँ उसके जीवन की संघर्ष कथा प्रारंभ होती है। रेडा खींचने का काम जो कि अत्यन्त दुष्कर कार्य है। पेट की आग बुझाने के लिए काली यह पशुओं का काम भी स्वीकार कर लेती है। कुछ दिनों के बाद यह काम भी जाता रहा। वह बेरोजगार हो जाता है। गरजमन्द आदमी को सर झुकाकर रहना पड़ता है। मजदूर जितना श्रम करता है, उतनी उसे मजदूरी वहीं मिलती है। इस प्रकार शोषण की समस्या 'नरककुंड बास' में उभरकर आयी है।

शोषण के शिकार :-

'नरककुंड में बास' के दलित मजदूरों की दुर्दशा का सबसे बड़ा कारण उनकी अज्ञानता और अशिक्षा है। काली को छोड़कर किसी ने भी स्कूल के दर्शन नहीं किए हैं। काली भी केवल चार जमात ही पढ़ा हुआ है। कारखाने का मालिक उनकी अज्ञानता और अशिक्षा का लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करता है। मजदूरों को न तो उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक मिलता है और न उनके अन्य हितों का रक्षण ही होता है। इन शोषित मजदूरों को अपने अधिकारों का इतना भी ज्ञान नहीं है कि अपनी उचित मांगों को मालिक तक पहुँचा सकें। वैसे ही पूँजीपति वर्ग बहरे होती हैं और अगर होता भी तो क्या फर्क पड़ता है? शोषण करनेवाला जाति नहीं देखता। वह सब जातियों से नफा कमाने की सोचना है। गाँव में बड़े किसानों के खेतों पर खेत-मजदूर चाहे ब्राह्मण हो, जाट हों, ठाकुर हो या चमार हों - वह सब का शोषण करता है। वह अपनी जाति के मजदूरों का भी शोषण करता है। 'नरककुंड बास' में चमड़े के कारखाने का मालिक एक लाला है, किन्तु कारखाने का सारा कारोबार फोरमान संभालता है। लाला फोरमैन की मदद से काली और काली जैसे अन्य बेकस मजदूरों का शोषण करते हैं। वे इन मजदूरों को कर्ज दिए बिना ही कर्जनामों में उनके दस्तखत ले लेते हैं। दस्तखत के साथ ही वे उनके हाथ काटकर अपने हाथ में लेते हैं, ताकि न तो वे तनख्वाह बढ़ाने की मांग कर सकें और न ही कहीं अन्यत्र जा सकें। जगदीशचन्द्र ने दलित- शोषित मजदूर किरपू के माध्यम से शोषकों के इस षडयंत्र का पर्दाफाश किया है- "साले सब बहुत बड़े पाखण्डी हैं। गुरु के तिपाए और रम्बी पर तो हजारों रुपए खर्च कर देंगे। लेकिन उसी बिरादरी के गरीब मजदूर को बीमारी का इलाज कराने के लिए पांच रुपए भी पेशागी नहीं देंगे"।²

यही कारण है कि ये मालिक न तो उनकी सहूलियत, मांगों और अधिकारियों के प्रति चिन्तित है और न ही

उन्हें मेहनत के मुआवजे में चेतन देते हैं। छिब्बू की यह मज़दूरी भारतवर्ष के उन तमाम दलित शोषित पीड़ित मज़दूरों की मज़दूरी है- “अब हमें ही ले लो। सवा रुपया दिहाडी पिछले पांच साल से चल रही है। बढ़ाने के लिए भी कहते हैं तो लाला धमकी देता है कि पाण्डी- पल्लेदार और रेढा वाले मिल जाएँगे। मिल भी जाते हैं। वह भी कम मज़दूरी पर।”³

इसीलिए तो प्रो. कुँवरपाल सिंह अपने- ‘नरककुंड में बासः’ भूमिहीन श्रमिक जीवन की त्रासदी का कलात्मक दस्तावेज़ शीर्षक लेख में लिखते हैं- “पूँजीपति वर्ग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए इस दलित-पीड़ित श्रमिक वर्ग का उपयोग करते हैं। यह श्रमिक वर्ग जो कि तमाम समस्याओं से ग्रस्त है, अपने अधिकारों को नहीं मांग सकता। क्योंकि या तो उसके अधिकार पूँजीपतियों के पास गिरवी हैं या विपरीत परिस्थितियों के शिकार। इससे छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं है। आवश्यकता है मुक्ति और पहचान के लिए छटपटाहट और गहरी इच्छा शक्ति की। यही इच्छा शक्ति चेतना का पुंज बनकर नया मार्ग प्रशस्त करेगी।”⁴

इस प्रकार ‘नरकुंड में बास’ में नगरीय जीवन में व्याप्त शोषण के विविध रूप को प्रस्तुत किया है। जो गांव की अपेक्षा अधिक जटिल है। उपन्यासकार ने इसे कलात्मक ढंग से परत पर परत अनावृत्त किया है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. जगदीश चन्द्र, नरककुंड में बास, पृ. 157.
2. वही, पृ. 197.
3. वही, पृ. 291
4. वही, पृ. 312.



औपनिवेशिक भारत के राजनैतिक स्थिति

– श्रीमती जी.एस.एल.डी. सौजन्या

बेंगलूरु।

‘लेखक अपने युग की देन होता है।’ इस कथन के अनुसार लेखक की कृतियों पर उसके युग की वस्तुस्थितियों का असर पड़ना समुचित ही है, क्योंकि जिस समाज में वह रहता है उससे अपनी रचना को वह अलग रख नहीं पाता। भारत में उपनिवेशकालीन युग को राष्ट्रीय संघर्ष युग माना गया। उस समय देश की जनता का प्रमुख प्रश्न था भारत को साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्त करना। भारत देश की संपूर्ण चेतना ब्रिटिश साम्राज्यवादी राज्य को मूल सहित उखाड़ फेंकने के प्रयत्न में संलग्न थी।

बीसवीं शती के आरंभ थी। भारत देश में हताशपूर्ण वातावरण फैला हुआ था। सन् 1857 का स्वाधीनता-संग्राम के किल हो जाने के कारण देश के चारों ओर दमन अतृप्ति और अभाव का अंधकार रहा था। सन् 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना होने पर भारतीय सुप्त चेतना दोबारा जागृत हुई। देश में फिर से जागरूकता फैली। आरंभ में कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की शासन व्यवस्था में सुधार करवाना चाहा। जिनके हाथों में कांग्रेस का संचालन था वे अंग्रेजों के विचारों और आदर्शों से प्रभावित हुए थे। अंग्रेज साम्राज्य के नागरिक होने में वे गर्व का अनुभव कर रहे थे। अंग्रेज सरकार की ईमानदारी और न्यायप्रियता पर उन्हें संपूर्ण विश्वास था। ‘बारहवें अधिवेशन (1896) के अध्यक्ष-पद से मुहम्मद रहोमतुल्ला सयानी ने तो और भी असंदिग्ध रूप में कहा कि अंग्रेज से बढ़कर ज्यादा ईमानदार और मजबूत कौम इस सूरज के तले कहीं नहीं है।’¹

अंग्रेज सरकार उन्हें समय-समय पर सुविधाएँ प्रदान कर अपने पक्ष में रखने की प्रयत्न करती रही। उस समय की महारानी विक्टोरिया ने ऐलान किया ‘हम अपनी भारतीय प्रजा के प्रति भी अपने को उसी प्रकार कर्तव्यबद्ध समझते हैं, जिस प्रकार अपने अन्य प्रजाजनों के प्रति, क्योंकि प्रजा की सुख समृद्धि में ही हमारी शक्ति है।’² यह घोषणा भारतीयों को प्रभावित किया था। दादाभाई नौरोजी और गोपालकृष्ण गोखले जैसे प्रमुख नेताओं ने ब्रिटिश शासन की प्रशंसा की। लेकिन यह प्रशंसा स्थायी नहीं बन सकी। जब लार्ड क्लाइव और हेस्टिंग्स गवर्नर बने तब से भारतीयों में अंग्रेज शासन के विरुद्ध घृणा के साथ विद्रोह की भावना बढ़ने लगी। ब्रिटिशों की शिक्षा पद्धति, आर्थिक शोषण, महंगाई ने सामाजिक तथा राजनीतिक असंतोष को बढ़ा दिया। ‘आर्थिक असमानता ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में शिक्षित वर्ग के अंदर भयानक असंतोष की वृद्धि की। फलस्वरूप राजनीतिक असंतोष बढ़ा और राष्ट्रीय विकार की धारा बढ़ने लगी, जिसका नेतृत्व लाजपतराय, तिलक, पाल तथा घोष जैसे नेताओं ने किया।’³ अंग्रेजों के कठोर शासन-व्यवस्था, पुलिस के अत्याचार, भीषण अकाल सरकार करों से त्रस्त जनता अंग्रेज शासन के प्रति विद्रोह करने लगी। बंबई, कलकत्ता, मद्रास जैसे आधुनिक शिक्षा के केन्द्र में सुरेंद्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में ऐसी संस्थाओं का स्थापना हुआ जिनसे भारतीय जनता के मन में देश भक्ति की भावना जगने लगी।

‘उन्नीसवीं शताब्दी संसार के इतिहास को नई दिशा में मोड़ने वाली शताब्दी है। इसी परिस्थिति में उस नवीन विचारधारा ने लोगों को भी प्रभावित करना शुरू किया। राष्ट्रीयता भारत वर्ष के लिए नवीन विश्वास थी।’⁴ इण्डियन कांग्रेस की स्थापना उन्नीसवीं शताब्दी में हुई। इसके साथ भारतीय राजनैतिक चेतना एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ने लगी। भारतीयों में स्वतंत्रता की भावना का जड़ भारतीय तथा ब्रिटिश स्वार्थों के फल है। स्वार्थों का यह संघर्ष तीव्र होता गया और भारतीय अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगे।

भारतीयों में स्वतंत्र प्राप्ति की इच्छा तीव्र गति से बढ़ने लगी। जिसके लिए विषम परिस्थितियाँ पोषक बन गए। सन् 1904 में रूस और जापान के बीच युद्ध हुआ। जापान एक छोटा-सा देश होने के कारण यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान से अनजान था। ऐसी स्थिति में रूस पर जापान की विजय एक अप्रत्याशित बात रही। इस विजय का उस समय विश्व के अन्य पराधीन देशों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। लगभग उसी समय बंग-भंग आंदोलन शुरू हुआ, जिसका पूर्व ज्ञान सन् 1904-05 में ही मिल चुका था।

सन् 1905 में लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो प्रांतों में विभाजित कर दिया। उन्हीं दिनों बंग-भंग के विरोध में जन-आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इस आंदोलन के अंतर्गत स्वदेशी प्रचार और विदेशी बहिष्कार पर जोर दिया गया। इस आंदोलन में विद्यार्थियों ने भी अपनी ओर से पूर्ण सहयोग दिया। इस आंदोलन के द्वारा बंगाल में राष्ट्रीयता भाव का प्रचार हुआ और यह भावना स्थायी रूप में लोगों के मन में अपना स्थान पा लिया।

सन् 1905 के वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस ने बंग-भंग का विरोध किया। इस विषय में सदेह नहीं कि, ‘कांग्रेस के नेता बंगाल के स्वदेशी आंदोलन के मुकाबले में पिछड़ गये। इस समय बंगाल भी राष्ट्रीय आंदोलन की पहली कतार में आ गया।’⁵ बंग-भंग आंदोलन से बंगालियों में तीव्र अप्रसन्नता की भावना फैली और यह आंदोलन बंगाल तक ही सीमित न रही। उस आंदोलन की ध्वनि भारत के कोने-कोने में फैल गई। भारत के प्रबंध में सुधार करने के लिए कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना करती रही। लेकिन अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस नेताओं को सुविधाएँ देकर असली बात को टाल देती थी। फलस्वरूप कांग्रेस की यह प्रार्थना नीति निष्फल रही।

बंग-भंग आंदोलन का दमन करने के लिए अंग्रेज सरकार ने जो अत्याचारपूर्ण नीति अपनायी उससे प्रकट हो गया कि सरकार से किसी प्रकार की आशा करना बेकार है। परिणाम स्वरूप देश में उग्र राष्ट्रीय विचारों का शुरुआत हुआ। इस विचारधारा का नेतृत्व बिपिन चंद्रपाल, तिलक और लाला लाजपतराय ने ले ली। उग्रदल का विचार था कि अंग्रेज सरकार से अपनी माँगे स्वीकार कराने के लिए एक गंभीर राजनीतिक आंदोलन करना अनिवार्य है। इस दल की नीति के प्रमुख अंग थे ‘बहिष्कार’ और ‘स्वदेशी’।

‘नरम दिल के नेता अभी तक पुरानी नीति का ही अनुसरण कर रहे थे। सन् 1907 के सूरज अधिवेशन में सभापति के निर्वाचन को लेकर दोनों दलों में मतभेद हो गया। परिणाम स्वरूप उक्त दल उदार दल से अलग हो गया। आगे आने वाले वर्षों में कांग्रेस पर उदार दल का प्रभुत्व रहा, सरकार उग्र तत्वों के दमन के लिए कटिबद्ध थी, इसलिए उग्र दल के नेता तिलक पर उसने प्रहार किया। 1908 में तिलक को गिरफ्तार करके छः वर्ष के लिए मॉडले भेज दिया गया।’⁶ बंग-भंग आंदोलन का दमन करने के लिए अंग्रेज सरकार ने जिस कठोर नीति को अपनाया उसके परिणाम स्वरूप भारत देश में क्रांतिकारी नवयुवकों का दल संगठित हुआ। इस दल का विश्वास था कि अंग्रेज सरकार की कूटनीति का अंत सशस्त्र क्रांती से हो सकता है।

बंगाल में क्रांतिकारी नवयुवकों की अनेक गुप्त समितियाँ संयोजित हो गईं। क्रांतिकारी हलचलों का मुख्य केन्द्र

बंगाल रहा। इस प्रकार लोगों में विद्रोह की भावना सशक्त होकर उन्हें देश के प्रति जागरूक बना दिया। यह आंदोलन यह क्रांति साहित्यकारों के जीवन में शक्ति के उद्गम स्रोत के रूप में आया। उनमें सामाजिक उद्देश्यपूर्णता की एक नयी लहर व्याप्त हो गई। साहित्यकारों ने अपने साहित्य में इन्हीं विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान कर भारतवासियों को राष्ट्रीय जागरण की तरफ उन्मुख किया। उनकी कृतियों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने की प्रयास की गई। राष्ट्रीय जागृति का नया युग सन् 1915 से आरंभ हुआ। प्रेमचंद जी के उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु यही युग है। यह युग विचारों के अपेक्षा कार्य का युग रहा। राष्ट्रीय जागृति के साथ अंग्रेजों का दमनचक्र भी चलता रहा।

भारतीय जनता को प्रथम विश्वयुद्ध ने विशेषतः प्रभावित किया। इस महायुद्ध का प्रमुख कारण जर्मनी के सभी राष्ट्रों पर एकाधिकार की भावना थी। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद और बीसवीं शताब्दी से पूर्व जर्मनी निरंतर शक्तिशाली होता गया। 'युद्ध का प्रारंभ सराजीवा नगर में आर्कडडूक फासिस फर्डिनेन्ड की हत्या से हुआ। ऑस्ट्रिया की सरकार ने इस हत्या के लिए सरोविया को उत्तरदायी ठहराया और 28 जुलाई को 11 बजे युद्ध की घोषणा कर दी।'⁷

प्रथम महायुद्ध में जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हंगरी, टर्की और बलोरिया एक तरफ थे, जिन्हें केन्द्रीय शक्ति का नाम दिया गया। दूसरी तरफ इंग्लैण्ड, फ्रांस, सरोविया, बेल्जियम, रूस, जापान आदि थे जिन्हें मित्र राष्ट्र कहा गया। सन् 1915 में इटली और सन् 1917 में अमेरिका मित्र राष्ट्र से मिल गए। भारत के नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीया आदि के सलाह से भारत भी अंग्रेजों की सहायता करने विश्वयुद्ध में भाग लिए। सन् 1918 में जर्मनी ने हार मानकर मित्र राष्ट्रों की शर्तों को स्वीकार लिया।

प्रथम विश्वयुद्ध की अवधि चार वर्ष तथा तीन महिनों से कुछ अधिक ही थी। 'युद्ध का प्रारंभ 28 जुलाई सन् 1914 को और समाप्ति 11 नवंबर सन् 1918 को हुई।'⁸ सन् 1916 में महाराष्ट्र में तिलक ने होमरूल आंदोलन और एनिबेसेंट ने मद्रास में अखिल भारतीय होमरूल लीग की स्थापना की। कांग्रेस की लीग योजना के अनुसार भारत में स्वशासन प्रणाली लागू करने की कोशिश करते रहे। इसी बीच सन् 1917 ई. में अंग्रेज सरकार के आदेशानुसार चम्पारन में नील खेती करते थे। पर अगले वर्ष खेड़ा में वर्षा के अभाव में खेती अच्छी न होने के कारण 'कर निराकरण' आंदोलन किया।

सन् 1919 में अंग्रेज सरकार ने रॉलेट एक्ट का विरोध करते हुए गांधीजी ने असहयोग आंदोलन आरंभ किया। लेकिन वे असफल रहे। बाद में पंजाब में हिंसात्मक काण्ड हुआ। अमृतसर में मार्शल-ला लागू था। '13 अप्रैल को अमृतसर के जालियाँवाला बाग में एकत्रित जनता पर बिना किसी प्रकार की सूचना दिये गोली चलवाकर जनरल डायर ने शासक वर्ग की निरंकुशता का परिचय दिया।'⁹

पंजाब में इस तरह के हिंसात्मक घटनाओं के कारण गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। सन् 1920 में अंग्रेज सरकार के साइमन कमीशन को काले झंडे दिखाया गया। सन् 1930 में नमक कानून भंग करके सविनय अवज्ञा-आंदोलन शुरू किया जिसमें भारतीय स्त्रियों ने भी भाग लिया। इस आंदोलन काल में विद्यार्थियों ने स्कूल, कॉलेज छोड़कर, लोग सरकारी नौकरियाँ त्यागकर भारत देश ने सम्मिलित शक्ति का परिचय दिया। इसके बाद गांधीजी के गिरफ्तार से आंदोलन को स्थगित कर दिया गया।

न्यायालय और पुलिस आदि क्षेत्रों में भ्रष्टाचार परिव्याप्त था। स्वतंत्रता आंदोलन में मुसलमान खिलाफत के प्रश्न को लेकर आए थे। सरकार ने हिन्दु मुसलमानों में भेद-भाव की नीति अपनाती थी। सन् 1922 में खिलाफत के अंत से इन दोनों के एकता भंग हो गई। देश में भयानक हिन्दु मुस्लिम दंगे होने लगे। कांग्रेस के हिन्दु-मुस्लिम एकता की

प्रयत्न किल रहे। आर्य-समाज के शुद्धि आंदोलन से संप्रदायिक कट्टरता और भी फैल गई। सरकार ने हिन्दु मुस्लिम वैमनस्य को अधिक गहरा बना दिया।

गांधीजी द्वितीय गोलमेज परिषद में कांग्रेस प्रतिनिधि बनकर गए थे। पर वे निराश ही भारत लौट आए। उस समय अंग्रेज सरकार बंगाल में आंतकवादियों के दमन के नाम पर राजनैतिक कार्यकर्ताओं को कठिन शिक्षा देती थी। किसानों की आर्थिक स्थिति दुर्बल थी। देशव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ हो गया। उन दिनों देशी रियासतों के राजा नाम मात्र के थे। वास्तव में वे ब्रिटिश सरकार के हाथ की कठपुतली थे। हर एक बड़ी रियासत का रेजिडेण्ट वहाँ के शासन पर निमंत्रण रखता था।

इस प्रकार तत्कालीन साहित्यों से उस समय की राजनैतिक परिस्थितियाँ स्पष्ट हैं।

संदर्भ :-

1. पट्टाभि सीतारामैया, कांग्रेस का इतिहास, भाग-1, पृ. 58
2. आर.डी.मजुमदार, महारानी घोषणा पत्र, एन.एडवान्स हिस्टरी ऑफ इंडिया, पृ. 888
3. ए.आर.देसाई, दि सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज़्म, पृ. 182
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ. 256
5. मन्मथनाथ गुप्त, राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, पृ. 252
6. डॉ. रक्षापुरी, प्रेमचंद साहित्य में व्यक्ति और समाज, पृ. 59
7. लाइन, लिडिलहर्ट, दि वार इस आउट, पृ. 13
8. ई.एच.कार., दि इंटरनेशनल रिलेशन्स बिटवीन वार्स, पृ. 3
9. पट्टाभि सीतारामैया, कांग्रेस का इतिहास, पृ. 133



शिक्षा और समाज

—डॉ० दीपशिरवा शर्मा

प्राचार्य, गणपति इंस्टीच्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी मोहन नगर, गाजियाबाद।

शिक्षा और समाज—

सामान्य भाषा में हम व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं जबकि मानव शास्त्र मनुष्य के किसी भी समूह को समाज का दर्जा देता है। अलग-अलग विषयों में समाज को अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है।

लापियर के अनुसार 'समाज से तात्पर्य व्यक्तियों के समूह से नहीं अपितु समूह के व्यक्तियों के बीच होने वाली अतर्क क्रियाओं की जटिल व्यवस्था से है।

जहाँ तक शिक्षा की बात करते हैं तो शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास कर मानव के व्यवहार को परिवर्तित किया जा सकता है और इससे मनुष्य को एक सभ्य एवं योग्य नागरिक बनाया जा सकता है और शिक्षा की यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है। अतः शिक्षा का अर्थ है सीखने सिखाने की क्रिया। स्वामी विवेकानंद के अनुसार मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।

समाज शास्त्रियों के अनुसार शिक्षा समाज के उद्देश्य एवं लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन है। जैसा समाज होता है और जैसी उसकी आकांक्षाएं होती हैं वैसी ही उसकी शिक्षा होती है और शिक्षा का सम्बंध समाज के भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों के साथ होता है। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और शिक्षा एवं समाज पूर्ण रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

कोई भी समाज अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति शिक्षा द्वारा ही करता है। शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है। यह समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करती हुई आगे बढ़ती है और बदलते हुए समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में मनुष्य की सहायता करती है। सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप शिक्षा के उद्देश्य स्वरूप एवं पाठ्यचर्या आदि में भी परिवर्तन आता है जबकि शिक्षा के माध्यम से समाज में परिवर्तन आता है और यह चक्र निरंतर चलता रहता है।

शिक्षा और समाज के मध्य सम्बंध :-

समाज को समाजशास्त्री एक अमूर्त सम्प्रत्यय मानते हैं। प्रायः सभी देशों में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व माना जाता है और इस प्रकार किसी भी राष्ट्र की संपूर्ण जनता ही उस राष्ट्र का समाज होती है। यदि हम शिक्षा के संदर्भ में समाज की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य राष्ट्र विशेष की संपूर्ण जनता से ही होता है और जब हम किसी समाज के विषय में अध्ययन करते हैं तो उसके अंतर्गत उसके घटक व्यष्टि और समूह के सामाजिक सम्बंधों का भी अध्ययन करते हैं।

शिक्षा का समाज पर प्रभाव :-

शिक्षा और भौगोलिक स्थिति -

प्राचीन काल में मनुष्य को भौगोलिक परिस्थितियों के नियंत्रण में समझा जाता था और पहाड़ नदियां आदि हमारे मार्ग में बाधा उत्पन्न करते थे लेकिन शिक्षा प्राप्त करके आज मनुष्य ने इन बाधाओं पर नियंत्रण पा लिया है। शिक्षा प्राप्त कर मनुष्य ने समय वह दूरी पर विजय प्राप्त कर ली है। आज मनुष्य कम समय में अधिक दूरी तय कर सकता है और आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच सकता है। क्योंकि शिक्षा प्राप्त करके ही वैज्ञानिक तैयार होते हैं और वैज्ञानिक ही नये समाज का निर्माण करते हैं जिससे जीवन आसान हो जाता है।

शिक्षा और समाज की संस्कृति :-

शिक्षा समाज की संस्कृति का विकास करती है। समाज संस्कृति का संक्रमण शिक्षा से ही करता है। शिक्षा के बिना संस्कृति के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

शिक्षा और समाज की धार्मिक स्थिति :-

पहले शिक्षा के अभाव में मनुष्य अज्ञानता व श्रद्धा धार्मिक अंधविश्वासों को ही मानता था लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा प्राप्त कर मनुष्य धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने लगा है।

शिक्षा और समाज की राजनैतिक स्थिति :-

शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य अपने ज्ञान में वृद्धि कर एक जागरूक नागरिक बन सकता है और नैतिक और अनैतिक व सत्य और असत्य को समझ सकता है और अधिकार एवं कर्तव्य के विषय में ज्ञान अर्जित करता है।

शिक्षा का समाज की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव :-

शिक्षा समाज की आर्थिक स्थिति को भी सुधारने में सहायक है और यह देखा जा रहा है कि जो देश शिक्षा के क्षेत्र में जितना आगे हैं उतने ही आर्थिक रूप से भी सुदृढ़ हैं।

शिक्षा का समाज पर प्रभाव :-

शिक्षा द्वारा मनुष्य अपनी भाषा रीति रिवाज, रहन-सहन, खान-पान उठने बैठने के तरीके सीखता है। अपने समाज से परिचित होता है और समाज की समस्याओं का निदान करने का प्रयास करता है। यह सब शिक्षा द्वारा ही संभव है क्योंकि शिक्षा ही मनुष्य का मानसिक विकास करती है और मानसिक रूप से विकसित व्यक्ति ही समाज में परिवर्तन ला सकता है।

भारत देश की भाँति संसार के अन्य देशों में भी शिक्षा के द्वारा ही सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। रूस जर्मनी, फ्रांस आदि देशों ने शिक्षा द्वारा ही समाज का स्वरूप बदला है। अतः यह कहा जा सकता है कि समाज और शिक्षा अन्योन्याश्रित होते हैं।

संदर्भ :-

1. शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग - लाल एवं पलोड
2. मूल्य शिक्षा क्या क्यों कैसे? - प्रोव सत्यपाल रहेला
3. (क) शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग - रमन बिहारी लाल एवं सुनीता पलोड
(ख) उदीययान भारतीय समाज में शिक्षक।
4. विकिपीडिया।



लोकगीतों में सामाजिक भाव : परम्परा और मान्यताएँ

-डॉ० राजकुमारी शर्मा

सहायक प्रोफेसर, इग्नू, नई दिल्ली।

लोकगीत जन-साधारण का जीवित रूप है। लोकगीत ही किसी जाति, वर्ग या समुदाय के अस्तित्व का परिचायक है जिसके माध्यम से उसके रीति-रिवाज, त्योहार, मान्यताएँ एवं परंपराएँ निहित होती हैं। लोकगीत की विस्तृत महत्ता के अंतर्गत लोक साहित्य, लोक संस्मृति एवं लोकवार्ता की अहम भूमिका मानी गई है। विद्वानों ने मानव जीवन में लोकगीतों की महत्ता को लोक साहित्य, लोक नाट्य एवं लोकगाथाओं के द्वारा सिद्ध किया है। वस्तुतः लोकगीत अथवा लोक साहित्य के अनेक संदर्भों और पक्षों से युक्त कर लोकगीत की सार्थकता को सृजित किया है-“जिस प्रकार किसी वृक्ष का बीज धरती की गहराइयों में एक न जाने कहाँ-कहाँ से पोषण प्राप्त कर वर्धमान होता है और कलांतर में एक विशालकाय सघन शाखाओं से युद्ध वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। उसी प्रकार लोकवार्ता का कोई स्रोत किसी एक स्थान पर फूटकर बहुविध सांस्कृतिक धाराओं में समन्वित होकर विशाल जनजातियों की लोक सांस्कृतिक धरोहर बन जाता है।”

लोकगीतों की अपनी एक विशेषता यह है कि यह साहित्य लोक की संपूर्ण सामाजिक परंपराओं, मान्यताओं और रीति-रिवाजों के आधार पर संबंधों का रूप देखने को मिलता है। इसलिए साहित्य में आरंभ से ही लोक और सामाजिक जीवन के विशद रूप साहित्य में देखने को मिलते हैं।

लोक साहित्य की सशक्त विधा के रूप में समाज का अपना महत्त्व है। समाज में संस्कृति के सभी बिंदुओं को बड़ा खूबसूरती से व्यक्त किया जाता है और इस प्रकार यह कहना उचित है कि लोकगीतों में व्यक्त सामाजिक महत्त्व का अत्यंत व्यापक चित्रण किया जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई माना जाता है। मनुष्यों से समाज का निर्माण होता है। मनुष्य स्वभाववश समाज में रहना चाहता है। इस कारण से समाज को स्वाभाविक और कृत्रिम दोनों रूपों में माना जा सकता है। समाज व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस कारण वह उसके साधन एवं माध्यम है। समाज से ही उसे संस्कृति, रीति-रिवाजों, रहन-सहन और संबंधों के ज्ञान की शिक्षा मिलती है।

मनुष्य का जन्म परिवार में होता है। वहीं से वह सामाजिकता का पाठ पढ़ता और सीखता है। मनुष्य की इच्छाएँ और आवश्यकताएँ परिवार से ही पूरी होती हैं। परिवार में रहकर ही जीवन बिताने की भावना मनुष्य को समाज एवं साहित्य से मिलती है।

लोकगीतों में चित्रित लोक संस्कृति और सामाजिक महत्त्व को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति में पारिवारिक जीवन के जो अद्भुत और मर्मस्पर्शीय चित्र यहाँ उपलब्ध होते हैं वह और कहीं नहीं। लोक साहित्य में जहाँ सीता जैसी आदर्श नारी का उल्लेख मिलता है वही झगड़ालू या दुष्ट वाणी वाली नारी का भी चित्र देखने को मिलता है। जो घर-परिवार को बर्बाद करने के लिए अनेक कार्यों को भी करते हुए प्रतीत होती है। भारतीय

संस्कृति एवं समाज में जहाँ माँ-बेटी के मधुर संबंध का वर्णन होता है वही सास-बहू और भाभी-ननद के विद्रोह और द्वंद्व के स्वर भी यहाँ गूँजते हैं। भाई-भाई के संबंधों में जहाँ घनिष्ठता और कूट संबंध भी इस उत्सभूमि पर दिखाई देते हैं। वहीं बहन-भाई के प्रेम से भरे संबंधों का भी चित्रण देखने को मिलता है।

सामाजिक जीवन के साथ-साथ धार्मिक जीवन का रूप भी लोक साहित्य एवं गीतों में देखने को मिलता है। भारत बहुभाषी देश है। यहाँ धर्म और अध्यात्म यहाँ विविध रूपों में देखने को मिलता है। व्रत में जहाँ एक ओर श्रद्धा और आस्था के स्वर गूँजते दिखाई देते हैं वही मूर्तियों में विश्वास और आस्था का भाव भी दिखाई देता है। धर्म, समाज और संस्मृति अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे के पूरक है।

लोकगीतों में जन सामान्य की सामाजिक भावना के साथ-साथ नैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक स्थिति-परिस्थिति का चित्रण भी बड़े ही सुंदर ढंग से व्यक्त किया जाता है।

लोकगीतों में व्यक्त लोकजीवन एवं सामाजिक तथ्यों के विषय में डॉ० एस०एच० माथुर का कहना है कि “समाज मनोविज्ञान ऐसे व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है जब वह दूसरे व्यक्तियों के संपर्क में आता है या किन्हीं सामाजिक समूह या समूहों के साथ प्रतिक्रिया करता है या किन्हीं सामाजिक स्थिति में अपने को पाता है जिसमें उसे चेतन या अचेतन रूप से भाग लेना पड़ता है।”² अर्थात् मनुष्य समाज में रहकर अपने हर्ष-विषाद को बाँटकर ही आंतरिक संतोष की अनुभूति करता है। समाज की स्थापना में यही सिद्धांत निहित है। समाज एक ऐसी सावयव सत्ता है, जिसमें पारस्परिक कल्याण-संवर्द्धन के साथ-साथ संबंध, संस्कृति और भाषा आदि की झलक सामाजिक प्राणियों के प्रेम-बंधन को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

समाज क्षेत्र का अविभाज्य अंग है। किसी भी राष्ट्र का स्वरूप उसकी प्रगति आदि उसके समाज पर ही टिकी होती है। लोकगीतों को उत्थान देने के लिए सामाजिक जीवन की उन्नति प्रथम सोपान माना जाता है। लोकगीतों की सर्वांगीण उन्नति के लिए नारी और पुरुष का परस्पर सहयोग होना अत्यन्तावश्यक है। इनमें से किसी एक वर्ग की शिथिलता के कारण समाज का रंग-रूप अथवा परिवेश ही बदल जाता है। लोकगीत समाज में अनेक क्रियाकलापों में दिखाई देते हैं। इसीलिए डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोकगीतों में व्यक्त सामाजिक महत्त्व को बताते हुए कहा है कि “भाई से विछिन्न बहन की करुण कथा, सौत के, ननद के और सास के अकारण विक्षिप्त वाक्य बाणों से बिद्ध बहू की मर्म कहानी, साहूकार, जमींदार और महाजन के सताये गरीबों की करुण पुकार इन गीतों द्वारा व्यक्त की गई है।”³

समाज में रहते हुए व्यक्ति विविध संबंधों के आधार पर अपना जीवन-यापन करता है। परिवार का महत्त्व जानता और समझता है। भारतीय समाज में परिवार में संयुक्त परिवार को आदर्श के रूप में देखा एवं माना जाता है। जहाँ संबंधों में आपसी प्रेम की भावना का रूप साकार हो उठता है। पति-पत्नी के आदर्श प्रेम के चित्र हमें इन लोकगीतों में देखने को मिलते हैं। लोकगीतों में एक ओर आदर्श स्त्री का रूप देखा जा सकता है और कहीं नहीं। पति नौकरी या जीविकापार्जन के लिए पत्नी से दूर विदेश में चला जाता है, और वहाँ जाकर वह सब भूल जाता है। पत्नी पति के वियोग में दुःखों को झेलती हुई अपने स्त्रीत्व की रक्षा भी करती है। पति जब विदेश की यात्रा से लौटकर आता है तो वह पत्नी के चरित्र पर अनचाहे प्रश्नों की भरमार लगाते हुए अनेक प्रकार के लाँछन लगता है। पत्नी पति के इन कटू व्यवहार को सहकर भी पत्नी धर्म का पालन करती है। इसी संदर्भ में एक लोकगीत इस भाव को पूर्ण रूप से व्यक्त करता है-

“छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहबर।

अरे रामा, तेहि तर ठाढ़ि हरनियाँ त मन अति अनमनि।

धरतै चरन हरिवाँ त हरिनि से पूँछई।

हरिनी। की तोर चरहा झुरान की पानी बिनु भुरझिऊ।
 नाही मोर चरहा झुरान न पानी बिनु भुरझेऊँ।
 हरिना? आज राजा जी के छठ्ठी, तुमहिं मारि डरि हैं।
 मचियै बैठी कौसल्या रानी, हरिनि अरज करइ।
 रानी, मांसवा त सिमहिं करहिया,
 खलरिया हमें देतेऊ।
 पेड़वा से टँगतिऊ खलरिया, तो हेरि हेरि देखतिऊं।
 रानी देखि-देखि मन समुझउतिउं,
 जनुक हिरना जियतई।
 जाहुं हरिनि घर अपने खलरिया नहीं देवइ।
 हरिनि, खलरी के खँजड़ी मढउबइ,
 त राम मोर खेलिहइँ।
 जब जब बाजै खँजड़िया सबद सुनि अनकइ।
 हरिनि ठाढ़ि ढँकुलिया के नीचे हिरन के पिसूरइ।''²⁷

यहाँ पर स्त्री के साथ-साथ हरिनी की भी इसी दशा को व्यक्त किया गया है।

स्त्री अपने सतीत्व का रक्षण विविध स्थिति-परिस्थितियों में करती दिखाई पड़ती है। पुत्र जन्म के बाद स्त्री अपने मायके जाने के लिए नाव वाले से नाव किराये पर मांगने पर नाविक उसके रूप-सौंदर्य पर मोहित होकर उसे सोने का हार, अँगूठी आदि बहुमूल्य उपहार देने का लालच देकर उसके साथ व्यभिचार का प्रस्ताव रखता है। वह सती स्त्री उसके इस प्रस्ताव को अनदेखा कर, नदी को तैर कर, पार चली जाती है। लौटते समय वह अपने परिजनों को इस दुष्ट नाविक की खाल खींचकर उसमें भूसा भरवा देने का आदेश देती है और कहती है-

“अमिया लगाऊं तोरी, गुदरी बजर पर तिलरी

- - - - -

केवटा खालवा कढ़ाय भूजा भरतेऊ जबन मुख भारवेऊ।''⁴

माता-पिता, बेटा और बेटी को एक ही कोख से जन्म देकर भी समान स्थान नहीं दे पाते। इस लोकगीत में बेटी की करुण व्यथा को व्यक्त किया गया है-

“कौना खों दई बाबुल मढ़ा अटाई
 कौना खों दई परदेश मोरे लाल
 वीरन खों दई बाबुल मढ़ा अटाई
 बेटी खों दई परदेस मोरे लाल
 भैया बहिनिया एकइ कोरण जन्में
 काहें खों दई परदेस मोरे लाल
 सुम्ब तो बेटी खों सपने नइयां
 दुख सजीवर होये मोरे लाल।''

जीवन सदा से ही कष्टमय रहा है। तुलसीदास ने भी कहा है कि-‘कत विधि रची नारी जय माही’ बेटी को माता-पिता से अधिक लगाव होने के कारण माता-पिता का स्नेह इन लोकगीतों में प्रतीत होता है। माता-पिता बेटी के वियोग में दुःख का अनुभव करते हैं-

“माया के रोये से नदिया बहतु है
बावल के रोए से ताल मोरे लाल
भैया के रोए से जियरा फुटत है
भौजी के जियरा कठोर मोरे लाल।”

जिस प्रकार बेटी के घर से जाने के बाद माता-पिता वियोग में रहकर अपनी वेदना को अभिव्यक्त कर रहे हैं उसी प्रकार बहन के घर में उत्सव है, लेकिन भाई के न आने पर बहन को सब-कुछ सूना-सूना लग रहा है। यहाँ बहन अपनी मन की व्यथा को इस लोकगीत में व्यक्त कर रही है-

“अंगना ता सूनी चउक बिन, चउकी कलस बिन
सूनी परी है दहलान, ता एकू बिरन बिन मोरे बिरन बिन हो।
चारिउ खूटि कै गज ओषरि, चारिउ खूटि दिया बरई
मोरे लेख घर अंधियार ता एक बिरन बिन।”

इस प्रकार यहाँ पर बहन और भाई का पवित्र संबंध लोकगीत का आदर्श बना हुआ है। परिवार में कुछ संबंध ऐसे होते हैं जिनमें न चाहकर भी कलह होता रहता है-सास-बहू, ननद-भावज, देवरानी-जेठानी, सौत और सपत्नी संबंध आदि। स्त्रियों के आपस में मनमुटाव, जिनका कारण मेरा-तेरा और स्वार्थ से पूर्ण होता है। यह परिवार के लिए सर्वप्रथम प्रहार का कार्य करता है जिसके कारण संबंधों में दरार आ जाती है। परिवार तनाव और विघटन की ओर अग्रसर होने लगता है। संयुद्ध परिवार में इन कारणों से संबंधों में अनेक प्रकार के विच्छेद उत्पन्न होने लगते हैं।

भाभी के प्रति ननद का व्यवहार अच्छा नहीं है। वह अपनी भाभी को बहुत दुःखी करती हैं तो भाभी गीत के माध्यम से अपनी पीड़ा को व्यक्त करती है और कहती है-

“दूपहरिया से झगरा डालेओ मोरी ननदी
भोरोरे हम बढनी से अंगना बहारेन
अँगना मा कूड़ा फइलाएओ मोरी ननदी।”

यहाँ भाभी घर का सारा कार्य समाप्त कर आराम करने के लिए सोचती है तभी ननद बार-बार घर में कूड़ा फैलाकर अपनी भाभी को तंग करने का उपक्रम रचती है।

स्त्री सामाजिक मर्यादाओं और संबंधों को निभाने के कारण स्त्री चूपचाप पारिवारिक कलह को सहती है। यहाँ तक अगर कभी पति-पत्नी में किसी बात को लेकर कुछ कहा सुनी भी हो जाती है तो पत्नी यह समझ कर चुप हो जाती है कि पति उसका भरण-पोषण करता है और वह उसके साथ कुछ भी कर सकता है। इस लोकगीत में पति का पत्नी पर अत्याचार इस कदर बढ़ गया है कि वह उसे छड़ी लेकर मारने के लिए जाता है-

“गोड़ धर मारिस, मूड़ धर मारिस
पै इतनेउ पै धनियां न जागी है न
खोल अंचरवा राजा देखन लागें
पै मरि गई पातर धनियउ हो न।”

पति ने पत्नी को पैर से सिर तक खूब मारा, किंतु पत्नी ने ऊ नहीं की। मारते-मारते उसने उसका सिर खोला और उसे बेहोश पाया। इस तरह पारिवारिक संबंधों को व्यक्त करने वाले अनेक गीत देखे जा सकते हैं। एक अन्य कजली गीत में भाई से बहन कहती है-

“सासु खाँची भरि बसना मँजावैं, पे पनियां पताल भरावई हो न
एक पइला गेहुँआ औ नौ रे पहनुवां, ओहू मां कूकूर बिलयउ

ओहू मां ननदी कलेउनउ हो न।”

इस प्रकार बहन अपने भाई से अपनी आपबीती कहती है कि सास मुझसे घर का सारा काम कराती है और उसके बदले में पेटभर भोजन भी नहीं देती। भाई ये सब बात माँ को मत बताना। माँ का मन दुख से भर जाएगा। भाई ये बातें अपनी पत्नी से भी मत कहना नहीं तो वह भी ताने देगी-

“ई दुख जनि कहया माया के आगे छतिया विदरि मरि जइहीं हो न
ई दुख जनि कहया बाबू के आगे, दुआरे बैठ पछितइहैं हो न
ई दुख जनि कहया भौजी के आगे दुई चारि धरि कहि आवई हो न।”

उसी प्रकार प्रसव पीड़ा के समय स्त्री अपार कष्ट सहन करती है। प्रसव-पीड़ा संबंधी भावनाएँ पारिवारिक गीतों में अनेक प्रकार से निहित हैं। स्त्री प्रसव पीड़ा के समय अपने कमरे में वेदना से व्याकुल होकर पड़ी है, किंतु सास और ननद में से कोई नहीं जागता, वह खीझकर कहती है-

“सासु ता आंही पिसनहारी, ननदि कुटनहारी,
प्रभु जी ता आंही घस छोलना, जगाए नहिं जागै।”

एक अन्य गीत में नई नवेली वधू अपने पति से कहती है-

“जो तुम रहते भँमरवा, मधुर मुसकान मां हो,
जियरा परा है मोर गाढ़ बिगान होइकै बोलै।”

अंत कहा जा सकता है कि लोकगीतों में समाज अपने नियमों, परंपराओं और आपसी सौहार्द से बंधा हुआ है। यहाँ सुख-दुःख, शादी-विवाह, जन्म-मृत्यु, और धनवान-निर्धनता आदि व्यापक समुदाय में रहते हुए यहाँ के वासी हर प्रकार की समस्या और स्थिति-परिस्थिति से लड़ते-सहते लोग अपनी जीवन नैया को उम्मीद के सहारे आगे बढ़ाते रहते हैं। आशा की एक किरण की और अगसर यह लोक समाज सामाजिक और पारिवारिक प्रेम, आदर और स्नेह के साथ जीते हैं और अपनी परंपरा और मान्यताएँ के साथ अपने जीवन का निर्वाह करते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. त्रिलोचन पांडेय - लोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 233 .
2. डॉ० एस.एस. माथुर - सामान्य मनोविज्ञान, पृ. 15
3. सुमेशचंद्र झा - बिहार की लोक संस्कृति एवं लोकगीतों का पारस्परिक संबंध, पृ. 49
4. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय - लोक साहित्य की भूमिका, पृ. 242
5. वहीं, पृ. 243



सुषम बेदी कृत 'लौटना' उपन्यास में प्रवासी स्त्री की अस्मिता का संघर्ष

– भावना देवी

पीएचडी शोधार्थी, हिंदी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

प्रवासी हिंदी साहित्यकारों में सुषम बेदी का नाम विशिष्ट है। इन्होंने प्रवासी हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लौटना इनका बहुचर्चित उपन्यास है अपने देश की मिट्टी, उसकी स्मृति यह सब प्रवासी साहित्य का एक जरूरी फलक रहा है। इस फलक और दायरे को एक नया आयाम देने वालों में सुषम बेदी सफल रही हैं। प्रवासी साहित्य की यह विशेषता रही है कि साहित्यकार अपने देश से दूर रहकर भी अपने वतन की स्मृति को याद रखते हुए विदेश में किए गये संघर्षों और जीवनानुभव को अपने साहित्य में उकेरता है। प्रवासी साहित्य ने हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई है। विदेशों में लिखा जा रहा हिंदी लेखन इसका प्रणाम है।

सुषम बेदी को उनका बचपन, शिक्षा एवं प्रारम्भिक अध्यापन इन सबकी स्मृति विदेश जाने के बाद भी उन्हें याद रहती है। 'लौटना' उपन्यास इसी की एक परिणति है। इस उपन्यास की नायिका मीरा है। उपन्यास के केंद्र में पाने और खोने के द्वंद्व और अपनी अस्मिता को तलाशती मीरा का चित्रण हुआ है। यह एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो अपने परिवेश से कटकर प्रवासी जीवन जीते हुए अपनी अस्मिता निर्माण के लिए संघर्ष कर रही है। इसके लिए वह कभी भी अपनी जीवन-परिस्थितियों से समझौता नहीं करती है। वह चाहती है कि उसकी भी अपनी एक पहचान हो। उसके जीवन में जुड़े हर छोटे-बड़े निर्णयों पर उसका स्वयं का अधिकार हो। वह ऐसे समतामूलक समाज का सपना देखती है जिसमें केवल पुरुष को ही श्रेष्ठ न समझा जाए, बल्कि सभी जगह स्त्री-पुरुष दोनों को ही समान अधिकार प्राप्त हों। इस संदर्भ में उपन्यास का यह प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय है- 'न विजय मेरे मुआमलों में ज्यादा दरबल देता है, न मैं। अगर उसके लिए किसी लड़की का फोन आता है या जब वह घर देर से आता है तो मैं नहीं पूछती कि वह कहाँ था किससे मिला और ऐसी ही आजादी मैं अपने लिए भी चाहती हूँ।'.....एड, मैं समझती हूँ कि पति का रिश्ता यह व्यवस्था नहीं करता कि हर दूसरा संबंध उससे पूछकर, उसकी सहमति लेकर या उसकी इजाजत लेकर ही स्थापित किया जाये। रिश्ते तो अपने आप ही बनते चले जाते हैं। आखिरकार पति से अलग भी मेरी अपनी जिंदगी है.....जिसकी अलग परिस्थितियाँ हैं.....अलग नियम हैं.....जो सिर्फ मेरे अधीन हैं।' मीरा के व्यक्तित्व में कहीं भी किसी के अधीन रहने का भाव नहीं है। उसने अपना स्वच्छन्द व्यक्तित्व निर्माण किया है। परिवार को किसी भी व्यक्ति की प्रथम पाठशाला कहा जा सकता है। इस कारण व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की अपनी अहम भूमिका होती है। स्त्री संदर्भ में तो यह बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। स्त्री को यदि आत्मनिर्भर और सबल बनाना है, तो इसके लिए सबसे जरूरी है कि उसे उसके घर परिवार में एक स्वच्छंद माहौल मिले। मीरा को यह सब बचपन से ही मिला था- 'औरत को अगर बचपन से यही सिखाया जाए कि उसकी जगह घर में ही है तो यकीनन वह उसी में जिंदगी का अर्थ ढूँढ़ने लगेगी.....और अब यही होता ही रहा है। होने को बहुत से घरों में अभी भी यही सिलसिला है.....पर मेरे घर का माहौल फर्क रहा है। मेरे माँ-बाप ने मुझे एक व्यक्ति के रूप में बड़ा किया है - एक औरत या

मर्द का फर्क करके नहीं। मेरे व्यक्तित्व की हर संभावना को पूरी तरह फलने-फूलने का मौका दिया गया है।² इसका परिणाम यह होता है कि मीरा कभी भी खुद पर किसी का अधिकार स्वीकार नहीं करती है। उपन्यास में एक स्त्री के रूप में मीरा का सबल, आत्मनिर्भर, स्वच्छंद और सशक्त रूप ही अधिक प्रस्तुत हुआ है। मीरा में कुछ पाने और कुछ अलग करने की चाह सदैव बनी रहती है, लेकिन उसका जीवन संघर्ष तब प्रारम्भ होता है जब वह विवाह पश्चात अपने पति के साथ विदेश जाती है।

प्रायः विदेशों में रह रहे या प्रवासी जीवन बिता रहे भारतीयों को आर्थिक दृष्टि से सक्षम रूप में ही देखा जाता रहा है। कई बार लोग ऐसी धारणा बना लेते हैं कि यदि कोई व्यक्ति विदेश में रह रहा है तो वह आर्थिक रूप से बहुत सक्षम होगा, जबकि यही एकमात्र वास्तविकता नहीं है। प्रवासी जीवन को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। पहला प्रवासन वह है जो विवशतावश किया जाता है जबकि दूसरे प्रकार के प्रवासन में व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति और बेहतर करने के लिए ऐसा करता है। कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि जब कोई विदेश जाता है तो उसे वहाँ एकदम से नयी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, ऐसे में यदि वह जल्द ही अपने आपको वहाँ के अनुरूप ढाल नहीं पाता है तो उसकी आर्थिक स्थिति पहले से भी बुरी हो जाती है। ऐसे लोगों को असफल प्रवासी कहा जा सकता है। उपन्यास के इस प्रसंग के माध्यम से इस स्थिति को समझा जा सकता है- 'सड़क के दोनों ओर दुकानें ही दुकानें थीं- सस्ते खानों की, सस्ते कपड़ों की। डाउन-टाउन का यह हिस्सा सस्ती शॉपिंग के लिए जाना माना था। शहरभर का जंकमाल भी यहीं बिकता था। गाड़ियों के पुराने पाटर्स से लेकर पुराने फैशन के कपड़े या पुरानी किताबें सभी कुछ मिलता था। शहर की फैशनेबुल मदक दुकानों में जो माल रिजेक्ट हो जाता या अनबिका पड़ा रह जाता, वह सस्ते दामों पर डाउन-टाउन की इन दुकानों पर बेचा जाता था। गरीब और नये या असफल प्रवासी इन्हीं दुकानों पर खरीददारी किया करते थे।'³ कहा जाता है कि परदेश में मित्र धन होता है, क्योंकि वहाँ कोई अपना नहीं होता। ऐसे में व्यक्ति यदि आर्थिक रूप से कमजोर हो तो उसकी स्थिति अत्यधिक दयनीय हो जाती है। मीरा को भी वहाँ ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता यदि वह इतनी विवेकशील और शिक्षित न होती-दोस्तों में, पार्टियों में बस यही चर्चा का मुख्य विषय था, किसने कितना खोया..... आज मार्केट थोड़ी ऊपर आयी.....आज कुछ रिकवरी हुई.....तो, फिर से गिर गयी.....लोग मार्केट में पैसा लगाने से घबरा गए थे। लोग पैसा नहीं लगायेंगे तो स्टॉक ब्रोकर खाएंगे कैसे? उनकी कमाई तो लोगों के खरीदने की कमीशन से ही होती है.....मीरा के घर में भी पैसा आना बंद हो गया था। सबसे पहले सवाल उठा कि घर बेच दिया जाए। मोटरगेज कि किस्तें तो हर महीने जानी थीं पर यहाँ महीने की बंधी-बन्धायी आय तो आ नहीं रही थी। तब मीरा ने ही कहा था-विजय, मुझे नोकरी पर वापस चला जाना चाहिए। वहाँ से महीने की बन्धी हुई रकम तो आयेगी।'⁴ इस प्रकार मीरा न सिर्फ अपना घर बिकने से बचाती है, बल्कि इस बात की ओर भी ध्यान आकृष्ट करती है कि यदि स्त्री को भी अवसर मिले तो वह भी पुरुष के साथ अपने घर-परिवार पर आयी विपत्ति को दूर कर सकती है।

प्रवासी साहित्य को यदि विभक्त करें तो दो तरह का साहित्य हमारे सामने आता है। पहला साहित्य वह जो विदेशों में रह रहे प्रवासियों की दूसरी या तीसरी पीढ़ी द्वारा लिखा जाता है। इनके लिए भारत एक तीर्थ स्थल जैसा ही होता है। इनके लिए भारत आना अपने पुरखों के बारे में जानने के रोमांच जैसा होता है। ऐसे लोग भारत आकर भी विदेशी हो जाते हैं। दूसरी प्रकार के प्रवासी वे हैं जो अपनी मर्जी से पढ़ाई-लिखाई करके अपनी माली हालत बेहतर करने के लिए विदेश जाते हैं। यह सब पहली पीढ़ी के प्रवासी हैं और इनका भारत से संपर्क लगातार बना रहता है।⁵ ऐसे लोग पाने और खोने के द्वंद से गुजरते हैं। उनके बीच दो विभिन्न देशों की सभ्यताओं की टकराहट सामने आती है। यह वह लोग होते हैं जो भारत से कट नहीं पाते और न ही विदेश जाकर वहाँ की सभ्यता, संस्कृति और परिस्थितियों से पूरी तरह जुड़ पाते हैं। ऐसे में सभ्यताओं का द्वंद्व होना स्वाभाविक है। उपन्यास में मीरा की स्थिति भी

कुछ ऐसी ही है। मीरा के बहाने लेखिका ने दो देशों की संस्कृति और सभ्यताओं के द्वंद्व को रेखांकित किया है। इस संदर्भ में उपन्यास का यह प्रसंग उल्लेखनीय है- 'क्या उसे लौट नहीं आना चाहिए?.....ममी-पापा के पास..... वे कुछ कहेंगे नहीं.....लेकिन मीरा की इस घर में बेहद जरूरत है। पर कितना अनहोना-सा लगता है विजय के बगैर यहाँ आकर टिक जाना। सबसे पहले तो खुद उसके ममी-पापा ही नहीं मानेंगे। शादी के बाद भला कोई सोच सकता है इस तरह लौट आना.....किस तरह बँट गयी है जिंदगी यहाँ और वहाँ के बीच।'⁵ कह सकते हैं कि लौटने का द्वंद्व मीरा की जिंदगी में उसकी नियति बन जाता है। यह स्थिति उसके व्यक्तित्व में कई पक्षों को लेकर है वह अपने पति विजय के होते हुए भी कृष्णन से प्रेम संबंध बनाती है और फिर पति के पास लौटने या उसे छोड़ने के द्वंद्व में उलझती है। कमोबेश यही स्थिति उसकी दफ्तर और यूनिवर्सिटी में नोकरी को लेकर है। यही अवस्था उसकी दर्शनशास्त्र पढ़ने और नृत्य को सीखने को लेकर रहती है। इसी तरह वह हिंदुस्तान विजय के साथ विवाह कर अमेरिका जाती है और कुछ समय पश्चात वहाँ से लौटने या न लौटने के द्वंद्व में उलझती है।

अंततः वह लौटने का फैसला करती है- 'अब तुम मुझे रोक नहीं पाओगे, विजय बहुत साल इसी द्वंद्व में तो गुजार दिए मैंने.....पर अब मैं मुक्त हूँ.....और तुम्हें भी मुक्ति देती हूँ। विजय तुम्हारे फैसले.....यूँ जिंदगी के सारे बड़े फैसले तुमने खुद को ही केंद्र में रखकर किये.....पर अब तो तुम्हें मेरे बारे में सोचने की तनिक भी जरूरत नहीं.....क्योंकि अपने बारे में फैसले अब मैं खुद को बीच रखकर करूँगी। आखिर मेरी जिंदगी मेरा निजी कंसर्न है-उसकी जरूरतों को सिर्फ मैं ही पूरी तरह समझती हूँ.....इसलिए मुझे ही उसके फैसलों का हक है, और किसी को नहीं.....जैसे कि मुझे तुम्हारी जिंदगी को लेकर फैसले लेने का हक नहीं है।'⁶ मीरा के व्यक्तित्व में बार-बार लौटना और फिर आगे बढ़ना रहा है। ऐसा इसलिए भी है, क्योंकि वह जहाँ है उससे संतुष्ट नहीं रहती है। उसमें हमेशा कुछ और बेहतर करने या पाने की चाह रहती है। इसी कशमकश में वह अपने प्रवासी जीवन में उलझी रहती है। इसके विपरीत जब वह हिंदुस्तान में रह रही होती है तो उसे ऐसी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ता है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि यहाँ वह अपने को बीच अपनी मिट्टी, अपनी जमीन से जुड़ी होती है। यह जुड़ाव उसे बाँधे रखता है और उसे बिखरने नहीं देता, लेकिन प्रवासी जीवन में उसके साथ ऐसा नहीं होता है। वहाँ कोई भी निर्णय लेने में वह अपने आप को सहज महसूस नहीं करती उसकी यही उलझन और बेबसी इस उपन्यास की विषयवस्तु है। यह प्रवृत्ति अधिकांशतः प्रवासी साहित्य में देखी जा सकती है।

मीरा के माध्यम से लेखिका ने इस उपन्यास में पुरुषवर्चस्ववादी समाज के खिलाफ स्त्री प्रतिरोध को दर्ज कराया है। ऐसा कर उन्होंने ऐसे लोगों को सचेत भी किया है जो स्त्रियों से जुड़े सारे निर्णयों पर सिर्फ अपना अधिकार जमाते आए हैं। लेखिका ने मीरा के चरित्र के माध्यम से आत्मनिर्भर और नए संकल्पों से निर्मित स्त्री का चित्र प्रस्तुत किया है। मीरा उन मूल्यों को अपने जीवन में बाँधना नहीं चाहती जो अब तक स्त्रियों को विरासत में मिलते रहे हैं। वह सिर्फ एक घरेलू स्त्री बनकर नहीं रहना चाहती है और न ही वह सिर्फ मातृत्व भाव को ही सब कुछ नहीं मानती है- 'तो और सारी सर्जनात्मक झूठी है.....सिर्फ माँ बनने का बायोलॉजिकल कर्म ही सच है.....नहीं, ऐसा नहीं हो सकता.....ऐसा होता तो फिर सिर्फ बच्चे ही पैदा होते इस दुनिया में, ओर कुछ नहीं होता। अपनी सारी बौद्धिकता और सर्जनात्मक को एक मातृत्व के पलड़े पर कैसे हल्का होने दे सकती है.....बच्चे सभी पैदा करते हैं.....दार्शनिक और नर्तकी कोई विरले ही बनते हैं.....मीरा, तू फर्क है.....उन सब औरतों से फर्क है जो सिर्फ मातृत्व में सार्थकता ढूँढती हैं.....तेरा जगत उनसे बहुत बड़ा है।'⁷ इस प्रकार मीरा इस उपन्यास में परम्परागत स्त्री छवि को तोड़ती है। वह आज की आधुनिकता स्त्री के रूप में प्रस्तुत हुई है। उसके जीवन की विसंगतियाँ कहीं न कहीं आधुनिक युग की विसंगतियाँ भी हैं। लेखिका ने मेरे के चरित्र के रूप में जिस उदासी अकेलापन और ऊब को प्रस्तुत किया है वह आज के समय की सच्चाई है। मीरा का माँ न बनने का निर्णय भले ही कितना आधुनिक क्यों न हो, लेकिन उसकी उदासी, अकेलेपन

और ऊब का कारण भी बनता है।

जब एक प्रवासी लेखक अपने साहित्य में प्रवासी जीवन जी रहे। भारतीयों की स्थिति व्यक्त करता है, तो वह हमें वहाँ की सभ्यता और संस्कृति से भी जोड़ता है। उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग आए हैं, जो हमें वहाँ की संस्कृति से जोड़ते हैं। मीरा के बहाने लेखिका ने यह भी बताने का प्रयास किया है कि वह आर्थिक रूप से तो सक्षम है ही, साथ ही वहाँ की सुख-सुविधाओं को भी भोग रही है। बाबजूद इसके अपने देश और अपनों से दूर होने की पीड़ा उसे हमेशा सताती रहती है। एक अजीब सी बेचैनी हर वक्त उसे घेरे रहती है। इस प्रकार मीरा का लौटना इस उपन्यास की केंद्रीय विषयवस्तु है। इस उपन्यास की सृजन प्रक्रिया के बारे में सुषम बेदी कहती हैं- 'लौटना मेरे मन और अनुभव के बहुत करीब है।....लौटना में औरत की उस अंदरूनी कसमसाहट और तकलीफ को व्यक्त करने की छटपटाहट थी जो यहाँ के माहौल में अपने को पूरी तरह से के खो रही थी। फिर भी अपने प्राकृतिक पर्यावरण में लौट नहीं सकती थी, क्योंकि उसका जीवन अब तक एक निश्चित स्थान और दिशा में बंध गया था। इस तरह लौटना की मीरा का जन्म हुआ।' प्रायः ऐसा माना जाता रहा है कि भारतीय हिंदी साहित्य में स्त्री का जो संघर्ष, बेचैनी और उसके अंतर्विरोध दिखाई पड़ते हैं उस तरह का द्वंद्व प्रवासी हिंदी साहित्य में नहीं है। कहे सकते हैं कि लेखिका ने अपने इस उपन्यास में मीरा का चित्रण कर ऐसी मान्यता को तोड़ा है। इस प्रकार प्रवासी साहित्य के माध्यम से स्त्री का संघर्ष वैश्विक स्तर पर भी उजागर हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कोई कितने ही दिनों तक अपने देश से बाहर क्यों न रहा हो, लेकिन वह अपने देश की स्मृति, अपनी जड़ को भूल नहीं पाता है। अपनी जड़, जमीन और परिवेश से कटकर एक नई जमीन तैयार करना किसी के लिए भी आसान नहीं होता है। इस बीच उसे एक प्रकार के द्वंद्व से गुजरना पड़ता है। यह द्वंद्व अतीत की स्मृति और भविष्य की निर्मिति का है। इस द्वंद्व में पिसकर व्यक्ति कई बार टूट जाता है तो कई बार निखर भी आता है। इस उपन्यास की नायिका मीरा भी अपनी अस्मिता की तलाश में पल-पल टूट रही है। उसका चरित्र एक आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में प्रस्तुत हुआ है। आर्थिक विपत्ति आने पर वह अपने पति के साथ उस स्थिति का सामना भी करती है। इस प्रकार सुषम बेदी कृत 'लौटना' उपन्यास एक प्रवासी स्त्री के अंतर्द्वंद्व और अस्मिता के संघर्ष का आख्यान है।

संदर्भ :-

1. सुषम बेदी, लौटना (उपन्यास) पृ.- 45
2. वही, पृ.- 48-49
3. वही, पृ.- 174
4. वही, पृ.-174
5. वही, पृ.- 71
6. वही, पृ.-191
7. वही, पृ.-192



Change is the only constant : The innocuous rise of women writers in Nagaland and the voices that they portray

-LANUNOCHIT PONGEN

Asst. Professor, English Department, YINGLI GOVT COLLEGE, LONGLENG : Nagaland.798625

Abstract :-

It was the woman or the old woman who sang lullabies and told imagination gripping tales to the young children in the homes, sitting around the warm fires and thus the narratives or folktales were passed down the generations. That same vein of narration runs in the modern educated women albeit in scroll form focused on women issues in the Naga women and as women, view women issues from the kaleidoscope of their works. As educated women they are conscious of their age old roles and the negativity or a lower pedestal role that they were hitherto playing in the social structure platform and this they highlight in the form of mass social writings creatively and with interest evoking thoughts which touches the cord of social awareness previously taken for granted and now to be streamlined for a better and much encompassing role in the society.

Keywords : Struggle, Patriarchal, Women Writers, Concomitant, Parlance.

Introduction :-

It is a curious anomaly that in a not too declared but taken for granted society, the only mainstream publisher in Nagaland is owned by a woman, Heritage Publishing House, founded in 2008 and the proud publisher of more than 200 books and counting. The other known publishers are also two women and the entire intellectual spectrum is dictated and run by women. It is a curiosity because the political setup is mainly male dominated and all important aspects of the society is run by men; women being confined or relegated to the role of home makers, a sobriquet that they highly contest today. Maybe they unconsciously grasped literature and the written words to express their views and so when it comes to the thought-moulding domain, be it publishing to fiction writing and journals, women voices are heard more and they shape the intellectual landscape of the state.

It must be noted that in a patriarchal society as custom has lain down, women play a less significant role in the economy, political and social life and the woman is a concomitant. It is culture that dictates that woman is the weaker sex and so the submissive behavior. So, some pertinent questions arises when literary works is done; are women portrayed in a fair light or are they subjugated even in the text as it is the portrayal of that period of time. In a literary work, how is the experience of the women analyzed, whether it be the race, class or other cultural factors. Is the literary piece defined as masculinity and femininity in subtle terms; where the woman is relegated to the accepted social norms or is she given her due share. Most importantly, in literary works what is the role of women literary history and literary tradition. (Lois Tyson).

These questions are universal in nature and as the day is light and the night dark, Naga women writers also ultimately highlights these thoughts in their works, an emancipation through education.

Discussion :-

From the hearth and the cocoon of domestic felicity comes the question of how women writers have made assertions and are more liberal with the world views and where do Naga women writers come in the scheme of

things called literature and what is their stance when it comes to women voices in the society and where they stand in the field of gender issues in their works and how far they have contributed to the awareness of women rights in the society. In the words of Monalisa Changkija, a noted woman writer of Nagaland "Education is the only salvation for Naga women- to live with dignity, independence and self-reliance" .

Sociologist Jamir says the domination in the field of arts reflects Naga women's advancement in education. (The Times of India).

" They also face the complexity of a society that is undergoing the binary of change and continuity, with the pull towards modernity, on the one hand and strong undercurrents of traditional and customary practices on the other. The latter are often geared towards a strong patriarchal system that is often inclined to disfavoured women. Nevertheless, Naga women have managed to engage themselves effectively within their traditional space and have significantly impacted their society". Meneno Vamuzo.

There was a uniqueness of Naga custom where the tradition seemed patriarchal but women were not left out and were treated as partners at home, sometimes the men depended on the sagacity of the woman at home and so was an equivalent of counselor or a good advisor .As such ,it was not difficult to blend with new ideas especially western views and western education and thoughts fit as gloves for Naga women and education rejuvenated and reinterpreted this perspective and women came to the realization that they were not less good than the male in the society. The theoretical structure of creative literature of Naga women writers erupted from their erased and hidden historical experience of their existence.

The nascent and poignant voices of women can be traced to the powerful folk poems composed by Tuonuo and Duosieu(1945) called "Japan Ruhuo" (Japan war), on the aftermath of the Japanese war in Kohima and echoes are found in their poems of the untold but real and acute suffering of women during the war. Often it was the heroic deeds of the men that were sung and they were thought to be the protectors of the soil or 'sons of the soil' never giving a back glance to the heroics of the women at home. They undermined or overlooked that women also suffered, shared the same hardships and their poems brought to the fore that everyone shared the plight in equal measures. Dinou who composed poignantly in her poem "U kehou", an awakening poem or thoughts of a woman who became aware of her surroundings and so philosophies that life is what one makes of it, to be awakened or to be in deep slumber, hypnotized by the time and the customs of the society. "Our life can be made into dawn, our life can be made into night, and we ourselves can make it our life, we ourselves can dismantle it" Shodhganga. Inflibnet.ac.in>bits stream.

Like pods scattered, the thoughts in the early days , seeking for fertile land for survival, yet the seeds the collective thoughts of women and few were privileged to pen it into words but the benefits are for the generations to come for it is an awakening of the dormant ideas of the "self" in the Naga woman; an assertion as individuals, and not tied to the idea of the second best but an iconoclast and shredder of the idea of a wife, a helper, a mother, a home-maker that she has an identity and that is, she is a woman, not inferior nor superior but on equal par with the men in the society.

Naga women writers like Temsula Ao, Easterine Kire, Monalisa Changkija, try to create an atmosphere of awareness for expression of women thoughts, which the women themselves were not aware of and gave it a unique blend, for there is subtlety in the role of the women in the Naga society, for she is not trampled upon, nor bartered, neither were her destiny through marriage pre-destined by the male members of the family or society but when she enters the fold of marriage she is typically cast into the role of a worker, a housewife, taken for granted to be at the bidding of her husband.

As such, Monalisa Changkija wrote in her work "Weapon of words on pages of pain" in the preface.

"The first part of this collection," weapons of words on pages of pain and to whom it may concern" reflect

some of my thoughts on battered and abused women, on domestic violence and on women's ability to rise above the "second class citizenry"

"If god made man
In his own image,
Where shall the
Battered seek justice?"

...
Blue bruises and broken-lips
Within the sanctity of marriages"

A bold statement in a state reverent of a God and a direct confrontation to long held beliefs but too long it has been taken for granted that the women has to bear the brunt of man's brute force; the women made to believe that it was her lot to suffer an unhappy marriage and wait patiently for the tide to turn in her favour. As women, as Nagas, these writers felt the subversive (established belief, Macmillan English dictionary of subversive) nature of beliefs and customs, which nature did not intent in the first place, and so, women writers voices are a welcome change of a new season and a new era, not to rebel or to overturn something that was finely placed but to place the decorum of equality in the Naga society.

"A Terrible Matriarchy" of Easterine Kire starts with the lines "My grandmother didn't like me." It is a narration of a unique girl child, rebellious by nature but it mirrors the societal outlook of the girl child, the concomitant and so a hindrance for the grandmother, proud to be called the grandmother of four boys but hindered and a thorn in the flesh by a girl grandchild; it narrates the unfolding of a young girl's life, Dielieno, a five year old when she was made aware that a girl is a second class citizen even in her own family circle. It is a saga of struggle between the child and her grandmother, Vibano, and the story is rooted in the history of stern Naga matriarchal attitude and discrimination of the girl child, not by men of the family but by women themselves and it stems from insecurities of loss and barrenness as a girl is equated as a take away gift no longer of significance once she gets married. At such a tender age, she knew that her grandmother did not love her, when she refused to give her a much desired chicken leg. Grandmother Vibano said that portion was always for boys and she always called her not by her given name but as "girl" a nonentity, not significant enough to be bothered with a name. Dielieno's struggle was the turmoil that went in every girl's mind, a struggle to create a niche for themselves and to come out of the rut of the societal restrictions on a woman, to be independent, not tagged as a concomitant of men.

The irony of grandmother Vibano's partial favour for boys stems from deep-rooted fear of customs and tradition, where boys were the safe-banks of the society, as Dielieno's mother explain to her, "your grandmother was the eldest of three children...when she was young she lived through a very hard age. In the village, widows without sons lost all their husband's property to other male relatives. So she understood that it was very important for a married woman to produce as many male offspring as she could. Her mother did not have brothers and they lost all their lands and fields when her father died...people were unkind and mocked those who could not produce male children. The understanding was that a woman without a male heir would be given shelter by her in-laws but her daughter could not inherit the father's property... Grandmother saw her own mother suffer hardship and poverty and exclusion from many aspects of social life because she had no brothers. It hardened her and made her determined not to suffer as her mother had. I think your grandmother looks at her sons as a kind of insurance..." (A terrible Matriarchy) As such, a woman's value depended on how many males she could attach to or claim as her own that increased her worth and it is this viewpoint that Easterine powerfully portrays in her novel, where, when one reads, the family of Dielieno's is held by the small thread of her awareness and as an intermediary and a deep reading would bring forth that if it was not for her, the family would have unraveled at a given point of time. The

girl's perspective is strongly enunciated in Dielieno's simple words "school was the best thing that could have ever happened to me" and it was education that opened up her eyes to become a self-reliant, confident woman as Easterine says in her own words, "she is not a feminist, but is more a womanist". A woman, who has no agenda against the society or man but a woman, who claims for what belongs to her. It is a powerful novel that speaks in volumes about the struggles of being a woman in the society, which is realized by society only when the ordeal is narrated from a woman's vista of experiences.

Dielieno is every Naga woman, a woman coming of age, to explore and find out that she was confined in finery of tradition for so long and she has to right the scales that was unbalanced and not in her favour. A cursory and fleeting education supposed to give her the right to count her fingers and write her name has given her wings and hence the powerful writings of women and they are heard too now.

Conclusion :-

As Monalisa Changkija has said education is salvation and it gives dignity to life, especially in context to women and their uplift in the society. From education comes the yearning to write and a dream and vision which they want to share with others and that dream can be fulfilled when women write from their own perspective and not from men's bird eye view. In truth, it is these powerful writings that open up new vistas for women and more are turning to the might of the pen and the page and reciprocally, men too understand what it is like to be a woman in the society, born equal but unmade by the customs and traditions and these ills can only be corrected when women take up different issues from all corners so that just like constant rain floods the arid plains their works can inundate the dry minds of the society and a girl, a mother, a woman when she brings changes, society will stand up and take notice.

References :-

1. Tyson Lois- Critical Theory Today.
Second Edition. Reprint 2017
Routledge Taylor and Francis Group. 270
Madison Avenue. New York, NY. 10016
2. Kire Easterine- A Terrible Matriarchy.
Zubaan, an imprint of kali for women. 128.B.
Shahpur Jat. 1st floor New Delhi. 110049. 2007
3. E. PAO- Online, 2017.
4. Shodhganga. Infisnet.ac.in, bit stream.
Coincidental Predicament of Naga and African American women.
5. Ao Temsula – These Hills called Home.
Stories from a war zone.
Zubaan, 2006
6. Macmillan English Dictionary for Advanced Learners-2002.
Macmillan education between Town Roads, Oxford. OX43PP
7. Das Yudhajit Shankar. Why Women Dominate the Entire Intellectual Spectrum in Nagaland. The Times of India. Sept. 18.2019.
8. Vamuzo Meneno. Narratives of Peace: Naga Women in the Self Determination Struggle. In Tension Journal. York University (Toronto, Canada). Issue 6 (Fall/Winter 2012)



मृदुला सिन्हा के उपन्यासों में नारी शोषण

—कुमारी पंकजा

शोध छात्र पी.एच.डी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़।

समकालीन उपन्यासों में नारी शोषण के विभिन्न आयामों को अभिव्यक्ति देने वाले नारी विमर्श से संबंधित उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है। उनमें महिला लेखिकाओं द्वारा लिखे गए उपन्यास उल्लेखनीय हैं। इनमें नारी के प्रति होने वाले सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक शोषण का विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। महिला उपन्यासकारों में मृदुला सिन्हा स्थान नाम अद्वितीय है। इनकी औपन्यासिक कृतियां नारी जीवन की विसंगतियों और विद्रुपताओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है तथा उसके समाधान हेतु सुझाव और दिशा-निर्देश भी करती हैं।

स्त्री शोषण के अन्तर्गत स्त्रियों को सताना उन्हें प्रताड़ित करना, उनकी आजादी का हनन करना, उन्हें जन्म लेने से वंचित रखना, उन्हें रीति-रिवाजों से बांधना, उन्हें गुमराह करना, बलात्कार करना, वेश्यावृत्ति करवाना आदि कुकृत्य माना है।

जिस समाज में नारी को देवी स्वरूपा माना जाता है उसी समाज में उसके साथ अत्याचार तथा अनाचार भी किए जाते हैं। प्राचीन समाज मातृसत्तात्मक था लेकिन वक्त के बदलने पर पुरुषों ने स्त्रियों की सत्ता का हरण कर अपना आधिपत्य जमा लिया। अपनी सत्ता पुरुषों द्वारा छिन्न जाने के बाद स्त्रियों का जीवन शोषण से भर गया। वे उन अधिकारों से वंचित रह गईं जिनकी वो हकदार थीं।

सीमोन बाउआर ने अपनी पुस्तक 'सेकेण्ड सेक्स' में कहा है कि- "स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बना दिया जाता है।"

मृदुला सिन्हा ने अपने उपन्यासों के द्वारा नारी शोषण, नारी संघर्ष और नारी सशक्तिकरण आदि विषयों पर गंभीर चिंतन प्रकट किया है।

इनके उपन्यासों में ग्राम्य जीवन, लोक परंपरा तथा लोक संस्कृति का सजीव चित्रण मिलता है। गाँव की मिट्टी की खुशबू बिखेरती इनकी रचनाएं भारतीय परंपरा को चहुँओर फैलाती हैं। लेखिका मृदुला सिन्हा ने अपनी सृजनात्मकता को पल्लवित पोषित करने के साथ-साथ राजनैतिक दायित्वों का निर्वहन भी बखूबी निभाया।

इन्होंने मुख्यतः सात उपन्यास लिखे हैं- ज्यों मेंहदी को रंग, घरवास, सीता पुनि बोली, अतिशय, नई देवयानी, विजयिनी तथा परितप्त लंकेश्वरी। आत्मकथ्यात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास सीता पुनिबोली, विजयिनी तथा परितप्त लंकेश्वरी उपन्यास जगत में अद्वितीय स्थान रखते हैं। उपन्यास 'ज्यों मेंहदी को रंग' उस अनछुए विषय पर आधारित है जिनसे साहित्य वंचित रहा है। यह उपन्यास पूर्णरूपेण विकलांग पात्रों के जीवन संघर्ष, उनकी समस्याओं एवं चुनौतियों को यथार्थ रूप से उजागर करता तथा विकलांगों को सामाजिक समता एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की राह दिखाता है। शालिनी के चरित्र के माध्यम से लेखिका द्वारा सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रयत्नों से भी बढकर स्वयं विकलांगों की मानसिकता में परिवर्तन लाने का प्रयास सराहनीय है।

इस उपन्यास का विमोचन करने के पूर्व स्व० जैनेन्द्र कुमार ने से पूछा था- इतने सारे विषय हैं, उपन्यास

लिखने के लिए तुमने दिव्यागों की समस्याएं ही क्यों चुनी? अनायास मेरी आँखों से अश्रुधारा बह चली थी। उन्होने कहा “समझ गया मैं तभी ये रचना भाव-भाषा और कथानक पर खरी उतरी हैं।

सदियों से सामाजिक मर्यादा के नाम पर बने कठोर नियमों के धार्मिक-छद्म तले पिसती और सर्वाधिक कमजोर आर्थिक स्थिति की पीडा झेलती स्त्री समाज में मात्र देवी स्वरूपा बनी रही, उन पर लगाए गए आचार संहिताओं के परिणाम स्वरूप उनका ‘मानवी’ रूप खोकर रह गया। वें समाज में देवी या फिर दासी रूप में विद्यमान रहीं। लेखिका मृदुला सिन्हा ने अपने उपन्यास ‘सीता पुनिबोली’ में सीता के पौराणिक दैवीय रूप को परे कर उसे सहज ‘मानवी रूप’ में प्रतिस्थापित किया हैं। इसमें सीता के पौराणिक कथा को सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत करके लेखिका ने अपने साहस का परिचय दिया है। ‘घरवास’ उपन्यास में कलिया के चरित्र के माध्यम से ग्रामीण तथा पिछड़े वर्ग की स्त्रियों की चेतना को जाग्रत किया हैं।

उपन्यास ‘अतिशय’ और ‘नई देवयानी’ पौराणिक पात्र ययाति के कथ्य पर आधारित हैं जिसमें सनातन समाज के शाश्वत जीवन मूल्यों को आधुनिकतम रूप तलाशा गया हैं, ‘परितप्त लेकेश्वरी’ में लंकापति दसग्रीव की पत्नी मंदोदरी की परितप्त मनोदशा का विश्लेषण किया गया है।

इन उपन्यासों के माध्यम से लेखिका ने नारी शोषण की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक समस्याओं पर गहन चिंतन व्यक्त किया हैं।

हमारी संस्कृति में स्त्री को पुरुष से ऊँचा स्थान प्राप्त हैं। स्त्री, पुरुष की जन्मदात्री, पालनकर्तृ है। स्त्री को लक्ष्मी स्वरूपा मानने वाले समाज में लक्ष्मी का आदर करना ही चाहिए। लेखिका ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को ही प्रधानता दी हैं। उनका मानना है कि स्त्री संघर्ष स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों के प्रदर्शन मात्र से खत्म होने वाला नहीं हैं। इसके लिए उन्हें विशेष शिक्षा और सुरक्षा प्रदान करनी होगी।

उपन्यास ‘घरवास’ में मास्टर रामजीवन सिंह की बेटी सुषमा का रिमोट गांव मे रहकर अध्ययनरत रहना सराहनीय कदम है, लेकिन स्थानीय मंत्री और गाँव का ठेकेदार उसके साथ छेड़छाड़ कर उसे बदनाम करने का षडयंत्र को तभी अंजाम देते हैं, जब वह ट्यूशन से घर लौटती होती हैं- “अपने नेता के इशारे पर तीनों साथियों ने सुषमा को धान के खेत में खींच लिया। सुषमा के चिल्लाने से उसकी सखियां भाग खड़ी हुई, बदहवास वहां कहां कोई बचा था-उसकी चीख चिल्लाहट सुननेवाला? सुषमा उन बदमाशों से लड़ती चिल्लाती रही।”

निश्चित स्त्रियों के जीवन में परिवर्तन आया है, शिक्षा और रोजगार का प्रतिशत बढ़ा है। वे अवसर पाकर जी तोड़ मेहनत कर रहीं है, कुछ क्षेत्रों में पुरुषों से आगे बढ़कर उन्होनें अपनी क्षमताओं को उजागर करते हुए विशेष पहचान बनाई हैं लेकिन दूसरी ओर उन पर विभिन्न प्रकार की रही ज्यादतियों की संख्या भी बढ़ रही है। बलात्कार, छेड़छाड़, घरेलू हिंसा, मारपीट, दफतरो में भेदभाव, एम.एम.एस बनाना, पत्नियों की पिटाई करना, न जाने कितने स्वरूप हैं-ज्यादतियों के। इस प्रकार विकास की दिशा में अग्रसर नारी अनुपयुक्त वातावरण में जी रही है। शक्ति सम्पन्न नारियां भी कल उन पर कोई कहर न ढहा दिया जाएं इसलिए भयातुर है, डरी सहमीं हैं, चिंतित है, मानसी घर और बाहर असुरक्षित है।

यूं तो इस स्थिति के कई कारण हो सकते हैं परंतु एक मुख्य कारण है-स्त्री को पुरुषों के बराबर मानने की असफलता आयातीत अवधारणा हमारी संस्कृति में स्त्री-पुरुष को एक दूसरे का पूरक मानकर स्त्रियों के लिए विशेष व्यवस्था की गई है, क्योंकि प्रकृति ने उसे विशेष बनाया है उसकी शारीरिक, मानसिक बनावट और संवेदनाएं पुरुषों से भिन्न और विशेष है। इन विशेषताओं के बल पर ही वह सृष्टि को आगे बढ़ाती है, बच्चों की देखभाल करती है और समाज को संवेदनाओं से जोड़ती है। आज बदली हुई विभिन्न भूमिकाओं में भी उसे इन प्रकृति प्रदत्त गुणों के कारण ही उनकी समस्या और जटिल होते जा रही हैं। जरूरत है अपनी सोच बदलने की। बेटा-बेटी को बराबर नहीं

बल्कि बेटी को विशेष मानकर शिक्षा, सुरक्षा और संस्कार मुहैया कराने की। 'सीता पुनि बोली' में उपन्यास में लेखिका ने सीता के पिता जनक जी के मुख से कहलवाया है - बेटियाँ विशेष होती हैं, इसलिए मैंने उनके लिए परिवार तथा राज्य में विशेष संस्कार, विशेष सुरक्षा और विशेष सम्मान की व्यवस्था की है। हमें बेटियों के जन्म पर भी बढावा देना चाहिए शिक्षा के साथ-साथ जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी विशेष सुविधाएं प्रदान करना आवश्यक है।

समाज में स्त्रियों के दयनीय स्थिति का बहुत बड़ा कारण उनका आर्थिक रूप से सबल न होना है, पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण स्त्रियों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई। जो स्त्री घर परिवार चलाती है, सगे-संबंधियों सबके साथ निभाती है, सारी जिम्मेदारी निभाती है, उसे ही आर्थिक अभाव झेलना पड़ता है। कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि-आर्थिक असमर्थता नारी शोषण का सर्वप्रमुख कारण है। विधवा और परित्यक्ता स्त्री की हालत तो और भी विचारणीय है। सीता ने राम का साथ देने के लिए वन का कष्टप्रद संघर्षमय जीवन वरण किया। वही राम लोकापवाद से बचने के लिए अपनी गर्भवती पत्नी का परित्याग कर उसे वन में छोड़ दिया, सीता का मन चीत्कार कर उठा - अयोध्या के प्रतापी राजा की रानी थी, मैं इतनी शीघ्रता से दयनीय स्थिति को कैसे आत्मसात कर लेती।''

उपन्यास 'ज्यों मेंहदी को रंग' की शालिनी संस्था में कृत्रिम पैर लगवाने आती है, पर एक साल बीत गया। उस अंतराल उसका पति एक बार भी उससे मिलने नहीं आया। कहाँ जाएँ शालिनी? उसके चाचा उसके लिए नौकरी की तलाश में जाते हैं तो समाज का धिनौना सच सामने आता है। "किस फेर में पड़े हैं। इस कॉलेज का सेक्रेटरी अध्याय हैं। तभी तो लड़कियों का कॉलेज खोला है। आप एक दिन उस उस लड़की को ही.....।" शालिनी पढी लिखी मेहनती होने के बावजूद बेरोजगार रहती हैं।

चंचल स्वभाव की सुंदर, सरपट चाल वाली शालिनी अपने पति और सास के आँखों की पुतली थी लेकिन एक दुर्घटना ने उसका सब कुछ छीन लिया। पति के साथ पटना जाते वक्त स्टीमर और डेक के बीच फँसकर उसके दोनों पैर गंगा मैया की तेज धारा में प्रवाहित हो गए और उसकी दुनियाँ बदल गई।

"स्टीमर से उतरते वक्त दोनों टांगें कट जाने से शालिनी की इच्छाएं, आकांक्षाओं तो खत्म नहीं हुई थी, पूरा शरीर तो पड़ा ही था। उड़ान भरता मन, उड़ान की योजना बनाना दिमाग तो सजग ही था।"

फिर राजेश क्यूं कतराता फिरता था और सास क्यूं कतराती फिरती थी? उसके पति का प्यार उपेक्षा और घृणा में बदल जाता है- "सुनों न!.....बोलो कान खुले हैं मेरे..... राजेश चाहकर भी पास नहीं जा पाया था।" सगे संबंधी, पड़ोसी राजेश के भविष्य की चिंता कर उसे शादी के लिए मनाने लगे, वह नहीं माना। शालिनी के कहने पर जवाब में बोला मैं नहीं चाहता वैशाखी में वैशाखी लगाना।"

पर अंत में हामी भर दिया तो शालिनी ने उस घर से रिश्ता तोड़ लिया। उसने संस्था में कार्यरत रह एक नहीं अनेक के लिए जीने का संकल्प लिया।

मातृत्व एक सुखदायी अनुभव है मृदला सिन्हा ने अपनी रचनाओं में मातृत्व को जितना सराहा है, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। उनकी उपन्यास की पात्र सीता हो या सावित्री या फिर बिन ब्याहीं माँ शर्मिष्ठा सभी मातृत्व बोध से भरी हैं। वे शोषित और संघर्षरत रहकर भी अपने मातृत्व दायित्व से विमुख नहीं होती। उन्होंने अपने उपन्यासों में मातृत्व के हर रूप को आदर दिया है। 'सीता पुनि बोली' में जब राम सीता को पुनः अपनी शुद्धता सिद्ध करने को कहते हैं तो वह बोल पड़ती हैं- "माँ के सत की घोषणा नहीं होती और परीक्षा भी नहीं, माँ तो माँ होती हैं। उसी के गर्भ से संतान पैदा होती हैं।"

उपन्यास 'अतिशय' में कुंवारी माँ शर्मिष्ठा के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित कर समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

समाज में कुंवारी माँ और उसकी संतान को अभिणाय माना जाता है। समाज उन्हें सर उठाकर जीने को इजाजत नहीं देता। दिनकर जी की रश्मिस्थी में कुंती अपने पुत्र कर्ण से कहती हैं :-

“ बेटा धरती पर बड़ी दीन है नारी
अबला होती है सचमुच, योषिता कुमारी
है कठिन बंद करना समाज के मुख को
सिर उठा न सकती पतिता निज सुख को “

‘अतिशय’ उपन्यास की शर्मिष्ठा जब गर्भवती होती हैं तो वह समाज के बंधनों को तोड़ने की बात करते हुए वह यति से कहती हैं- “मैं माँ बनने वाली हूँ। मात्र यह सत्य मुझे दुर्बल बना देगा क्या? प्रकृति प्रदत्त अधिकार व कर्तव्य से मैं डिगूँगी नहीं। यह जानकर मुझे खुशी हो रही है कि माँ बनने वाली हूँ। रही बात बाप की, तो मैं चाहूँगी, मेरे गर्भ का शिशु एक बहादुर बाप का बच्चा कहलाए।”

पुरूषार्थ के पैदा होने पर यति उसे बाप का नाम देना स्वीकार नहीं करता। “बच्चे के बाप के नाम की जगह लिखा था- ‘यतीन्द्र नारायण’। यति के पांव तले जमीन खिसक गई। आँखों के आगे अंधेरा छा गया। बड़ी मुश्किल से वह संयत रख सका अपने को।”

रश्मिस्थी में कुंती के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। कुंती कर्ण के जन्म के रहस्य पर से पर्दा उठाते वक्त सूर्यदेव का आवाहन करती है तो वे पलायन कर जाते हैं-

“मानों कुंती का भार भयानक पाकर
वे चले गये दायित्व छोड़ घबराकर।”

कुंती समाज का सामना करने को तैयार हो जाती हैं-

“भागी थी तुझको छोड़ कभी जिस भय से
फिर कभी न हेरा तुझको जिस संशय से
उस जड़ समाज के सिर पर कदम धरूँगी
डर चुकी बहुत, अब और न अधिक डरूँगी।”

समाज में कर्ण और पुरूषार्थ जैसे उपेक्षित बच्चे को पालने में बाप की भूमिका भी होना जरूरी है। लेकिन पुरूष स्वभाव से स्वार्थी होते हैं, वे अपने दायित्व से मुख मोड़ लेते हैं फिर अकेली स्त्री को ही बच्चे की परवरिश की पूरी जिम्मेदारी लेनी पड़ती है, शर्मिष्ठा के साथ भी ऐसा ही हुआ।

समाज में प्रचलित धर्म-व्यवस्था के कारण भी स्त्रियों का शोषण होता चला आ रहा है। धर्म की आड़ में इनका शोषण करना और भी आसान काम हो जाता है। ‘घरवास’ उपन्यास की कलिया जब वर्णों से संजोएं घरवास के सपने को साकार रूप देने के लिए पंडित जी को अपना आमंत्रण भेजती है तो वे उसकी अवहेलना करते हुए दुत्कार देते हैं - “भाग जा ससाला! हरामी कहीं का। अब मैं मुसहर के घर पूजा करवाऊँगा। पंजाब जाकर दिमाग खराब हो गया तुम्हारा। तुम्हारी चमड़ी तो नहीं बदली? हे राम! कैसा कलयुग! कैसी सरकार! अब मुसहर भी घरवास करेंगे।”

कलिया घरवास के दिन पंडित जी का इंतजार करती हैं, उनके नहीं आने पर बिना पंडित जी की मदद के स्वयं घरवास की रस्म पूरी करती हैं।

‘विजयिनी’ में सावित्री पति के दीर्घायु होने की कामना संजोएं अति कठिन व्रत तथा धार्मिक अनुष्ठान करती हैं। पर एक वनवासी युवक द्वारा आक्षेप लगाए जाने पर उसे अपने पति सत्यवान की उपेक्षा मिलती है- “सत्यवान मौन रहे। मैंने उनके शरीर को हाथ लगाया, पर वे मेरी ओर नहीं मुड़े। मेरे लिए इतना ही यथेष्ट संकेत था कि वे मुझसे प्रसन्न नहीं थे...।”

दुनिया में भारतीय संविधान अपनी विशेषता के लिए प्रसिद्ध है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें स्त्री-पुरुष समानता को प्रमुखता दी गई है। स्त्री को मात्र लिंग-भेद के कारण किसी संवैधानिक अधिकार से वंचित नहीं किया गया है। भारतीय स्त्रियों को मतदान का अधिकार प्रदान करना दुनियाभर को चौंकाने वाला विषय था। वह भी उस समय जब संविधान की घोषणा हुई थी। परंतु अफसोस इस बात का है-ये सब होते हुए भी स्त्रियां अपने अधिकार का उपयोग नहीं कर पाती हैं। अधिकांश स्त्रियों को तो यह भी जानकारी नहीं है कि -उसके क्या अधिकार हैं। वह खुद भी अपने पाँव में पुरुष द्वारा बनायी गई बेड़ियों को तोड़ना नहीं चाहती। वह अपने घर-आंगन, खेत-खलिहान को ही अपनी दुनियां मान बैठी हैं।

उपन्यास 'घरवास' में मुसहरनियों को मुसहर पट्टी में गाँव के मुखिया द्वारा चापाकल का लगवाना उनका उपकार लगता है। उन्हें इस बात का भान नहीं होता कि उसे लगवाने के लिए मुखिया को सरकार द्वारा पैसे मिलते हैं। जब नल का वॉशर घिस जाता है तो मास्टर जी का बेटा, नरेन्द्र के कहने पर वें मुखिया से वॉशर मांगने जाते हैं तब मुखिया कहता है- "तो यह बात है! ये लोग मुझसे वॉशर मांगने आया है। लाद दो, लाद दो, लाद के पहुंचा दो।

एक तो बड़ी मुश्किल से चापाकल गडवाया। अब रोज-रोज तुम लोग तोड़ती रहो और मरम्मत में करवाऊं।"

"मालिक, हम लोगों को चापाकल की मरम्मत के लिए सरकार से पैसा मिलता है न।" बुधनी ने मुखिया जी के ओसारे के पास जाकर मिन्नत की। मुखिया जी ने डपटकर कहा- "ई सब नियम-कानून कौन सिखा दिया?जा जा जो सिखाया है उसी से मांग ले वासर। चापाकल चाहिए, वासर चाहिए। इनके मर्द तो पंजाबियों के खेत जोतें और हम इनको खिलाएं-पिलाएं पालें।"

गाँव के ठेकेदार राघव को दहेज में मोटर नहीं मिली इसलिए वह अपनी पत्नी को प्रताड़ित करता रहता है। जा जा कल ही नैहर चली जा। दरिद्र की औलाद! मुझे ही सिखाने चली है। बड़े-बड़े गए तो गजऊं आए। पीऊंगा शराब, जाऊंगा वेश्या के यहाँ। चार-चार रखैल रखूंगा। तुम क्या कर लोगी? तुम्हारे बाप की कमाई लुटाता हूँ क्या? उससे तो एक मोटरसाइकिल भी न दी गई। अपनी कमाई अपनी। दरिद्र की बेटी मुझे सीख सिखा रही है। "उसकी पत्नी, पति की ज्यादाती चुपचाप सब सह लेती हैं। मुंह तक नहीं खोलती।

शोषण के विरुद्ध कानून बने है। स्त्रियों को विशेष अधिकार प्राप्त है। पर हैं सब-ढाक के तीन पात। वें इन अधिकारों को व्यवहार में नहीं उतारतीं। तभी तो ठेकेदार राघव जैसे शैतानों की हिम्मत बढ़ती जाती है और स्त्रियों का शोषण भी।

मृदुला सिन्हा वोट मांगने के दौरान ग्रामीण महिलाओं के साथ एक अनुभव बयां करती हैं "वे कुछ नहीं पूछती, कुछ जानना भी नहीं चाहती, न नेता और न पार्टी का नाम, न घोषणा-पत्र, न चुनाव, न लोकतंत्र कुछ भी पता नहीं था उन्हें। उन्हें सरकार या विधेयक से भी कोई अपेक्षा या शिकायत नहीं थी। "वोट देने के लिए अनुग्रह करने पर ये महिलाएं कहती हैं- "घर के मर्द के जाने देंगे तब ना"। खेत में काम करने वाली महिलाएं कहती हैं कि-यह सब मर्दों का काम है।

मृदुला सिन्हा का उपन्यास 'घरवास' की मुसहर पट्टी की महिला समूह नेता लोगों की चालाकी समझती हैं। कलिया कहती हैं- "तुम्हारे मालिक ने कल फोकट में गडवाया क्या? मुखिया बनना था न, लेना था न भोट। सबको फुसलाने के लिए चापाकन का पाइप मुसहर पट्टी में रख दिया। भोट में मार खाया मेरा मर्द, दस दिन जेल काटा मेरा मर्द, अपना हाथ लगाया तब जाकर चापाकन गडा। तब से आज तक कोई मुसहर या मालिक उलटकर देखा भी है। फिर भोट का समय आने दो, सब दौड़ेगे।"

राजनीति या जीवन के अन्य क्षेत्रों में भ्रष्ट पतियों को राह पर लाने का संघर्ष उपन्यास 'परितप्त लंकेश्वरी'

में दर्शाया गया है। मंदोदरी अपने क्रूर, कामी, अहंकारी, धनलोलुप पति के दुर्गुणों के कारण जीवन भर मानसिक संताप सहती हैं। पति को समझाने के सारे प्रयास किल हो जाने पर वह उसे रिझाने के लिए अपना श्रृंगार वधूरूप में करवाती हैं फिर भी वह पति से उपेक्षिता होती हैं तो फंफुकार उठती है- आपकी जीत नहीं होगी। संभवतः आपकी जीवित नहीं रहे इसलिए मैंने वैसा श्रृंगार किया था ताकि आप युद्धभूमि में मेरे उस मुख का स्मरण रखें, सीता के मुख को नहीं। यदि आप युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त होते हैं तो मेरा रूप ऐसा हो जाएगा, जो अभी आप देख रहे हैं। मैं ऐसी ही दिखूँगी। आप नयन भरकर देख ले मुझे। ऐसा रूप आप नहीं देख पाएंगे।”

स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक समस्याओं से पता चलता है इन समस्याओं की वजह से औरतें पूर्णतः विकसित नहीं हो पाईं। विकास में औरतों के पिछड़ने तथा आज भी इन्हे अवसर न देने के पीछे पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता मानी जाती है। इसलिए नारी-उत्थान उपाय ढूँढ रहे स्वर, पुरुष विरोधी सुनाई पड़ते हैं। सच्चाई ये है कि दोनों का अपना अस्तित्व है। स्त्रियाँ मर्दों के बराबर नहीं, उनसे विषेण हैं, बढकर हैं।

मृदुला सिन्हा भारतीय जीवन पद्धति और संस्कारों को वहन करती हैं। वे नारी को बेचारगी के लफजों में जकड़ नहीं देखना चाहती। तत्कालीन समाज में बहुत सारी समस्याएँ हैं जो प्राचीन भारत में भी मौजूद थी। लेखिका आधुनिक युग की समस्या का हल पारंपरिक संदर्भ में ही ढूँढती हैं। वे परंपरा की नींव पर आधुनिकता की दीवार खड़ी कर समाज रूपी भवन का निर्माण करना चाहती हैं। वे पुरुष के झुठे अहं तले दब कर रहना पसंद नहीं करती। वे पुरुष की कमजोरियों को उजागर करती हैं। उनका कहना है कि स्त्रियों को शोषण से मुक्ति पाने के लिए, अपने अधिकारों के लिए खुद को सशक्त बनाना होगा। उसे संघर्षरत रहकर अपने वजूद की खोज करनी होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मृदुला सिन्हा : ज्यों मेंहदी को रंग (उपन्यास) प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली-2016
2. मृदुला सिन्हा : घरवास (उपन्यास) प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली-1992
3. मृदुला सिन्हा : अतिशय (उपन्यास) प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली-2016
4. मृदुला सिन्हा : विजयिनी (उपन्यास) भारतीय पुस्तक परिषद्, नई दिल्ली-2016
5. मृदुला सिन्हा : सीता पुनि बोली (उपन्यास) विद्या विहार, नई दिल्ली-2016
6. मृदुला सिन्हा : परितप्त लंकेश्वरी (उपन्यास) प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली-2019
7. महादेवी वर्मा : श्रृंखला की कडियाँ, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1999
8. प्रभा खेतान स्त्री उपेक्षिता, हिन्दी पॉकेट बुक, नई दिल्ली 2008
9. रामधारी सिंह दिनकर : रश्मिथी, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज 2021



बेनीपुरी के निबन्धों में नारी-विमर्श

-मीनू पारीक

शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, राजस्थान।

शोध पत्र :-

रामवृक्ष बेनीपुरी कलम के जादूगर महान स्वतन्त्रता सेनानी, बहुमुखी प्रतिभा के धनी पत्रकार थे। जिन्होंने अनेक विद्याओं पर अपनी लेखनी चलाई जिनमें निबंध, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, कहानी, उपन्यास जीवनी इत्यादि हैं।

इनकी रचनाओं में किसान, मजदूर, स्त्री, बालक, प्रकृति, ग्रामीण वातावरण और सामाजिक वातावरण के साथ मानवता के बहुरंगी आयाम विद्यमान हैं। जहाँ मैथिलीशरण गुप्त ने इनकी लेखनी को 'जादू की घड़ी' कहा है। वहीं दिनकर बेनीपुरी जी के विषय में कहते हैं -

बेनीपुरी मेरे साहित्यिक जीवन के निर्माता थे। मैं उनसे कभी उन्नत नहीं हो सकता। नाम का 'दिनकर' में था, असली सूर्य बेनीपुरी थे। बेनीपुरी नहीं होते तो दिनकर भी नहीं होता।' प्रसिद्ध कवियों की यह उक्तियाँ बेनीपुरी जी को सफल व सहृदय कवि सिद्ध करती हैं।

स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही, इन्होंने अपनी महत्वपूर्ण रचनाएँ जेल में ही लिखी इन पर गाँधीवादी प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इन्होंने राजनीति में सक्रिय होने के साथ-साथ एक समाज सुधारक की भूमिका का निर्वाह भी उचित प्रकार से किया।

बेनीपुरी जी ने 35 से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में संपादन अथवा लेखक के रूप में योगदान दिया, और अपनी लेखनी से जन जागृति फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। सामाजिक रूढ़ियों व गलत राजनीतिक कार्यों का विरोध करने के कारण उन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा।

बेनीपुरी जी के साहित्य की ओर देखते हैं तो उनका साहित्य भारतीय समाजवाद की विशुद्ध कसौटी के रूप में दिखाई देता है। रामवृक्ष बेनीपुरी जी आजादी के पश्चात भी बिहार में सामाजिक आन्दोलनों के जनक रहें। इनके साहित्य में समाजवाद को सच्चा स्वरूप देखने को मिलता है। समाजवाद की परिभाषा में स्पष्ट किया गया है कि जाति, धर्म, वर्ण, लिंग आदि समस्त भेदों के स्वरूप से उठकर मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का हिमायती है। लिंग भेद के प्रति निराशा पुरुषवादी समाज का काला पहलू दिखाता है।

भारतीय समाज प्रारम्भ से ही पितृसत्तात्मक समाज रहा है समाज की पुरुष सत्ता होने के कारण सामान्य नारी को ही नहीं अपितु शिक्षित व प्रगतिशील नारी को भी पुरुष की सत्ता स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

प्राचीन काल से आज तक के साहित्य, संस्कृति और समाज की नारी संबंधी धारणाएँ पुरुष मानसिकता और दृष्टिकोण से प्रभावित रही हैं, किन्तु नारी मुक्ति आन्दोलन और स्वतन्त्रता आन्दोलन में भारतीय नारियों की अग्रिम भूमिका से साहित्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई देने लगा। हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श और

नारी मुक्ति को केन्द्र में रखकर बहुत कुछ लिखा गया। साहित्य में 'नारी विमर्श' के अन्तर्गत स्त्री के विषय में स्त्री द्वारा लिखा गया साहित्य ही 'साहित्यिक' नारी-विमर्श माना जाता रहा है और इसके पीछे अनुभव भी प्रमाणिकता को ठोस तर्क रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है।

महादेवी वर्मा ने भी कहा "पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है और नारी के लिए अनुभव अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र हम दे सकेंगे, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सकें।

1997 में इंडिया टुडे की साहित्यिक वार्षिकी में स्त्री लेखन पर स्त्रियों के एकाधिकार पर काफी बहस हुई और ध्यातव्य है कि इस बहस में पुरुषों की भागीदारी नहीं थी, तत्पश्चात् यह स्वीकृत हुआ कि लेखन, लेखन होता है, नर या मादा नहीं उसे बांटकर देखने वाली दृष्टि पूर्वाग्रह से ग्रस्त है।"

रामवृक्ष बेनीपुरी ने 1949 में प्रकाशित 'नई नारी' पुस्तक के अन्तर्गत इतिहास और पुराणों में वर्णित स्वाधीनचेता भारतीय नारियों के चरित्र की व्याख्या द्वारा नैतिकता के पुराने मानदंडों को चुनौती देकर नारियों के प्रति अपने दृष्टिकोण की व्याख्या की तथा नारी विमर्श के जरिए नारी स्वतन्त्रता के यज्ञ में अपनी आहुति दी।

रामवृक्ष बेनीपुरी ने सन् 1945 में नारी चिंतन का प्रगतिशील दस्तावेज नई नारी नामक निबन्ध-संग्रह की रचना की। जहाँ हम रामवृक्ष बेनीपुरी के साहित्य को देखते हैं तो हमें विदित होता है कि इनके निबन्ध स्त्रीवादी दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। जहाँ नारी के प्रति इनकी प्रगतिशील धारणा व नई नारी के माध्यम से आधुनिक नारी की झलक दिखाने का प्रयास किया है।

बेनीपुरी जी ने अपने निबन्धों में इतिहास और पुराणों के स्वाधीनचेत भारतीय स्त्रियों के चरित्रों की व्याख्या द्वारा नैतिकता के पुराने मानदंडों को चुनौती दी है तथा उनका विश्लेषण करते हुए तथाकथित-आदर्शों को नये दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रेरित करते हैं। इनके नारी सम्बन्धी निबन्ध संग्रह 'नई नारी' में स्त्री पराधीनता के चित्रण के साथ उसकी समस्या तथा निवारण पर भी विचार किया गया है। नारी की दशा के साथ उसकी दिशा की ओर संकेत किया गया है कि नारी अब चार दिवारों में कैद मर्यादाओं के बंधन में बंधी को कोमलता नहीं। वह अब विधुतलता बन गई है जो शक्ति का केन्द्र और प्रकाश पुंज बनी आसमान में जगमग कर रही है। 'ब्रह्म समाज' ने नारी को शिक्षा दिलाने के लिए आन्दोलन किया। गांधीजी ने 1913 ई. में सर्वप्रथम दक्षिणी अफ्रीका में स्त्रियों को सार्वजनिक प्रदर्शनों में उतारा था तथा 1921 ई. में हजारों स्त्रियों ने बम्बई में जो प्रदर्शन किया उस वीरांगना रूप से सभी दंग रह गये।

बेनीपुरी जी ने 'नई नारी' संग्रह में नारी विषयक जो मान्यताएँ स्थापित की थी उसके 72 साल बाद भी नारी शोषितों की श्रेणी में ही गिनी जाती है। गुलामी की जंजीरों से मुक्ति पाने के लिए गलत राहों में भटक रही है। जो नारी स्वयं को किसी के अधीन नहीं रखती। वह भ्रष्टा, पतिता, कलंकिनी कहलाती है और जो चारदिवारों में कैद है वह सती, साध्वी कही जाती है फिर भी स्वतन्त्रता कहीं नहीं। बेनीपुरी कहते हैं "आप स्त्रियों को समानाधिकार दीजिए, फिर यह समस्या आज से आप हल हो जायेगी, बाबा तुलसीदास के सतीत्व की कल्पना जब तक आपके दिमाग में है तब तक स्त्रियाँ वेश्या बनेंगी ही।"

हमेशा स्त्रियों को पुराणों की स्त्री चरित्रों का अनुकरण करने को कहा जाता है परन्तु कोई द्रौपदी का अनुकरण करने को क्यों नहीं कहता, जो जोर जबर्दस्ती पाँच पाण्डवों के साथ बांध दी है, परन्तु इससे वह विचलित नहीं हुई, भाग्य को ललकारकर पाँचों पाण्डवों को एक ही रस्सी में नाथकर जिन्दगी भर नचाती रही। अतः बेनीपुरी जी ने कहा है -

"एक की जिन्दगी एक पर निर्भर रहकर रोते कटी (सीता), दूसरी ने अपनी जिन्दगी को पाँच पर न्यौछावर कर मौज उड़ाती रही (द्रौपदी)।"

कुन्ती, द्रौपदी, अहिल्या, मंदोदरी, तारा यह पांच हमारी भारतीय पुराणों के अनुसार सती मानी जाती है - जिनके चरित्रों के धब्बे आधुनिक दृष्टि से देखने पर धोए जा सकते हैं, न छिपाए जा सकते हैं। क्या उस समय सतीत्व का कोई मूल्य नहीं था? या सतीत्व की कोई दूसरी ही परिभाषा थी? शायद सवाल यह न था कि आप किस के साथ क्या करती हैं, पर सवाल यह था कि आप क्या हैं और संसार को, मानवता को आपने क्या दान दिया है?

इन सतियों के वीर पुत्रों ने अपनी वीरता, पराक्रम और महानता के रंग से अपनी माताओं के चरित्र के धब्बे को ढक दिया, जैसे शरीर पर हुए घाव को वस्त्र से ढक दिया जाता है। हमारे इतिहास की और एक आदर्श चरित्र है शकुन्तला। जिसके पुत्र 'भरत' के नाम पर हमारे देश का नाम 'भारत' रखा गया है। क्या आज के आधुनिक समाज में जहाँ स्त्री जन्म एक पाप माना जाता है कोई कण्व जैसा पिता मिल सकता है? जो नदी के तट पर पायी गई एक शिशु 'कन्या' को अपनी पुत्री समान पालन-पोषण करे तथा विवाह से पूर्व उसकी गर्भावस्था की बात जान उसे सानन्द स्वीकार करें? अच्छा हुआ उनका जन्म इस आधुनिक समाज में नहीं हुआ। नहीं तो किसी को आत्महत्या करनी पड़ती तो किसी के माथे कुलटा, चरित्रहीन, पतिता का धब्बा लग जाता। यह पुरुष प्रधान समाज है जो नियमों-कायदों को पुरुषों की जरूरत के अनुसार बदलता रहता है।

आज अपने हक की लड़ाई के लिए उन्हें अपने-अपने सामने देखा कोई उन्हें बददिमाग, पागल कहे तो कहे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि आजादी के दीवानों को भी लोग पागल ही कहते थे। धैर्य की बांध अब टूट चुकी है, सांत्वना से अब कुछ नहीं होने वाला, झूठे वादे और भरोसे पर अब इन्हें विश्वास नहीं रहा। मांगने से मिलने वाली यह स्वाधीनता नहीं। न भारत को मिली थी न स्त्रियों को मिलने वाली है। लड़ना होगा-पुरानी मान्यताओं से झगड़ना होगा-स्त्री विरोधी ताकतों से, कुर्बानियाँ देनी होगी अपने उस भोलेपन की, जिसको सब स्त्रियों की कमजोरी समझ बैठे हैं। औरत को प्रेम की मूरत माना जाता है इसलिए पुरुषों का कहना है कि औरत अपना अधिकार प्रतिरोध कर के नहीं बल्कि प्रेम से पा सकती है। जिन इतिहास ग्रन्थों मिथकों को आधार मानकर वे यह कहते हैं, उसी इतिहास में हम यह भी देखते हैं कि प्रेम संवेदना, सद्भाव से किसको कितना अधिकार मिला। क्या सीता ने कभी विद्रोह किया? राधा ने कभी अपने अधिकार की बात की? अपने त्याग और बलिदान के बदले सीता को जो वनवास अपमान दुःखः, लांछन मिला उसे कौन स्त्री पाना चाहेगी। एकनिष्ठ प्रेम का परिणाम हम 'रामायण' में सीता, उर्मिला का, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निपुणिका का 'सेवासदन' में सुमन का, 'गुनाहों के देवता' में सुधा का, 'अम्बपाली' नाटक में मधुलिका का देख चुके हैं। प्राचीन काल में धर्म के ठेकेदारों ने स्त्रियों को घूँघट में रखने का रिवाज बनाया और आधुनिक काल में पूंजीपतियों ने उन्हें अपने व्यवसाय का माध्यम बनाया। जिसे दूध पिलाया वह जहर का घूँट दे रहा है, वह कृतघ्न बन गया है तो तुम्हें भी कठोर बनना होगा। अब कोई इन्हें मजबूर नहीं कर सकता घड़ी की जगह चुड़ियाँ पहनने को, यह उनकी पसन्द पर छोड़ देना चाहिए। समाज की इन परिस्थितियों को देख ही बांग्लादेश की नारीवादी लेखिका तसलीमा नसरीन कहती हैं। "जिस राष्ट्र में नारी पुरुष के लिए समानाधिकार स्वीकृत न हो, उस राष्ट्र को 'गणतंत्र' कैसे कहें?"

आज भी नारी सामाजिक शोषण की प्रतीक है। नारी के प्रति होने वाले अत्याचार को केवल बाहरी रूप बदलता दिखाई पड़ रहा है, उसके पीछे निहित कई मूलभूत कारण और मानसिकता वैसी ही बनी हुई है। यह मान लिया जाता है कि बहुत से क्षेत्र में औरत, पुरुष की तुलना में मानसिक और शारीरिक दोनों तरह कमजोर है। इसी कारण से जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है। संघर्ष और समझौता एक औरत के जीवन से इस तरह जुड़ गया है जैसे रात के साथ अंधकार। खाने में पहनने में पढ़ाई-लिखाई में, घूमने-फिरने में, प्रेम में जीवन के हर क्षेत्र में उसे समझौता ही करना पड़ता है। सीमोन द वोउवार ने कहा भी है कि "नारी पैदा नहीं

होती बना दी जाती हैं।”

स्त्रियों की पराधीनता का एक बड़ा कारण यह है कि उन्हें उनके श्रम का मूल्य नहीं मिलता। महादेवी वर्मा ने ‘श्रृंखला की कड़ियाँ’ में विस्तार से इसकी चर्चा की है और स्त्री-श्रम की महता को स्त्री-स्वतन्त्रता से जोड़कर देखा है। समाज में नारी को आदर्श का रूप तो बना दिया गया - तुम सती, सत्य, त्याग, प्रेम सदभाव, संवेदना आदि की मूरत हो परन्तु उनके अधिकार की बात कभी नहीं की गई। ‘स्त्री विमर्श’ ने स्त्री को वस्तु से व्यक्ति बनाया’ में रमणिका गुप्ता ने लिखा है कि “पुरुष सता के षडयन्त्र के तहत ऐसे वक्तव्य, टिप्पणियाँ आदि दिये जाते रहे हैं, ताकि स्त्री में इतनी हीनता बोध पैदा हो जाये कि खुद को अपराधी, पापी, अपवित्र, धरती का बोझ व अवाञ्छित वस्तु मानने लगे, अपने पर तरस खाये और समर्पित हो जाये और अधिकारों की बात भूल जाये।” औरत को गृहलक्ष्मी तो बना दिया गया परन्तु घर में उसकी स्थिति नौकरानी से भी बदतर बनी रही। अनेक ऐसी औरतें हैं जो बेरोजगारी के कारण वेश्यावृत्ति को विवश होती हैं। धार्मिक ग्रंथों में स्त्री का एकमात्र धरोहर सतीत्व को बताया गया है उसी को वे खुलेआम बेचती हैं। अगर उन्हें अपना सामाजिक-आर्थिक अधिकार मिलता तो उन्हें इस तरह अपना शरीर न बेचना पड़ता। घर हो या बाहर उन्हें अपने सतीत्व के लिए अनवरत संघर्ष करना पड़ता है। हमेशा उनके मन में सतीत्व रक्षा का डर रहता है। ‘हरकीत’ के शब्दों में -

“इज्जत के नेजे पर/दाग दिया जाता है कभी.....

कभी किसी कोठे से निकलती है चीख मेरी

कभी बीच सड़क पर/मसल दिये जाते हैं मेरे अरमान

तुम पुरुष हो... ? /या हो हैवान.... ?”

स्त्री के पुरुष के समान बनने की प्रक्रिया में सबसे बड़ी बाधा धर्म और जाति ने खड़ी की है। सारे पूजा-पाठ, रीति-रिवाज बंधन, मर्यादा स्त्री के माथे ही थोपा जाता है।

स्त्रियों को यह कहा गया है कि - हमारे धार्मिक-ग्रन्थों में जो आदर्श दिये गये हैं उनका पालन करना ही स्त्रियों का परम कर्तव्य है। हम तुलसी बाबा को कैसे भूल सकते हैं, जहाँ वे एक तरफ सीता को त्याग और बलिदान की देवी बना देते हैं तो दूसरी ओर कहते हैं - ‘ढोल गंवार, शूद्र पशु नारी’ ये सब ताडन के अधिकारी।” इस दोहरे व्यक्तित्व का एक चित्र हम राम में भी देख पाते हैं। रावण का वध करने का कारण, राम का सीता के प्रति प्रेम नहीं बल्कि अपनी वंश-मर्यादा की रक्षा की। अगर प्रेम होता तो एक गर्भवती स्त्री को जंगल में यूँ भटकना न पड़ता और न ही अन्त में धरती माँ का आश्रय लेना पड़ता। परपुरुष द्वारा स्पर्श की गई नारी आदर्श पुरुष कैसे स्वीकार करें।

अब तक स्त्रियों को वहीं मिला जो पुरुषों ने अपनी इच्छा से देना चाहा। इस स्थिति में पुरुष दाता के रूप में स्त्री गृहीता के रूप में हमारे सामने आई। इसका प्रमुख कारण है। औरत के पास अपने आपको संगठित करने के ठोस साधनों का अभाव।

यदि कानून औरत को बराबरी को अधिकार दे भी तो समाज, धर्म परम्परा और लोक-व्यवहार उसके आदि आड़े आ जाते हैं। “संस्कृति” मनुष्य के कल्याण के लिए है। जो संस्कृति-मनुष्य के कल्याण को आघात पहुंचाये या तो उस संस्कृति में आमूल परिवर्तन लाया जाए या उसके कूड़े के ढेर में फेंक दिया जाये।”

स्त्री के बिना परिवार और समाज दोनों अधुरा है, फिर भी समाज में इनकी स्थिति दयनीय है। समाज और माता-पिता द्वारा स्त्री को शुरू से आत्मदान की ही शिक्षा दी गई है। स्त्री और पुरुष के बीच कुछ मौलिक आधारभूत भेद स्वाभाविक है परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि उसे नीच पतिता और भोग्या समझा जाए। स्त्री को हमारे साहित्य ने पुरुष से स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में देखा ही नहीं, जबकि ये साहित्यकार सामाजिक आचरण

में सदाचार और प्रेम का सदेश देते हैं। स्त्री-पुरुष के लिए समाज ने अलग-अलग प्रतिमान निर्धारित कर रखे हैं। आज भी समाज में बेटे-बेटियों में फर्क किया जाता है।

इसलिए रामदरश मिश्र की कहानी - 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी समाज से प्रश्न करती है कि - "क्या स्त्रियों को कोई दूसरा ईश्वर पैदा करता है या यहाँ स्त्री-पुरुष के लिए दो नियम हैं" ?

इसी प्रकार बेनीपुरी जी ने भी अपने लेखों में लिखा है कि पतिव्रता होना स्त्रियों के सामाजिक और पारिवारिक सम्मान की अनिवार्य शर्त है, चाहे पति कैसा भी हो। तुलसीदास जी ने लिखा है -

‘वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना/अन्ध बहिर क्रोधी अतिहीना।

ऐसे हूँ पतिर किए अपमाना/ नारी पाव जमपुर दुःख नाना।’

इसलिए समझना कठिन नहीं है कि पति के लिए ऐसा कोई वक्तव्य हमारे मिथकों में क्यों नहीं है? पति जब चाहे पत्नी को छोड़ सकता है, परन्तु पत्नियों को यह छूट नहीं दी जाती। चाहे पुरुष विवाह से पूर्व किसी से शारीरिक संबंध रखे परन्तु पत्नी कुमारी सती ही होनी चाहिए। रिश्तों में ईमानदारी दोनों तरफ से होनी चाहिए, यदि पतिव्रता स्त्री समाज में सम्मान के योग्य हो सकती है तो पति के भी पत्नीव्रती होने पर जोर दिया जाना चाहिए। तमाम यातनाओं और अत्याचारों को सहती हुई भी पत्नियाँ अपने पति को छोड़कर नहीं जाती। इसका यह मतलब नहीं कि वे अपने पतियों से प्रेम करती हैं, इसका मूल कारण यह है कि घर में तो उसका शारीरिक शोषण करने वाला सिर्फ उसका पति ही रहता है परन्तु बाहर न जाने कितने ऐसे जानवर हैं जो अपनी भूख मिटाने के लिए आँखे बिछाए बैठे हैं। कितने पाकिस्तान में कमलेश्वर कहते हैं -

“बंद कमरों में सांसे घुट सी जाती हैं। दरवाजा खोलता हूँ तो जहरीली हवा आती है।”

अगर समाज और के प्रति अपनी सभ्य और सम्मान दृष्टि रखता तो क्या किसी औरत को चारदिवारों के बीच घुट-घुटकर जीना पड़ता? जेल के जंजीरों से तो एक समय के बाद छुटकारा मिल जाता है परन्तु इन जंजीरों से तो.....। बहुत से सरकारी कानूनों के कारण समाज में स्त्री पुरुष की समानता स्थापित हो जाने की बात करने वाले लोगों को यह भी विचार करना चाहिए कि -

- एक सधवा और विधवा में जो फर्क किया जाता है, वह पुरुष के क्षेत्र में क्यों नहीं हैं?
- बेटे के अर्न्तजातीय विवाह को तो फिर भी स्वीकृति मिल जाती है पर बेटे को हमेशा के लिए अपने संबंधों को छोड़ना पड़ता है।
- आज भी कन्या जन्म एक पाप क्यों माना जाता है?
- वेश्यावृत्ति दिन ब दिन बढ़ती क्यों जा रही है?

अगर कोई औरत विवाह से पूर्व गर्भवती होती है तो समाज की नज़रों में वह कुलटा, पतिता और चरित्रहीन कहलाती है। पूरा समाज उस लड़की को दोषी मानता है, क्या इस अपराध की वह अकेली जिम्मेदार हैं, क्या उस पुरुष का कोई दोष नहीं? इस कर्म के तो दोनों ही सहभागी हैं, फिर सजा एक को क्यों? यही हमारे पुरुष प्रधान समाज की 'समान' दृष्टि है। इसलिए शब्दकोश में पत्नीव्रता शब्द नहीं, अर्धांगिनी, सती का कोई पुलिग नहीं। इस स्त्री-पुरुष के पक्षपात को सहते-सहते आज भी नारी इतना थक गई है कि उसका मन विद्रोह से भर उठा है।

बेनीपुरी जी के निबन्धों के अध्ययन करने के उपरान्त कुछ लोग यह मानते हैं कि वह पुरुषों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर है। लेकिन उनके निबन्ध विद्रोह का स्वर तो है, किन्तु वह पुरुष को विरुद्ध नहीं उस व्यवस्था के विरुद्ध है जो पुरुषों के द्वारा बनाई गई है, अपनी सुविधा के अनुसार। स्त्री उस व्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहती है।

जो स्त्री के अस्तित्व को सीमित दायरों में बद्ध करती है। वह व्यवस्था पितृसत्तात्मक व्यवस्था है और

दुर्भाग्यवश पुरुष इस व्यवस्था का प्रतिनिधि है। औरत सर्वप्रथम अपना मानव होने का अधिकार मांगती है।

अतः बेनीपुरी जी ने अपने निबन्ध-लेखों में समाज में नारी की स्थिति, प्रगतिशीलता, उसकी समस्याओं का विवेचन किया है और नारी के विद्रोही स्वरूप का दर्शन करवाया है। साथ ही उसके अधिकारों का प्रबल समर्थन किया है।

सन्दर्भ :-

1. पूर्वोक्त रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र : एक अध्ययन डॉ. रश्मि चतुर्वेदी, पृ.सं.- 60
2. इंडिया टूडे, साहित्यिक वार्षिकी-1997
3. बेनीपुरी ग्रन्थावली, सुरेश शर्मा, भाग-3, पृ.सं.- 83
4. बेनीपुरी ग्रन्थावली, सुरेश शर्मा, भाग-3, पृ.सं.- 70
5. बेनीपुरी ग्रन्थावली, सुरेश शर्मा, भाग-3, पृ.सं.- 73
6. औरत का कोई देश नहीं होता - तसलीमा नमरीन, पृ.सं.-16
7. पंचशील शोध समीक्षा हेतु भारद्वाज, 2012, अंक-14
8. पंचशील शोध समीक्षा हेतु भारद्वाज-2012, अंक-14



मृदला सिन्हा की कहानियों में स्त्री-संघर्ष

- कुमारी पंकजा

शोध छात्र पी.एच.डी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़।

आज हिन्दी साहित्य में स्त्री संघर्ष और स्त्री विमर्श का बोलबाला है। विश्व में महिलाओं की स्थिति बदल रही है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। इन स्थिति के साथ ही बदल रही है स्त्री विमर्श की विचारधारा और चिंतन। स्त्री संघर्ष का अर्थ स्त्री संबंधी समस्याओं से संघर्ष करना है, बातचीत, विचार एवं चिंतन-मनन करना है। स्त्री विमर्श एक वैश्विक विचारधारा है लेकिन विश्वभर की स्त्रियों का संघर्ष उनके अपने-अपने समाज सापेक्ष है। इस संदर्भ में स्त्री संघर्ष और स्त्री विमर्श दोनों को थोड़ा अलग करके देखने की जरूरत है, हाँलाकि इन दोनों का संबंध अन्योन्याश्रित है।

हिन्दी साहित्य जगत् में स्त्री संघर्ष की दो विचारधारा विद्यमान हैं- एक भारतीय परंपरा का निर्वहन करती हैं तो दूसरी पश्चिमी परंपरा का। भारतीय परंपरा और चिंतन की विचारधारा पर लेखनी चलानेवाली लेखिकाओं में मृदुला सिन्हा, ऋता शुक्ल, विद्या बिन्दु, नीरजा माधव आदि विचारकों का नाम अग्रगण्य है।

लेखिका मृदुला सिन्हा भारतीय परंपरा की लोकधर्मी साहित्यकार हैं। उनका जन्म बिहार में हुआ एवं वहीं पली बड़ी। उनके परिवेश का अनुभव उनकी कहानियों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने ग्राम्य एवं लोक-जीवन के पात्रों को ही अपनी कहानियों का मुख्य विषय बनाया है। उन्होंने अपनी कहानियों में घरेलू महिलाएं- लाजों, रामायणी, काकी (मैना), पार्वती, शीशा फुआ, मुसाफिर काकी आदि पात्रों के माध्यम से स्त्रियों में संबलता का शंखनाद फूँका है। उनकी कहानियों की महिला पात्राएं अपने को दीन-हीन मानकर रोती गिड़गिड़ाती नहीं दिखती। वे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करती हुई प्रतिष्ठा के उच्च पद आसीन होती दिखती हैं। वे भारतीय संस्कृति की रक्षिका के रूप में उभरती हुई प्रतीत होती हैं, तभी तो इनकी कहानियों में हिंसा, कामुकता, अश्लीलता आदि दोषों को कम ही दर्शाया गया है। वे स्त्री संघर्ष के लिए मातृत्व, प्रेम, दया, स्वाभिमान, आर्थिक निर्भरता आदि विषयों को आधार स्तंभ बनाती हैं।

इन्होंने गाँव, गरीबी की कहानियां लिखी हैं तो राजघरानों की भी। उनकी कहानी की पात्रा रधिया है तो रजियां भी। किसी व्यक्ति या परिवार की सच्ची कहानी लिखने पर भी उन्हें कोई ऐतराज नहीं हुआ। उनकी कहानी पढकर अधिकांश लोगों की प्रतिक्रिया रही- “कहां तक बैठकर भाव निकाल लेती हैं? लेखिका जवाब होता है- “दरअसल अपने साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक दायित्वों के निर्वहन में, मैं देशभर में चालीस वर्षों से घूमती रही हूँ- कथा चयन में मधुमक्खी की भूमिका में। समाज के अच्छे स्वास्थ्य के लिए मधु निर्माण हेतु समाज की विभिन्न क्यारियों से ही पराग संचय करती हुई।”

आज महिलाओं में जागरूकता आ रही है। महिला-जीवन के प्रति लोगों की सोच बदल रही है, लेकिन सच्चाई तो यही है कि बदलती सोच के बावजूद उनकी स्थिति में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी वे अपनी जिंदगी से समझौता करने के लिए विवश हैं। पुरुष सत्ता की नींव को तोड़ना या बदला इतना आसान नहीं है। जीवन

के हर क्षेत्र में महिलाएं अपनी-अपनी लड़ाईयाँ लड़ रही हैं फिर भी उन्हें वो अधिकार प्राप्त नहीं हो पा रहा जिसकी वो हकदार हैं।

समाज के दो पहलू 'स्त्री' और 'पुरुष' दोनों को एक दूसरे का पूरक माना गया है। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। इसके बावजूद समाज ने महिला को समानता के अधिकार से वंचित रखा पितृसत्तात्मक व्यवस्था निश्चय ही इस स्थिति का आधार रहा है लेकिन आज स्त्री संघर्ष के आवाहन ने हजारों वर्ष से चले आ रहे पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सिद्धांतों और प्रतिमानों को चुनौती दी है।

आज हमारे समाज में पारिवारिक विघटन ज्यादा हो रहा है। पति-पत्नी के मधुर संबंध में खटास पैदा होती जा रही है। तलाक जैसे शब्दों की चर्चा खुले आम हो रही है। ऐसी स्थितियां परिवार या समाज के लिए अहितकर हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों में मृदुला जी परिवार व्यवस्था की कड़ियों को मजबूती प्रदान करने की बात करती हैं। कहानी विलमता विलगाव की नायिका विशाखा पति के उदासीन व्यवहार के कारण उससे तलाक लेना चाहती है लेकिन बाद में परिस्थितिवश वह इस प्रस्ताव को वापस ले लेती है। लेखिका कहना चाहती है कि तलाक की स्थिति तभी आनी चाहिए जब स्थिति असहनीय हो जाएं।

वे बेटियों को बेटों जैसा बनने का अर्थ उनसे स्पर्धा करना नहीं मानती। अपनी बेटियों को बेटा जैसा मानने का मतलब है कि उन्हें शिक्षा तथा रोजगार के सारे अवसर बेटों के समान देना एवं उन्हें हीन भावना से ग्रस्त होने से बचाना। इस संदर्भ में उनका विचार महादेवी वर्मा से प्रभावित दिखता है। महादेवी वर्मा के मतानुसार भी- "स्त्रियों द्वारा पुरुषों का अंधाधुंध अनुकरण तभी तक है जब तक वह किसी दुसरे की आकृति को अपने हृदय में प्रतिबिंबित करता रहता है, अन्यथा लोग उसे निरर्थक जानकर फेंक देते हैं।"

मृदुला सिन्हा की कहानियों की महिलाएं चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित सभी महत्वपूर्ण होती हैं। उनके अनुसार घरेलू स्त्रियां परिवार की वो मजबूत कड़ियां होती हैं जिसमें वसुधैव-कुटुम्बकम समाने की ताकत निहित होती है। परिवार को बसाने, सजाने-सँवारने वाली स्त्रियां ही हैं। अतः समाज में उनका सम्मान होना आवश्यक है।

कहानी मातृ ऋण के द्वारा वे भ्रूण-हत्या पर सवाल उठाती हैं। भ्रूण-हत्या को रोकने के लिए माँ को सजग रहने को प्रेरित करती है। इस जघन्य अपराध को रोकने के लिए कानून बने हैं लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। बेटी की माँ को यह विश्वास दिलाना जरूरी है कि उनकी बेटी समाज में सम्मानित एवं सुरक्षित हैं। तभी वे बेटियों की माँ बनने में अपने को गौरवान्वित महसूस करेगी।

मृदुला सिन्हा की रचनाएं मातृत्व की भावनाओं से ओत-प्रोत है। अपनी कहानियों या उपन्यासों में मातृत्व को जितना स्थान उन्होंने दिया है वह अन्यत्र कम ही देखने को मिलता है। इनकी कहानियों में बच्चों की जन्मदात्री, पालनकर्तृ यहां तक की पालनाघर की महिलाएं भी पूज्यनियाँ हैं। बच्चों को अपने मातृत्व से नहलाती एक ऐसी ही माँ की कहानी है- 'सहस्रपूतों वाली'- इस कहानी की नायिका पार्वती देवी परिस्थितिवश कुंवारी रह जाती हैं। लेकिन अविवाहित रहते हुए भी उसका मातृत्व विस्तृत रूप ले लेता है। अस्पताल के जच्चा-बच्चा विभाग में सेवारत रहकर वह सहस्रपूतों की माँ बन जाती हैं। उसके मरणोपरांत जब उसके अंतिम संस्कार करने पर प्रश्न उठाया जाता है तो उसकी सैकड़ों संताने उसकी अर्थी को कंधा देने को तत्पर हो जाती हैं। "सैकड़ों लोग तो यह जानकर ही शवयात्रा में शामिल हो गए कि बिन ब्याहीं स्त्री के भी हजारों बच्चें हैं।" अनुराग जब उसे मुखाग्नि देता है तो उसकी माँ कहती हैं - "ठीक किया बेटा, मैं तो जन्म देने वाली माँ हूँ। प्रथम स्पर्श देने वाली तो वहीं थी।" समाज में दम तोड़ती संवेदना को पुनः जीवंतता प्रदान कर गई थी- पार्वती।

महिलाओं की आर्थिक समस्याओं पर विचार करते हुए वे कहती हैं- "लड़का-लड़की में एक बड़ा फर्क है- लड़की के लिए रोजगार की कोई कमी नहीं रही। बचपन से लड़कियों को कोई न कोई हुनर सिखाने की परंपरा रही

है, इसलिए शादी-ब्याह के समय लड़के की नौकरी देखी जाती है, लड़की की नहीं।”

महिलाएं कामकाजी तो हैं लेकिन उन्हें अपने अधिकार क्षेत्र का ज्ञान नहीं होता, इसलिए वे अभावग्रस्त जीवन बिताने को मजबूर हैं। कहानी ‘परामर्श’ की लक्ष्मी और ‘केकडा का जीवन’ की सीता सुबह से लेकर शाम तक जी तोड़ मेहनत करती हैं और उसके शराबी पति और नालायक बच्चे उसी के पैसों की बदौलत पलते हैं लेकिन उसके बदले में सीता या लक्ष्मी को उनका दुर्व्यवहार ही सहना पड़ता है।

हमारे समाज में लक्ष्मी और सीता जैसी न जाने कितनी बुद्धिमती और कार्यकुशल स्त्रियां अपने पति और बच्चों की अवहेलना और उपेक्षा की शिकार होकर भी उनका भरण-पोषण करती हैं। इन विषम परिस्थितियों से संघर्ष करती महिलाओं में जागृति लाना आवश्यक है। सरकारी एजेंसियां तथा स्वयंसेवी संगठनों की मदद लेकर ऐसे परिवारों एवं पतियों को सबक सिखाया जा सकता है।

समाज में सामान्य महिलाओं की स्थिति जब इतनी विकट है तो असामान्य या विक्षिप्त महिलाओं की समस्या के बारे में सोचना बेमानी ही है। ऐसी महिलाओं की समस्या और भी गहरी है। समाज के दरिन्दे इन महिलाओं को भी नहीं बर्खाते इनके साथ कुकर्म करने से भी वे नहीं चुकते। ये महिलायें अगर गर्भवती हो जाती हैं तो इन्हे संभालना, प्रसव कराना, इनके बच्चों को पालना समाज के लिए बोझ बन जाता है। कहानी ‘पगली कहीं की’ की कस्तूरी, पति और सास की प्रताड़ना और ज्यादतियों के वजह से विक्षिप्त हो जाती हैं। उनके द्वारा बेघर कर दिए जाने पर वह अपना आसरा रेलवे स्टेशन पर दूँढती है, पर वहाँ भी कामलोलुप भेड़िये उसे अपनी हवस का शिकार बना लेते हैं। “कुछ आठ महीने बाद ही एक दिन कस्तूरी का पेट ऊंचा देख राधू का कलेजा धक से रह से रह गया और बुदबुदाया- “आदमी और जानवर में क्या फर्क है? इस पगली को भी नहीं छोड़ा।”

मानसिक रूप से विक्षिप्त लोगों को संभालने में जिम्मेदारी परिवार पर है, पर परिवार अपना पल्ला झाड़ लेता है। फिर सरकार को ही उनकी देखरेख करनी पड़ती है।

जेल में सजा काटकर वापस आई हुई, औरतों के बारे में लेखिका लिखती हैं- “औरतों के लिए बनी दुनिया औरतों के लिए ही परेशानी का घर बन जाती है। कारागार में सजा भुगत चुकी महिलाओं के लिए यह भी एक परेशानी ही है।” इनकी कहानी ‘दस्तक’ की भगवती जेल में सजा काटकर बाहर निकलती हैं। सजा समाप्त होने का दिन नजदीक आने पर उसके चेहरे पर प्रफुल्लता आ जाती है। जेल से बाहर निकलकर उसका प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। पर जेल से बाहर आकर उसे पता चलता है कि उसके लिए समाज में कोई जगह नहीं है। वह जाए तो कहाँ जाए?”

लेखिका कहती हैं- “ऐसी महिलाओं को अपने घर में रखने के लिए दबाव डालने का और यदि किसी ने नहीं रखा तो उसे सजा देने का कोई कानूनी प्रावधान नहीं है। ऐसी महिलाओं की स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। इनके बच्चों और घरवालों में संवेदना जगाना भी आवश्यक है।”

आज समाज में वृद्धाओं की स्थिति सोचनीय है। कई कारणों से बुजुर्गों को अपने परिवार से अलग रहना पड़ता है। उन्हें अपने बच्चों द्वारा उपेक्षित होकर जीना पड़ता है। यूँ तो अकेलापन का शिकार कोई भी हो सकता है। लेकिन समाज में वयोवृद्ध सदस्यों को अकेलापन का दंश ज्यादा दर्द देता है। मृदुला सिन्हा की कहानी ‘अन्तिम इच्छा’ की पार्वती देवी अपने पुत्रों द्वारा उपेक्षित और शोषित होकर वृद्धाश्रम में शरण लेती हैं। जिस माँ ने बेटों के खातिर अपना सर्वस्व लूटा दिया वहीं बेटा माँ की खबर तक नहीं लेता।

‘नजरे जुड़ाने वास्ते’ कहानी की देवकी की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। कहानी ‘उधार का सूरज’ में प्रकाश की माँ की हालत विदेश में अध्ययनरत बेटे के इंतजार में विक्षिप्त-सी हो जाती है। कहानी ‘अपना जीवन’ भी एक अकेली माँ की गहरी पीड़ा को बयां करती है। जिस माँ ने अपने बच्चों के लिए अपना पूरा जीवन लगा दिया, वहीं बच्चा

माँ से कह देता है कि- “माँ हमें अपना जीवन जीने दीजिए, आप अपना जीवन जीएं।”

‘टिफिन बॉक्स’ कहानी की संतोषी जी का दर्द भी इनसे जुदा नहीं है। ‘औरत और चूह’ कहानी की मालती जी चूहे से बहुत डरती थी। अकेलेपन की पीड़ा झेलते हुए वो चूहे के क्षणिक स्पर्श को तरसती हैं। “वह चूहें के पुनरागमन की प्रतीक्षा में थी। उसके स्पर्श की ताजा स्मृति उसे गुदगुदा रही थी। मानव-स्पर्श का भूखा शरीर चूहे के क्षणिक व नन्हें स्पर्श से भी संतुष्ट हो जाता।

माँ-बाप अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए न जाने कितनी कुर्बानियां देते हैं। अपने बच्चों का भविष्य संवारने के लिए उन्हें अपने सपनों को अधूरा छोड़ना पड़ता है। वे अपने बच्चों के अरमानों को पूरा करने हेतु अपने अरमानों का गला घोट लेते हैं। जब वे बच्चे बड़े होकर शहरों, महानगरों एवं विदेशों में कार्यरत हो जाते हैं तो अपनी दुनियां में इस कदर मशगूल हो जाते हैं कि उन्हें अपने माता-पिता का ख्याल भी नहीं आता है। उम्र के जिस दौर में माँ-बाप को बच्चों की सख्त जरूरत होती है, उसी समय वे नितांत अकेले रह जाते हैं।

युवा पीढ़ी को अपनी जिम्मेदारियों का अहसास दिलाना आवश्यक हो गया है। अपने माँ-बाप को वृद्धाश्रम में भेजना कहां तक उचित है? जब माँ-बाप ने उनकी परवरिश के लिए इतना कष्ट झेला, तो उन्हें भी माँ-बाप के लिए थोड़ी जहमत तो उठानी ही चाहिए।

मृदुला सिन्हा की कहानियों के विश्लेषण करने पर यह विदित होता है कि वे एक धीर-गंभीर लेखिका हैं। उनके स्त्री विषयक चिंतन में गहराई है। उनकी कहानियों को पढ़ते हुए-पाठकों को उनकी संवेदना की गहराई का बोध होता है। उनकी कहानियां समाज, समसामयिक परिस्थितियों, समस्याओं, आस्थाओं एवं अनुभवों का दस्तावेज गढ़ती हैं। अपनी कहानियों के माध्यम से उन्होंने नारी समस्या, नारी-चेतना, नारी सशक्तिकरण आदि विषयों पर गहन चिंतन प्रकट किया है। उनकी कहानियों में आद्योपांत स्त्री-संघर्ष के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक परिवेश के गहरे पाठ मिलते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मृदुला सिन्हा : साक्षात्कार - कहानी संग्रह - प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. मृदुला सिन्हा : एक दिये की दिवाली - कहानी संग्रह - प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
3. मृदुला सिन्हा : स्पर्श की तासीर - कहानी संग्रह - किताबघर, नई दिल्ली।
4. मृदुला सिन्हा : जैसे उड़ि जहाज को पंछी - कहानी संग्रह - विद्याधार विहार, नई दिल्ली।
5. मृदुला सिन्हा : ढाई बीघा जमीन - कहानी संग्रह - ज्ञान गंगा, नई दिल्ली।
6. मृदुला सिन्हा : अपना जीवन - कहानी संग्रह - यश प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. मृदुला सिन्हा : अंतिम इच्छा - कहानी संग्रह - यश प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. मृदुला सिन्हा : देखने में छोटन लगै - लघुकथा संग्रह - प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. महादेवी वर्मा : श्रृंखला की कडियां, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली।



जया जादवानी के कथा साहित्य में नारी संवेदना

- कोल्हे मंजूषा संदिपानराव, शोधकर्ता

- प्रो. डा. संदीप श्रीराम पाईकराव, शोध निर्देशक

पीपल्स महाविद्यालय, नांदेड़, महाराष्ट्र।

जया जादवानी ने अपने कथा साहित्य में नारी मन के विभिन्न संवेदनाओं को मुख्य रूप से प्रधानता दी है। एक स्त्री ही नारी संवेदना को अत्यंत सूक्ष्मता से अपने साहित्य में चित्रित कर सकती है। मानवतावादी दृष्टि, व्यवस्था का विरोध, मातृत्व, आत्मनिर्भरता जीवन विषयक नया दृष्टिकोण, परंपरा, कर्मकांड का विरोध पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव, आधुनिक जीवन शैली, शोषण का विरोध आदि नारी जीवन की विभिन्न संवेदनात्मक पहलुओं का जया जादवानी ने अपने कथा साहित्य में हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। जिससे उनके संवेदनशील मन का परिचय मिलता है।

मानवीय संवेदना :-

स्त्री संवेदना को समझने के लिए अपने समय और समाज में स्थित नारी विरोधी भावनाओं को समझना आवश्यक है। क्योंकि अब नारी अपनी रक्षा स्वयं करती हुई और स्वातंत्र्य बंधुत्व की भावना से मानव विकास में योगदान देती हुई दिखाई देती है। भविष्य में मानवतावादी संस्कृति और सभ्यता के निर्माण में जया जादवानी का स्त्री लेखन निश्चित ही महत्वपूर्ण रहेगा। नारी की मानवीय संवेदना में हृदय की उदारता का दर्शन मिलता है। लोक-कल्याण की भावना से जया जादवानी की कहानी 'रूपान्तर' इस में रामकली एक वेश्या है, लेकिन उसका मन एक बच्चे की वजह से रूपांतरित होकर माँ बन जाता है। जो औरत किसी से डरती नहीं, वह दाबेवाला 'छेदी' के बच्चे की माँ बन जाती है। उसके लिए वह पैसा भी लेती है। बच्चा हो जाने के बाद उसे देने का वह कबुल भी करती है। जब बच्चा पैदा होने के बाद इंकार कर देती है और छेदी से कहती है, 'देख छेदी, अगर मैं चाहती तो इसे लेकर रातों-रात भाग सकती थी तू क्या कर लेता? पुलिस को भी किस मुंह से कहता। वह पूछती नहीं तुम से, एक छिनाल रंडी भाग गई, तुझे क्या? पर अब मैं रंडी नहीं हूँ रे माँ बन गई हूँ। तुझ से दगा नहीं करना चाहती, पर इस बच्चे को भी नहीं देना चाहती। तेरी मेहरबानियों से मुझे यह दिन नसीब हुआ है नहीं तो कौन जाने कभी यह दिन आता भी या नहीं? पर अब मुझे बख्श दे 'छेदी' मुझे जीने दे। यह मेरा है। मेरा हक है इस परर्ची जया जादवानी यहाँ पर एक माँ का कैसा हृदय परिवर्तन हो जाता है यही कहना चाहती है।

परिवार के प्रति संवेदना :-

सभ्यता को सजीव बनाए रखने में परिवार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वस्तुतः परिवार मनुष्य की आत्मरक्षा एवं वंश वृद्धि का मूल है। मनुष्य की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं को परिवार में पूरा किया जाता है। ऐसे परिवार के आप-सी रिश्तों का संवहन करने का काम कोमल नारी हृदय करता है। क्योंकि परिवार के प्रति स्त्री की अधिक संवेदनशीलता उसकी स्वभावगत प्रवृत्ति की परिचायक है। जया जादवानी की कथा साहित्य में चित्रित नारियाँ अपने परिवार के लिए खपती रही हैं। लेखिका की कहानी 'फिर फिर लौटेगा' इस कहानी की नायिका 'तनु' जो कि अपना पति 'तरुण' से शादी होने के बाद ही। पति एक-दो साल बाद ही उसे छोड़कर चला जाता है। 'गुरु महाराज' के कहने

पर संन्यास लेता है। तब वह उसके पश्चात उसके बूढ़े माँ बाप को संभालती है और आगे की पढ़ाई पूरी करके नौकरी करती है। उसकी दुकान भी संभालती है। जब उसके पिताजी मर जाते हैं, तब तरुण अग्नि देने के लिए घर आता है। तब उसकी माँ उसके पास जोर-जोर से रोती है और कहती है कि, तुम अपनी जिम्मेदारियों से भाग गया लेकिन, मेरी बहु भागी नहीं। फिर तरुण दुसरे दिन ही जाने के लिए निकलता है। तनु उसे कहती है, 'जानती हूँ तू जाने के लिए आया है। जा मैं तूझे शाप नहीं दूंगी। पर जिस तरह तूने मुझ पर जीवन पर भार डाला है, तुझ पर भी कोई न कोई भार होगा ही। तू मुक्त नहीं हो सकता। मैं तो फिर भी तुझ से कम निर्दयी हूँ। जिस बोझ से तू घबराकर भागा। उसे मैं सहजता से उठाने चली, बोझ तो तेरा था न वह? तू नश्वर इन्सान को अनश्वर बनाने चला और मेरी दुखों को अनश्वर कर गया। नहीं, मैं तेरा पल्ला पकड़कर तूझ से न्याय नहीं मांगूंगी। जो अपने लिए न्याय न कर सका वह मेरे लिए न्याय क्या करेगा। स्त्री कभी अपनी जिम्मेदारियों से भागते नहीं है। लेकिन हताश नहीं होती यही इस कहानी में 'जया' जी ने बताया है।

कामकाजी स्त्री के प्रति संवेदना :-

कामकाजी स्त्री का सीधा संबंध नारी की संवेदनात्मक आत्मनिर्भरता से है वास्तव में आर्थिक स्वालंबन ही नारी का सबसे बड़ा सहारा होता है। यही बनना उसके जीवन की आवश्यकता है। आत्मनिर्भरता से उसकी प्रगति जल्दी संभव हो सकती है। उसमें वैचारिक स्वातंत्र्य निर्णय क्षमता, जैसी विशेषताओं का विकास आत्मनिर्भरता से ही हो सकता है। लेखिका की कहानी 'पलाश का फूल' इस कहानी की 'अपूर्वा' जो कि एक विदुर से शादी करके घर आई थी। उससे उसे तीन बच्चों भी थे। प्रेम की वजह से सब भूलकर उसने उससे शादी की थी। लेकिन उसके घरवाले उसे अपना नहीं सके और वह भी घरवालों के खिलाफ जान हीं सका तब अपूर्वा घर छोड़कर नैनिताल चली जाती हैं। तब उसे रोहित से आर्थिक मदद चाहिए थी। तब वह नहीं दे सका जब वह स्वयं कमाने लगी, तो तब वह सहानुभूति की तौर पर उसे पूछने लगा तब अपूर्वा कहती है कि, 'थैंक्स' अपूर्वा ने बात काट दी उस का समूचे बदन शुनाट कण्क हो गया। यही वह शर्क्स है जिन दिनों स्कूल खोले जाने की प्लानिंग बनाई थी। उसने कहा था, 'सॉरी मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता। वैसे भी 'वूमनलिब' के नारे लगा लेना जितना आसान है। उस पर अमल करना उतना ही मुश्किल। तुम दिखा दो न दुनिया को औरत किस तरह जीती हैं अकेले... बगैर पुरुष की मदद के और यही तो तुम दिखाना भी चाहती हो...' 'उसके स्वर में गुस्सा नहीं था, व्यंग्य भी नहीं था, ललकार थी। चुनौती..जो अपूर्वा ने स्वीकार कर ली थी। उसका जी किया पूछे यह गाहे-बगाहे हमदर्दों का नाटक किस लिए? पर चुप रही।

आज उसे उसके पैसों की जरूरत नहीं हैं। जब थी तब दिया नहीं आज वह अपना स्कूल निकलने का सपना तो पूरा नहीं कर सकी लेकिन, स्कूल के बच्चों की टीव्हेशन्स लेकर अच्छा-खासा कमा रही है और अकेली इलाहाबाद छोड़कर नैनिताल में बस गई है। जया जी इस कहानी के माध्यम से यह कहने की कोशिश करती है की स्त्री अकेली निर्णय ले सकती है और आत्मनिर्भरता से रह सकती है।

शिक्षित स्त्री के प्रति संवेदना :-

शिक्षित नारी की संवेदना का संबंध विचार स्वातंत्र्य समाज के प्रति उसका उदार दृष्टिकोण, नारी की कार्यक्षमता, निर्णय-क्षमता, स्वावलंबन चारित्रिक आशंका दुर्बलता आदि से है। जया जादवानी जी भी ऐसे दिन से गुजर गई है। उनकी भी बड़े परिवार में शादी हो जाती है। छोटी उमर में शादी होने के बाद आगे की पढ़ाई, घरवालों का ध्यान रख के करना बहुत मुश्किल थी। लेकिन ध्यान रखते हुए करना बहुत मुश्किल से की थी। रात के दो-ढाई बजे उठकर अपनी पढ़ाई करती थी उनका ही रूप उन्होंने 'तत्वमसि' उपन्यास की नायिका मानसी के माध्यम से हमारे सामने आया है। वह भी दिन भर घर के काम करके रात में दो-ढाई बजे पढ़ाई करती है। घरवाले उसे कहते हैं कि, बहुए कभी पढती है क्या? बिगड़ जाती है, घर का काम कौन करेगा? तब मानसी 'सुबह चार बजे उठ जाती। दो

घंटे पढ़कर फिर घर के काम में लग जाती। मैं पहले से ज्यादा काम करने लगी। मैं उन्हें यकीन दिलाना चाहती थी, जो वे समझते हैं, ऐसा कुछ नहीं होगा। मुझे अपना जीवन सवारना जरूर है, पर तुम्हारा भी बिगड़ना नहीं है। मेरी खुशी और तुम सबको खुशी दो अलग चीजें नहीं, एक ही है। मैं हर संभव कोशिश करती की उन्हें मेरे पढ़ने से कोई परेशानी ना हो' और वह आगे पढ़कर साइकालॉजी में एम.ए. करती है। बाद में कॉलेज में पढ़ती भी है। जयाजी का दूसरा उपन्यास 'मिठो पानी खारो पानी' इस की 'रूमी' पढ़ी-लिखी लड़की हैं। वह दसवी के बाद आगे पढ़ना चाहती हैं। लेकिन घरवाले आगे पढाना नहीं चाहते और शादी करवाना चाहते हैं उसे लड़का देखने को आता हैं, लेकिन वह शादी के लिए मना करती हैं। तब उसके पिताजी उसे मारते भी हैं। घर में मातम छा जाता हैं। वह किसी की नहीं सुनती और कहती हैं कि, 'मैं अपने पैरों पर खड़ी होने बाद ही शादी करूँगी।' आगे पढ़ती है तो घरवालो को उस पर नाज़ हो जाता है, क्योंकि उसका एक भी भाई पढ़ा लिखा नहीं था और वह पढ़ लिख कर बूढ़े माँ बाप का ध्यान भी रखती है। उसकी माँ अंतिम समय में उसे कहती है कि, 'तुम शादी कर लो तब रूमी कहती है, 'नहीं माँ तुम दोनो के रिश्ते ने मुझे शादी शब्द से बहुत दूर फेक दिया है मुझे नहीं करनी शादी। और अंतिम समय में वही अपनी माँ बाप का ख्याल रखती है। शिक्षा से लड़की भी क्या कुछ नहीं करती बेटे से ज्यादा फर्ज तो पूरे लड़की ही करती है। उसकी माँ स्वयं उसे कहती है कि, 'अब भाग जा, अपने पैरो पर खड़ी हो गयी है न। लेकिन रूमी ऐसा कभी नहीं करती।

जया जादवानी के कथा साहित्य में व्यक्त नारी संवेदना को सीमा में बांधना बड़ा कठिन कार्य है। उसकी परिधि विस्तृत है। उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री कभी कमजोर नहीं होती, बल्कि अपने पैरो पर खड़ी होकर घरवालो को भी संभालती है। यह दिखाया है। जया जी की कथा साहित्य की नारी अपने जिम्मेदारियों से कभी भागी नहीं बल्कि, उसका सामना करती हुयी नज़र आती है।

सन्दर्भ सूची :-

1. रूपान्तर (अन्दर के पाणियों में कोई सपना काँपता है) कहानी संग्रह - जया जादवानी, पृ. संख्या 87
2. फिर फिर लौटेगा (कहानी) - जया जादवानी, पृ. संख्या- 104
3. पलाश का फूल (कहानी) - जया जादवानी, पृ. संख्या-14
4. तत्वमसि (उपन्यास) - जया जादवानी, पृ. संख्या-104
5. मिठो पाणी खारो पाणी - जया जादवानी, पृ. संख्या-190
6. मिठो पाणी खारो पाणी - जया जादवानी, पृ. संख्या-187
7. शिवप्रसाद सिंह ने अपने कथा साहित्य में नारी मन के विभिन्न संवेदनाओं को मुख्य रूप से.... गूगल.कॉम 27 अक्टूबर 2021.



असम के प्रवासी भाषिक समुदाय और हिंदी

—डॉ. जाहिदुल दीवान

पोस्ट डॉक्टरल फेलो, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली-110067

वर्तमान में हिंदी का पर्याप्त प्रचार-प्रसार हो रहा है। अपने देश में संपर्क भाषा के रूप में उभर कर आने वाली हिंदी भाषा विश्व पटल पर भी अपना मान बढ़ाती जा रही है। हिंदी भाषा में इतनी क्षमता तो है कि वह भारत के जनमानस की बोली और साहित्य की भाषा बन सकी। संपर्क भाषा के रूप में भी हिंदी का महत्वपूर्ण योगदान है। इस प्रकार हिंदी पूरी दुनिया के साथ-साथ अपने देश के कोने-कोने तक फैल चुकी है। ऐसे में हिंदी का मूल स्वरूप प्रवासी भाषा जैसी बन गयी है। किसी भी क्षेत्र में जब बाहर से लोग आकर बसते हैं तो स्थानीय लोगों के साथ मिलने जुलने में उनको थोड़ा समय लगता है। एक दूसरे के साथ बात करने के लिये भाषा का आदान-प्रदान होना अनिवार्य है। इस आदान-प्रदान की प्रक्रिया में हिन्दी का महत्व ज्यादा बढ़ा है। इसी संदर्भ में हम 'असम के प्रवासी भाषिक समुदाय और हिंदी' पर विशेष बातचीत कर सकते हैं।

असम पूर्वोत्तर भारत का प्रमुख राज्य है। यह राज्य पूरी तरह मिश्रित संस्कृति का वाहक है। एक तरफ़ इसमें पहाड़ी संस्कृति के लोग रहते हैं तो दूसरी तरफ़ मैदानी संस्कृति की जनसंख्या भी इसमें काफी मात्रा में हैं। जैसे कि हम जानते हैं कि किसी भी जगह की संस्कृति उस जगह से जुड़े सभी तत्वों से मिलकर बनती है। भाषा-समाज, खान-पान, पोशाक-परिधान, उत्पदान पद्धति आदि का योगदान संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण होता है। दूसरी बात, जब किसी स्थान पर रहने वाले लोगों में ऊपर उल्लिखित सभी तत्व एक समान पाए जाते हैं तो वहां एकल संस्कृति विकसित हो सकती है। लेकिन जहां उल्लिखित तत्वों में विभिन्न कारणों से भिन्नता दिखाई देती है वहां मिश्रित संस्कृति जन्म लेती है। असम ऐसे ही मिश्रित संस्कृति का एक राज्य है। इसीलिए पूर्वोत्तर के बाकी राज्यों से असम की संस्कृति काफी भिन्न प्रकार की है।

असम में भाषा एवं संस्कृति को लेकर स्थानीय और प्रवासी की मनोभावना आज भी बहुत प्रबल है। इसी भावना के चलते असम में कई बार बड़े स्तर पर भाषिक आंदोलन भी हुए हैं। पूर्व के उन भाषिक आंदोलनों ने जब-जब राजनैतिक रूप लिया है, तब-तब बड़ी मात्रा में तबाही भी मची है। उन आंदोलनों में असंख्य लोगों ने अपनी जान भी गवायी थी। ऐसे लोगों को असम में 'भाषा शहीद' का दर्जा दिया जाता है। कुछ भाषा शहीदों के नाम सरकारी रिकॉर्ड में भी दर्ज होंगे। असम में भाषा का मुद्दा आज भी पूरी तरह हल नहीं हुआ है। गाहे-बगाहे कुछ लोग गड़े मुर्दे उखाड़ने की तरह इस मुद्दे को भी हवा देते रहते हैं। रंगा-सियार सरीखे छद्म भेषी उन तथाकथित नेताओं को लोगों में विभाजन पैदा करके कई प्रकार के फायदे भी मिलते होंगे।

असम में कितने भाषिक समुदाय के लोग रहते हैं? यह निश्चित रूप से कह पाना मुश्किल है। क्योंकि असम एक ऐसा राज्य है जहां पूरे भारत से लोग आकर बसे हुए हैं। सरसरी तौर पर देखा जाए तो असम में निम्नांकित भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया जाता है- असमिया भाषा, अहोम भाषा, कछारी भाषा, कामरूपी भाषा, कार्बी भाषा, कोच भाषा, चकमा भाषा, ज़ेमे भाषा, डिमाश भाषा, तिवा भाषा, देओरी भाषा, नोक्टे भाषा, बियाटे भाषा, बोड़ो भाषा,

ब्रजावली भाषा, मिसिंग भाषा, म्हार भाषा, राजबोगशी भाषा, वाँचो भाषा, हफ़लौंगी हिन्दी इत्यादि। इसके अतिरिक्त हिंदी भाषा, नेपाली भाषा, बांग्ला भाषा, मारवाड़ी भाषा, बगानिया भाषा, पंजाबी भाषा आदि बोलने वाले भी असम में काफी संख्या में पाए जाते हैं। ऊपर जितनी भी भाषाओं का उल्लेख किया गया है उनसे जुड़ी संस्कृतियां भी असमिया समाज में जीवन्त हैं। समाजभाषा विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो भाषा सम्पर्क, भाषिक आदान, भाषाद्वैत (डायग्लोसिया), द्विभाषिकता एवं बहुभाषिकता, कोड-मिश्रण और कोड-परिवर्तन, भाषिक परिवृत्ति, मातृभाषा अनुरक्षण, जैसी अनेक प्रवृत्तियां असम के भाषिक परि-श्य में दिखाई पड़ती हैं।

आज से कई दशक पहले असमिया भाषा को असम की प्रमुख भाषा बना दी गयी थी। इस निर्णय को लेकर असम के दोनों घाटियों (ब्रह्मपुत्र और बराक) में जोरदार विरोध परिलक्षित हुआ था। सबसे ज्यादा विरोध बांग्ला भाषी लोगों की ओर से हो रहा था। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार असम की कुल जनसंख्या का 28.92 प्रतिशत लोग बांग्ला भाषी हैं, वहीं 48.43 प्रतिशत लोग असमिया भाषी हैं। जब असमिया भाषा को असम की आधिकारिक भाषा बनाने की मांग जोर पकड़ने लगी थी तो बांग्ला भाषी लोगों ने उसका विरोध करते हुए कहा था कि असमिया एक दक्ष भाषा नहीं है, इसीलिए इसे किसी राज्य की प्रमुख भाषा बनाने की मांग बिल्कुल गलत है। साथ ही उन लोगों ने यह भी तर्क दिया था कि बांग्ला एक समृद्ध भाषा है, असमिया भाषा-साहित्य के विकास में बांग्ला भाषा का योगदान अविस्मरणीय है। अतः बांग्ला भाषा को असम की प्रमुख भाषा घोषित किया जाना चाहिए। हालांकि यह मांग असम की जनभावना के खिलाफ थी। इसीलिए इस संघर्ष में बांग्ला के समर्थकों को फलता हासिल नहीं हुई थी। असमिया निश्चित तौर पर असम के सभी तबके के लोगों की प्यारी भाषा है। इस भाषा की उन्नति और सुरक्षा की चिंता करना सभी सच्चे असमिया लोग अपना नैतिक कर्तव्य समझते हैं। भाषा की उन्नति और संघर्ष की इस लड़ाई में असमिया की जीत हुई थी। सन् 1964 में असमिया भाषा को संवैधानिक दर्जा दी गयी है।

वर्तमान असम में हिंदी बोलनेवाले कई समुदाय के लोग हमें मिलेंगे। लेकिन उनमें से कुछ ही समुदाय ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिंदी है। उल्लेखनीय है कि हिंदी में संवाद करनेवाले अधिकांश असमवासी लोगों की मातृभाषा हिंदी नहीं है। असम में रहने वाले जिन लोगों के संवाद की भाषा हिंदी है उनमें सिख, मारवाड़ी और बिहारी समुदाय का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इन समुदायों की मूल भाषा इनके संवाद की भाषा से बहुत अलग है। लेकिन संवाद करते समय वे हिंदी का मानक रूप 'खड़ीबोली' हिंदी में बात करने का प्रयास करते हैं। इसलिए भाषा की दृष्टि से असम के प्रवासी समुदायों के बीच एकरूपता दिखाई देती है, लेकिन वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है। हमने ऊपर जिन तीन समुदाय के संदर्भ में बात की है वे अपनी भाषा-संस्कृति, रहन-सहन, धर्म-दर्शन आदि की दृष्टि से एक दूसरे से काफी अलग हैं। लेकिन भाषागत एकरूपता के आधार पर असम के स्थानीय लोगों ने उन्हें 'हिंदी भाषी' के खांचे में डाल दिया है। इन समुदायों के लोग असमिया भाषा से भी उतना ही प्रेम करते हैं जितने कि वे अपनी मूल मातृभाषा अथवा हिंदी से करते हैं।

हिंदी एक ऐसी भाषा है जो अपने क्षेत्र से निकलकर दूर-दूर तक फैल गयी है। वैसे तो इस भाषा के अंतर्गत 17 बोलिया हैं जिनकी न जाने कितनी ही उपबोलियां मौजूद होंगी! इस दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी सामुहिक भाषा भी कही जा सकती है। हिंदी भाषा की बोलियों का क्षेत्र मुख्य रूप से उत्तर भारत है, यह बात हम सभी जानते हैं, लेकिन अपने क्षेत्र से बाहर हिंदी कहां-कहां फैली हुई है? इस प्रश्न पर भी गंभीरता से विचार करना आवश्यक है। हिंदी भाषा के भौगोलिक विस्तार को लेकर कई विद्वानों ने अब तक महत्वपूर्ण काम किया है। केवल भारत ही नहीं, भारत के बाहर भी हिंदी किस-किस देश में पहुंची है इस पर भी विचार-विमर्श किया जा चुका है। पहले किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि भारत के अंदर दो-प्रकार के क्षेत्र हैं जहां हिंदी बोली जाती है। पहला है- हिंदी भाषी क्षेत्र और दूसरा है- अहिंदी भाषी क्षेत्र। हिंदी बोले जाने का तीसरा क्षेत्र 'विदेश' है।

प्रस्तुत आलेख में हम असम के प्रवासी भाषिक समुदाय और हिंदी पर बात कर रहे हैं। जैसे कि ऊपर भी कहा गया है- भारत में हिंदी के दो-प्रकार के क्षेत्र हैं, हिंदी भाषी क्षेत्र और अहिंदी भाषी क्षेत्र। इस आलेख की मूल विषयवस्तु अहिंदी भाषी क्षेत्र है। यह सर्वविदित है कि अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी गौण भाषा है। उन क्षेत्रों के लोगों की मातृभाषा कोई दूसरी भाषा होती है। जैसे- असम की भाषा असमिया, बंगाल की भाषा बांग्ला, पंजाब की भाषा पंजाबी, गुजरात की भाषा गुजराती, तमिलनाडु की भाषा तमिल इत्यादि। अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी भाषी जनसंख्या 'भाषायी अल्पसंख्यक' है। ऐसा केवल हिंदी भाषियों के साथ ही नहीं बल्कि विश्व के किसी भाषा के लोग अपने भाषिक क्षेत्र से बाहर जाकर 'भाषायी अल्पसंख्यक' बन जाते हैं। उल्लेखनीय है कि एक बहु-भाषिक और बहु-सांस्कृतिक समाज के निर्माण में भाषायी अल्पसंख्यकों की भूमिका सबसे अहम होती है। असम के हिंदी भाषी लोग इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं। उन्होंने असम को समृद्ध बनाने के लिए क्या कुछ नहीं किया!

असम पूर्वोत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण राज्य है। शिक्षा, व्यापार, रोजगार, पर्यटन आदि की दृष्टि से यह राज्य उत्तर-पूर्व भारत का प्रवेशद्वार है। दूसरी तरफ़ यह राज्य अपनी भाषिक अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। असम में मध्यकाल से प्रवासी लोगों के आगमन का प्रमाण मिलता है। हालांकि आस्ट्रिक, मंगोलीयन, द्रविड़ और आर्य जैसी विभिन्न जातियां प्राचीन काल से ही इस प्रदेश की पहाड़ियों और घाटियों में समय-समय पर आकर बसी हैं और यहां की मिश्रित संस्कृति में अपना योगदान दे रही हैं। आज वहीं लोग असम के मूल बाशिंदे माने जाते हैं। मध्यकाल में मुगलों ने असम पर चढ़ाई की थी। उसके बाद औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों के हाथ में असम की सत्ता चली गयी थी। अंग्रेजों के दिनों से ही असम का वर्तमान स्वरूप बनना शुरू हो गया था। कहा जाता है- असम में हिंदी भाषी लोगों का इतिहास दो-सौ साल पुराना है। आज से लगभग दो-सदी पहले ऊपरी असम में सिख लोगों के उपस्थित होने का प्रमाण मिलता है। वहां बना हुआ प्राचीन सिख गुरुद्वारा इसका प्रमाण है। लेकिन इस बात का कोई लिखित सबूत नहीं मिलता है कि सिख लोग किस तारीख को वहां जाकर कब बसे थे? असम में कई जगहों पर सिखों का गुरुद्वारा मौजूद हैं। उनकी जनसंख्या भी ठीक-ठाक हैं। उल्लेखनीय है कि सिखों की भाषा है तो पंजाबी, लेकिन असम में उनकी पहचान हिंदी भाषी समुदाय के रूप में ही है। दरअसल, असम में रहनेवाले हर एक समुदाय के लोगों को हिंदी भाषी कहा जाता है जो वहां के स्थानीय लोगों से हिंदी में बातचीत करते हैं। सरकारी आंकड़ों का माने तो असम में कुल हिंदी भाषा-भाषियों की संख्या 5.88 प्रतिशत हैं जो असमिया (4.8 प्रतिशत) और बांग्ला (27.5 प्रतिशत) के बाद तीसरे स्थान पर है। उल्लेखनीय है कि असम में बोडो भाषी (4.8 प्रतिशत), नेपाली भाषी (2.12 प्रतिशत) तथा अन्य भाषा-भाषी (11.8 प्रतिशत) लोग रहते हैं। अन्य भाषा-भाषी लोगों में असम की छोटी-छोटी जनजातियां आते हैं। जनजातियों का इतिहास असम में सबसे पुराना है लेकिन उचित समय पर उनका विकास न हो पाने के कारण दूसरी जाति के लोगों ने उनके क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया है।

असम के हिंदी भाषी लोगों पर बात करते समय हमें वहां के दूसरे भाषा-भाषी समुदायों पर भी एक नज़र डालना चाहिए जिससे कुछ रोचक तथ्य निकलकर सामने आ सकते हैं। इस बात पर गौर करना बेहद जरूरी है कि असम के असमिया भाषी और बांग्ला भाषी लोगों के अलावा बाकी सभी आपस में हिंदी में ही बातचीत करते हैं। चाहे नेपाली हो या बोडो हो- सभी लोग बहुत अच्छी असमिया बोलना जानते हुए भी अपने समुदाय के बाहर के लोगों से हिंदी में ही बात करते हैं। इसी तरह असम की दूसरी जनजाति के लोग भी करते हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि वे हिंदी को केवल एक संपर्क भाषा के रूप में अपनाते हैं, जैसे- उन्होंने अंग्रेजी को अपनाया है। लेकिन वे खुद को कभी भी हिंदी भाषी के रूप में परिचित नहीं कराएंगे।

असम के हिंदी भाषी लोगों में तीन धार्मिक समुदाय प्रमुख हैं- हिंदू, सिख और जैन सम्प्रदाय। हिंदू तो धार्मिक दृष्टि से असम के बहुसंख्यक लोगों में आते हैं लेकिन भाषिक दृष्टि से असम के कुछ हिंदू लोग अल्पसंख्यकों में भी

आते हैं। वर्तमान असम में जितने हिंदी भाषी अल्पसंख्यक मौजूद हैं, उनके पूर्वजों का विभिन्न कारणों से वहां प्रवास हुआ था। शुरू-शुरू में वे रोजगार के तलाश में असम आए होंगे। बाद में मौका देख कर वे वहीं बस गए। असम में आज जितने प्रवासी हिंदू हिंदी भाषी हैं उनमें से प्रायः सभी का मूलनिवास बिहार प्रदेश है। ये लोग बिहारी बोली-मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि को बोलचाल के रूप में अपनाते हैं। असम के हिंदी भाषी लोगों ने अब असमिया, बांग्ला आदि भाषाओं में भी बात करना सीख लिया है।

असम में बिहारी हिंदी भाषियों की संख्या सबसे ज्यादा है। इस समुदाय के लोग राज्य के कोने-कोने में बसे हुए हैं। लेकिन उनकी सामाजिक स्थिति दूसरे हिंदी भाषियों की तुलना में अपेक्षाकृत बहुत कमजोर है। आज भी असम में उनको निम्न स्तर के कामों से ही पहचाना जाता है। बिहारी, जिनका असम में प्रवास हुआ था, वे अपने समाज के दबे-कुचले लोग थे। उनको शुरू से ही केवल जीने भर के साधनों से ही मतलब था। चाय बागान का काम, मजदूरी, फाई का काम आदि असम में अधिकांश बिहारियों के रोजगार के साधन थे। उन्होंने शिक्षा-दीक्षा या सामाजिक विकास को कभी वरीयता ही नहीं दी। अपने पूर्वजों द्वारा की गयी इसी गलती की सजा, आज भी नई पीढ़ी के लोग भूगत रहे हैं। आज असम के सर्वाधिक पिछड़े हुए लोगों में बिहारी हिंदी भाषी लोगों की गिनती होती है, जिसके लिए उनको तिरस्कार भरा जीवन जीना पड़ रहा है। हलांकि इसके लिए असम के मूल निवासी कतई जिम्मेदार नहीं ठहराए जा सकते। उन्होंने सबको समान विकास करने का पूरा अवसर प्रदान किया है। कोई पीछे रह गए इसके लिए पिछड़े लोग खुद जिम्मेदार हैं।

वैसे तो असम में सभी हिंदी भाषियों की सामाजिक स्थिति एक जैसी है, लेकिन उनमें सिख और मारवाड़ी समुदायों को थोड़ा अलग रूप में देखा जाना चाहिए। इन दो समुदायों की सामाजिक स्थिति बिहारियों की तुलना में थोड़ा बेहतर है। इसका कारण उनके हिंदी भाषी होना नहीं है बल्कि इसका श्रेय उनकी आर्थिक स्थिति को जाता है। सिख और मारवाड़ी- ये दोनों ही समुदाय असम में व्यापारी वर्ग के रूप में जाने जाते हैं। असम के सकल घरेलू आय में उनकी हिस्सेदारी को कभी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसके लिए असम के स्थायी लोग सिख और मारवाड़ियों के ऊपर निर्भरशील हैं। जिस रूप में बिहारियों ने असमिया भाषा एवं संस्कृति को अपनाया है उतना सिख और मारवाड़ियों ने नहीं अपनाया। असम में रहते हुए भी उन्होंने अपनी भाषिक और सांस्कृतिक पहचान को खोने नहीं दिया है। दूसरी तरफ मूल असमिया भाषियों ने भी कभी सिख और मारवाड़ियों से अपनी भाषा-संस्कृति के प्रति चुनौती महसूस नहीं की होगी। केवल राजनीतिक कारणों से इन लोगों को निशाना बनाये जाने को भाषिक विरोध के रूप में देखा जाना ठीक नहीं है। मूल असमिया भाषियों का सर्वाधिक विरोध वहां की दूसरी बड़ी भाषा बांग्ला के लोगों से है। असम के इतिहास में भाषा के नाम पर जिन आंदोलनों के किस्से दर्ज हैं, उनमें से सर्वाधिक असमिया और बांग्ला की वरीयता के मुद्दे को लेकर ही घटित हुए हैं।

समय के साथ-साथ लोगों की मानसिक स्थिति में भी बदलाव आता है। जहां असम के अधिकांश बांग्ला भाषी लोगों ने असमिया भाषा को अपनी मातृभाषा की स्वीकृति दी है वहीं हिंदी भाषी लोगों की सामाजिक अस्मिता की लड़ाई भी जारी है। चाहे जनजाति (बिहारी), मारवाड़ी, सिख आदि समुदाय के लोगों ने अपनी भाषा एवं संस्कृति की रक्षा के हित में संगठन बनाया है। उन संगठनों के माध्यम से अपने हित के लिए कभी-कभी सड़क पर भी आंदोलन किया जाता है। ऐसी स्थिति पहले नहीं थी। पहले तो केवल मूल असमिया भाषियों के हित में जो होते थे उन्हें ही स्वीकृति मिलती थी। असम में अपने हक के लिए लड़ना किसी भी प्रवासी के लिए मुमकिन नहीं था लेकिन अब जमाना बदल रहा है। सोशल मीडिया के इस दौर में कोई भी बड़ी आसानी से अपने अधिकार की बात दूसरों तक पहुंचा सकते हैं। आजकल ऐसा देखा जा रहा है कि वर्षों से संघर्षशील असम के बिहारी हिंदी भाषियों की मांग आज आप कहीं से भी सुन सकते हैं। इसी तरह मारवाड़ी और सिख हिंदी भाषियों ने भी अपनी मांग उठाने का अनोखा तरीका ढूंढ निकाला

है। इन सबकी जानकारी पाने के लिए एक बार फेसबुक या यूट्यूब ओ लौटना होगा।

अतः असम के हिंदी भाषियों में प्रमुख सिख, मारवाड़ी और बिहारी समुदायों का अध्ययन करके पता चलता है कि भाषा की दृष्टि से उनमें काफी बदलाव आया है। ऊपरी असम के बहुत से सिख लोग असमिया को ही अपनी मातृभाषा मानते हैं। उन्होंने पंजाबी या हिंदी सीखा है तो केवल धार्मिक कारण से। उन्होंने अपने धार्मिक ग्रन्थ का अनुवाद असमिया भाषा में किया है। कुछ सिख हैं जो पंजाबी या हिंदी में बातचीत करते हैं। मारवाड़ी लोग भी असमिया बोलते हैं। असमिया में लिखते-पढ़ते भी हैं। लेकिन मारवाड़ियों में अपनी मूल भाषा से अलगाव कम दिखाई देता है। वे असमिया केवल सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से ही सिखते हैं। बिहारी समुदाय के लोगों ने दूसरी प्रकार की भाषा का विकास कर लिया है। उनकी भाषा भोजपुरी और असमिया भाषा के मिश्रण से बनी है। असमिया बिहारियों की भाषा सुनने में बहुत ही अनुठी लगती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि असम में हिंदी भाषियों का स्थान अभी भी निर्णायक स्थिति तक पहुँची है। शायद आगे आनेवाले दिनों में बहुत से परिवर्तन और भी देखने को मिलें।



रीवा जिले के माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के शिक्षकीय व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति एवं कार्य संतुष्टि का सर्वक्षणात्मक अध्ययन

-डा. एस.के. त्रिपाठी, शोधनिर्देशक
-कल्पना पाण्डेय, शोधार्थी

शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

प्रस्तावना :-

भारत की संस्कृति में मध्य प्रदेश जगमगाते दीपक के समान है, जिसकी रोशनी की सर्वथा अलग प्रभा व प्रभाव है। मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल है। मध्यप्रदेश जिसको प्रकृति ने राष्ट्र की वेदी पर जैसे अपने हाथों से सजा कर रख दिया है, जिसके सतरंगी सौंदर्य और मनमोहक सुगंध चारों ओर फैल रहे हैं यहां के जनपदों के आबोहवा में कला, साहित्य, शिक्षा और संस्कृति की मधुमयी सुभाष तैरती रहती है इन्हीं में से एक रीवा जिला मध्य प्रदेश प्रांत का नगर एवं संभाग है इसके उत्तर में उत्तर प्रदेश राज्य, पश्चिम में सतना एवं पूर्व तथा दक्षिण सीधी जिले स्थित है। रीवा शहर जिले के पश्चिमी किनारे में बसा है। 2011 की जनगणना के अनुसार रीवा जिले की जनसंख्या 23.63.744 है तथा साक्षरता दर 73.42 प्रतिशत है।

मनुष्य को अपने जन्म से ही अपने अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों के अनुसार संघर्षरत रहकर कार्य करना होता है। इसी कर्म को अपने अनुकूल बनाने के लिए उसे सीखना पड़ता है कुछ सीखना ही शिक्षा होता है शिक्षा से ज्ञान अनुभव, तथा कुशलता मिलती है। औपचारिक शिक्षा के प्रमुख स्तर है :- प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। माध्यमिक शिक्षा का वर्तमान रूप अपने पीछे 100 वर्षों से अधिक विकास परंपरा को लिए हुए हैं माध्यमिक शिक्षा का अभिप्राय मध्य की शिक्षा अर्थात माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक और उच्च शिक्षा के मध्य की शिक्षा है। अंग्रेजी में इसके लिए सैकेंडरी शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ है सैकेंडरी शिक्षा, प्राइमरी और हायर सैकेंडरी के बीच में दिए जाने वाली शिक्षा आज किसी भी देश में माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा के बीच की कड़ी है। यह अपने में पूर्ण इकाई है तथा इसमें बच्चों के निर्माण की शिक्षा दी जाती है। मुदालियर आयोग (1952-1953) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य के विषय में कहा था कि 'नागरिकों की आदतों, प्रवृत्तियों एवं चारित्रिक गुणों के विकास में शिक्षा को योगदान करना चाहिए, जिससे वे ध्वनसात्मक प्रवृत्तियों का विरोध करें तथा प्रजातांत्रिक नागरिकों के उत्तरदायित्व को निर्वाह कर सकें।' आयोग ने शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर निम्न उद्देश्य है :-

1. प्रजातांत्रिक नागरिकों का विकास।
2. व्यवसायिक कुशलता का विकास करना।
3. व्यक्तित्व का विकास करना।
4. नैतिक विकास करना।

इन सभी उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब शिक्षक अपने उत्तरदायित्व का सही निर्वहन करेंगे, शिक्षक शिक्षा प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। संकीर्ण अर्थ में एक निश्चित स्थान पर पूर्व निश्चित शिक्षा पद्धतियों के माध्यम से पूर्व निश्चित पाठ्यक्रम का ज्ञान प्रदान करने वाले व्यक्ति विशेष को अध्यापक कहते हैं। परंतु विस्तृत अर्थ में माता-पिता भाई-बहन सगे संबंधी, शिक्षक व अन्य समस्त वस्तुएं समस्त वस्तुएं जो बालक का ज्ञानार्जन करता है, शिक्षक है। योग्य व ज्ञानी अध्यापक के संरक्षण में ही बालक योग्य एवं ज्ञानी बन सकता है, आज शिक्षक का उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ गया है। वह बालक के वातावरण का एक महत्वपूर्ण अंग होने के साथ-साथ वातावरण का निर्माण करता है। आज अध्यापक शिक्षक बालकों को ज्ञान प्रदान करता है उनकी योग्यताओं एवं क्षमताओं एवं अन्य गुणों का विकास करता है इसलिए यदि शिक्षक चरित्रवान एवं उसका -ष्टिकोण सकारात्मक है तो वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से बालक में नैतिक एवं चारित्रिक गुणों का विकास कर सकेगा। किसी भी देश का भविष्य उसकी आने वाली पीढ़ी पर निर्भर करता है तथा उसका स्वरूप कैसा हो इसकी जिम्मेदारी शिक्षकों पर होती है।

कोठारी आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि 'भारत के भविष्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है।'

यह सत्य है कि इन कक्षाओं का निर्देशन शिक्षक के हाथ में होता है, बालक के जीवन में सुधार लाने में शिक्षक की भूमिका प्राण संचारक की होती है दूसरे शब्दों में वह बालक को अपनी जीवन प्रणाली बदलकर उसे उन्नत बनाने के लिए प्रेरित करता है इसलिए शिक्षक को राष्ट्र का निर्माता कहा गया है।

अध्ययन कक्ष में भारत के भाग्य का निर्माण करने के लिए शिक्षक अपने कर्तव्यों का निर्वाह तभी कर सकता है जब वह अपने व्यवसाय से संतुष्ट है वह अपने जीवन में उच्च आदर्शों के द्वारा दूसरों को लाभ पहुंचाता है। इस विकासशील समाज में शिक्षकों की उच्चतम व्यवसायिक संतुष्टि होना जरूरी है व्यवसायिक दर्शन के कारण शिक्षक में निम्नलिखित बातों में विश्वास पैदा होने लगता है-

- (क) अपने विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सम्मान।
- (ख) शिक्षण की लोकतांत्रिक विधियां और तकनीकी।
- (ग) अपना कार्य करने में गर्व और
- (घ) अपने व्यवसाय की महत्ता।

अध्यापक एक ऐसी धुरी है जिसके आधार पर समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का उन्नयन करने वाला संपूर्ण शिक्षा दर्शन निरंतर घूमता रहता है। शिक्षक वैकल्पिक माता पिता की भूमिका निभाता है, कौन सी बात सही है और कौन सी बात गलत है इसका निर्णय लेता है और साथ ही वह विश्वास भाजन के रूप में काम करता है। इस प्रकार वह न केवल विद्यार्थियों के बुद्धि के विकास के लिए ज्ञानदाता का काम करता है बल्कि लोकतांत्रिक समाज के लिए एक एजेंट का काम भी करता है शिक्षक की शिक्षकीय अभिवृत्ति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अभिवृत्ति एक ऐसी स्वाभाविक तत्परता होती है जिसमें कुछ विशेष स्थितियों और वस्तुओं के प्रति निश्चित रूप में अनुप्रिया करता है।

अंत में यह बात कही जा सकती है कि शिक्षक के लिए शिक्षकीय अभिवृत्ति और कार्य संतुष्टि का व्यक्तिगत अर्थ होता है। यह सभी व्यवसायिक दर्शन संपूर्ण कार्यकलाप में शिक्षक के व्यवहार को प्रभावित करता है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोध समस्या का चयन किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण :-

सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से संबंधित सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबंधों एवं अभिलेखों आदि से है जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता

को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है। शोधकर्ता देश विदेश में किए गए विभिन्न प्रकार के अध्ययन की सहायता से समस्या चयन के कारणों पर प्रकाश डालना चाहती है।

गुड, वार तथा स्केट्स कहते हैं- 'एक कुशल चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने क्षेत्र में हो रही औषधी संबंधी आधुनिकतम खोजों से परिचित होता रहे उसी प्रकार शिक्षा के जिज्ञासु छात्र अनुसंधान के क्षेत्र में कार्य करने वाले तथा अनुसंधानकर्ता के लिए उस क्षेत्र में संबंधित सूचनाओं एवं खोजों से परिचित होना आवश्यक है।'

शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति से संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण :-

शोधार्थी द्वारा शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति से संबंधित अध्ययनों का संकलन निम्नलिखित क्रम में किया गया है-

पाण्डेय, उषा (1958) में :-

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एक अध्ययन प्रस्तुत किया। यह अध्ययन छात्राध्यापिकाओं में शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिव्यक्ति जानने के संबंध में था। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी ने 160 अध्यापिकाओं को न्यादर्श के रूप में चयनित किया है। यह शोध कार्य शून्य परिकल्पना पर आधारित था। प्रस्तुत अध्ययन सर्वेक्षण विधि पर आधारित है जिसमें प्रदातो के विश्लेषण एवं व्याख्या के लिए मध्यमान जिसके आधार पर शोधार्थी ने पाया कि 20 वर्ष से अधिक उम्र वाली छात्राध्यापिकाओं (पूर्व सेवा तथा सेवारत) की अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया गया।

सर्वदमन (1967) ने :-

कानपुर विश्वविद्यालय में एक शोध प्रस्तुत किया जोकि माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति जानने के पक्ष में था। यह अध्ययन वर्णनात्मक अध्ययन पर आधारित है इसमें 250 माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को न्यदर्श के रूप में चयनित किया गया। प्रस्तुत अध्ययन शून्य परिकल्पना को आधार मानकर किया गया और प्रदातो के विश्लेषण एवं व्याख्या हेतु प्रयुक्त सांख्यिकीय मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, क्रांतिक अनुपात रहा। प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार रहा-

1. लिंग भेद के आधार पर शिक्षकों के अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया गया।
2. शैक्षिक स्तर के आधार पर शिक्षकों के अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया गया।
3. सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के आधार पर शिक्षकों की अभिव्यक्ति में कोई अंतर नहीं पाया गया।

सुखलाल (1977) में :-

1. महिला अध्यापिकाओं की अध्ययन व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया इस अध्ययन में सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया यह अध्ययन स्थान राजस्थान के 50 विश्वविद्यालयों के 500 विवाहित महिला अध्यापिका ऊपर आधारित है अध्ययन के निष्कर्ष इस प्रकार हैं पहला अधिकांश अध्यापकों ने अध्ययन व्यवसाय का समर्थन किया।
2. अध्यापन व्यवसाय के प्रति नकारात्मक एवं सकारात्मक दृष्टिकोण का अंतर उच्च स्तर पर सार्थक पाया गया।
3. बढ़ती हुई आयु के साथ-साथ अध्ययन व्यवसाय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति होती जाती है।
4. सकारात्मक व्यावसायिक अभिवृत्ति के विकास में अध्यापक का शिक्षण अनुभव महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है।
5. ज्यों-ज्यों अध्यापक अपनी योग्यता बढ़ता जाता है त्यों त्यों अध्यापन व्यवसाय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता जाता है। प्रशिक्षित अध्यापकों में अप्रशिक्षित की तुलना में सकारात्मक दृष्टिकोण अधिक पाया

जाता है।

कार्य संतुष्टि से संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण :-

शोधार्थी द्वारा कार्य संतुष्टि से संबंधित अध्ययनों का संकलन निम्नलिखित क्रम में किया गया है :-

होपाक (1935) ने

500 शिक्षकों पर चार मनोवृत्ति मानदंड का उपयोग करके उनके कार्य संतुष्टि के बारे में अनुमान लगाने का प्रयत्न किया। कार्य संतुष्टि पर किए गए इनके अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए।

1. संतुष्ट शिक्षकों में धार्मिक प्रवृत्ति की अधिकता देखी गई।
2. शिक्षकों ने सांवेगिक कुसमायोजन के बहुत कम लक्षणों को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया है।
3. अपने से श्रेष्ठ समकक्षी लोगों के साथ इनका मानवीय सम्बंध उत्तम होता था।
4. संतुष्ट शिक्षक दस हजार से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में पढ़ाया करते थे।

त्यागी, अनीता कुमारी (1977) के अध्ययन के मुख्य उद्देश्य थे।

1. अध्यापकों के कार्य संतुष्टि और आत्मप्रत्यय का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक शिक्षकों के कार्य संतुष्टि पर लिंग के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. न्यायदर्श के रूप में आगरा के 200 प्राथमिक शिक्षकों को लिया गया जो मान्यता प्राप्त विद्यालयों में कार्यरत थे।

अध्ययन के निम्नलिखित निष्कर्ष थे :-

1. प्राथमिक शिक्षकों में उच्च कोटि का संबंध पाया जाता है तथा बहुत कम प्राथमिक शिक्षक अपने कार्य से असंतुष्ट पाए गए।
2. प्राथमिक शिक्षकों में लिंगभेद, कार्य संतुष्टि को स्पष्ट रूप से प्रभावित करता है।

पूर्वा अध्ययनों का सामान्यीकरण :-

उपरोक्त शोध निष्कर्षों के आधार पर शासकीय एवं अशासकीय शालाओं में कार्यरत शिक्षकों की व्यवसाय कार्य संतुष्टि में विभिन्नता पाया गया साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय शिक्षकों के कार्य में अंतर पाया गया उनके कार्यों के प्रकार में अंतर पाया गया। महिला एवं पुरुष शिक्षकों के प्रशिक्षण के आधार पर अभिव्यक्ति में अंतर पाया गया एवं शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों को उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर समान्यीकरण किया गया एवं यह देखा गया कि वह अध्ययन अन्य क्षेत्रों में किया गया है परंतु रीवा जिले के माध्यमिक स्कूलों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षकीय अभिवृत्ति एवं कार्य संतुष्टि पर का अध्ययन नहीं किया गया है। अतः यह शोध रीवा जिले के माध्यमिक शालाओं में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि एवं अभिवृत्ति जाने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :-

‘समाज में अध्यापक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बहुत परंपराएं और तकनीकी कौशल पहुंचाने का केंद्र है और होता प्रकाश में प्रज्वलित रखने में सहायता देता है।’

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन :-

विद्यालय के वातावरण में अध्यापक बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित करता है। अध्यापक की आदर्शों, विचारों, मान्यताओं, एवं व्यक्तित्व का प्रभाव बच्चे के जीवन पर पड़ता है।

अध्यापक के अंदर अपनी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण उनकी मान्यताओं, रचियों, अभिरचियों अवधारणाओं एवं अभिवृत्ति में काफी भिन्नताएं होती हैं तथा उनके अपने भौगोलिक क्षेत्र एवं लिंग की विषमता होने के कारण भी उनकी पीपी अभिवृत्तियों, अभिरचियों व विचारों में विभिन्नताएं उत्पन्न होती हैं।

शिक्षण कार्य आदर्श व्यवसाय है, जिसमें ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता है जिन्हें अपने विषय का ज्ञान हो, अध्ययन कुशलता प्राप्त हो, शिक्षकीय के प्रति लगाव हो, विद्यार्थी के प्रति शिक्षक के गुणों का समावेश शिक्षक में होना चाहिए अर्थात् शिक्षक की शिक्षक की अभिवृत्ति सकारात्मक एवं कार्य संतुष्टि होना चाहिए इसके लिए शैक्षिक क्षेत्र में ऐसे अनुसंधान एवं नवाचारों की आवश्यकता है जो छात्र के समग्र विकास तथा स्वयंवर राष्ट्र निर्माण हेतु उपयोगिता को सुनिश्चित कर सकें।

अध्ययन का महत्त्व :-

शिक्षक राष्ट्र के विकास के लिए केंद्रीय धूरी है परंतु शिक्षा स्वमेव गतिशील नहीं है। बल्कि उसे गतिशील बनाता है शिक्षक छात्र-छात्राएं बगीचे में लगे पौधे के समान होते हैं। अध्यापक एक माली है जो पौधों को सींचता है, उनके अनावश्यक गुणों की काट छांट करता है, तथा अन्य सभी प्रकार से देखभाल करते हुए उन्हें फलने फूलने योग्य बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। हम सभी यह जानते हैं कि मनुष्य से मनुष्य सीख सकता है जिस तरह जल से ही जलाशय भरता है दीप से ही दीप जलता है उसी प्रकार प्राण से प्राण सचेत होता है चरित्र को देखकर ही चरित्र बनता है। गुरु के संपर्क, सानिध्य, उनके जीवन से प्रेरणा लेकर ही मनुष्य, मनुष्य बनता है। इस प्रकार शिक्षक अपने श्रेष्ठ आचरण श्रेष्ठ से मनुष्य (शिष्य) का निर्माण करता है।

उपरोक्त बातें तभी सार्थक हो सकती हैं जब शिक्षक अपने कार्य के प्रति संतुष्ट सकारात्मक, शैक्षिक अभिवृत्ति से ओतप्रोत होकर अध्यापन कार्य करेंगे। जिससे छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का स्तर सकारात्मक रूप से उच्च होगा। शिक्षकों की अभिवृत्ति प्रभावित करने वाले कारण में व्यक्तिगत अभिवृत्ति पाई जाती है। सामान्यतः सामाजिक और भौतिक परिवर्तन के दौर में शिक्षकों के आत्मसम्मान की सुरक्षा, आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं का अध्ययन आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो गया है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

मानव कोई भी कार्य करता है, उसके पीछे उद्देश्य अवश्य ही होता है, चाहे वह कार्य ऐच्छिक हो निश्चित हो अथवा अन्य किसी प्रकार अनुसंधान में मानव का एक शिकार यह अपने अनुसंधान कार्य में सदन होते समय अनुसंधानकर्ता के मन में भी निश्चित रूप से कोई न कोई लक्ष्य अथवा उद्देश्य रहता है।

प्रस्तुत विषय के अंतर्गत 'रीवा जिले के माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की शिक्षकीय व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति एवं कार्य संतुष्टि का समीक्षात्मक अध्ययन।'

अतः इस शोध कार्य के निम्न उद्देश्य हैं :-

1. शासकीय और अशासकीय शिक्षकों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।
2. अशासकीय महिला पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।
3. शासकीय महिला पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।
4. शासकीय ग्रामीण और शहरी शिक्षकों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।
5. आशासकीय ग्रामीण और शहरी शिक्षकों की व्यावसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।
6. शासकीय महिला पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
7. अशासकीय महिला पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
8. शासकीय ग्रामीण और शहरी शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
9. अशासकीय ग्रामीण और शहरी शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
10. शासकीय अशासकीय शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन की तकनीकी पदों की सक्रियात्मक परिभाषा :-

1. माध्यमिक विद्यालय माध्यमिक विद्यालयों से तात्पर्य कक्षा नौवीं से दसवीं तक लिया गया है।
2. शिक्षक एवं शिक्षिकाएं- शिक्षक एवं शिक्षिकाओं से तात्पर्य मध्य प्रदेश के रीवा जिले में माध्यमिक विद्यालय में वर्तमान में सेवारत शिक्षक एवं शिक्षिकाएं।
3. शिक्षकीय व्यवसाय एवं कार्य संतुष्टि-अध्ययन हेतु शोध प्रबंध में शिक्षकीय व्यवसाय एवं कार्य संतुष्टि से अभिप्रायः शालेय शिक्षकों के द्वारा किए जा रहे अध्यापन कार्य को माना है। इसमें शिक्षा से जुड़े अन्य कार्यों तथा ट्यूशन, कोचिंग आदि को सम्मिलित नहीं किया गया है।

शिक्षकों की सार्थक शिक्षकीय अभिवृत्ति एवं कार्य संतुष्टि कक्षा में शिक्षकों के व्यवहार को भी प्रभावित करती है। छात्रों का प्रभावशाली अधिगम व शैक्षिक उपलब्धि शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं सार्थक अभिवृत्ति पर निर्भर है।

अध्ययन का परिसीमन :-

प्रस्तुत शोध कार्य का क्षेत्र व्यापक है अतः कार्य की सुविधा और समय सीमा को ध्यान में रखते हुए निम्नानुसार परिसीमन किया गया है-

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु मध्य प्रदेश के रीवा जिला के नौ विकासखंड- गांगेय, हनुमान, जवा मऊगंज नईगढ़ी रायपुर करछुलिया, रीवा, सिरमौर, चौथार के अन्तर्गत शासकीय एवं अशासकीय शाला तक सीमित किया गया है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु रीवा जिला का क्षेत्र व्यापक है जिस कारण सभी विकासखंड के माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों का अध्ययन करना संभव नहीं है। इसलिए जिले के सभी विकासखंडों में अध्ययन हेतु नौवीं से दसवीं कक्षा में अध्यापन कराने वाले 250 शिक्षक एवं शिक्षिका 250 कुल पांच सौ (500) शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है।
3. इन विद्यालयों में सेवारत शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं कार्य संतुष्टि के अध्ययन तक सीमित है।
4. शोध कार्य हेतु रीवा जिले में नौ विकासखंड के ग्रामीण एवं शहरी 60 विद्यालयों के चयन तक सीमित है।

अध्ययन का न्यादर्श :-

न्यादर्श का शैक्षिक अनुसंधान में महत्वपूर्ण स्थान है। न्यादर्श के अभाव में कोई भी अनुसंधान कार्य पूर्ण नहीं हो सकता है। मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष में प्रायः न्यादर्श अथवा सैंपल की आवश्यकता होती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सम्पूर्ण समष्टि से न्यादर्श के रूप में 60 माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया है।

तालिका - क्रम संख्या - 01

न्यादर्श का लिंग के आधार पर विवरण

शिक्षकों की संख्या	शिक्षिकाओं की संख्या	योग
250	250	500
	कुल योग	

तालिका - क्रम संख्या - 2

न्यादर्श का विद्यालय के आधार पर विवरण

शासकीय विद्यालय	अशासकीय विद्यालय	योग
30	30	60
	कुल योग	

अध्ययन के चर :-

विद्यालय के प्रकृति पर आधारित।

1. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय

स्वतन्त्र चर :-

लिंग भेद पर आधारित

2. शिक्षक एवं शिक्षिकाए

आश्रित चर :- शैक्षिक अभिवृत्ति एवं कार्य संतुष्टि।

बाह्य चर :- शहरी एवं ग्रामीण शिक्षक।

उपकरण के विवरण :-

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा शिक्षकीय व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति मापन हेतु डण्क्टर एस पी. अहलूवालिया द्वारा निर्मित अध्ययन के प्रति शिक्षकीय अभिवृत्ति मापनी (TAI) का उपयोग किया गया है तथा शोधार्थी द्वारा कार्य संतुष्टि मापन हेतु प्रश्नावली एवं साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया जाएगा।

प्रयुक्त सांख्यिकीय :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध कर्ता के द्वारा आंकड़ों का प्रकृति जानने हेतु प्रसमान्यता की जाँच की जाएगी एवं आवश्यकता के अनुसार आंकड़ों का वर्गीकरण कर मध्यमान प्रमाणिक विचलन तथा सार्थकता परीक्षण हेतु टी मूल्य ज्ञात किया जाएगा।

प्रस्तावित शोध कार्य के संभावित निष्कर्ष :-

प्रस्तावित शोध कार्य हेतु संभावित परसों को अनुसंधान की भाषा में परिकल्पनाओं के रूप में व्यक्त किया गया है। प्रस्तावित शोध कार्य हेतु शोधार्थी की निम्नलिखित प्रमुख परिकल्पनाएँ जो प्रस्तावित शोध कार्य के संभावित निष्कर्ष होंगी।

1. शासकीय व अशासकीय शिक्षकों की व्यवसायिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. शासकीय और अशासकीय महिला शिक्षकों की व्यवसायिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. शासकीय और अशासकीय पुरुष शिक्षकों की व्यवसायिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
4. शासकीय और अशासकीय शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
5. शासकीय महिला और पुरुष शिक्षकों के कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
6. अशासकीय महिला और पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
7. ग्रामीण और शहरी शासकीय शिक्षकों के व्यवसायिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
8. ग्रामीण और शहरी अशासकीय शिक्षकों की व्यवसायिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
9. शासकीय ग्रामीण और शहरी शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
10. अशासकीय ग्रामीण और शहरी शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. N C E R T के बच्चे के विकास में अध्यापक की भूमिका।
2. गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता अलक, (2007) 'उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. गुप्ता, सपना (2010) शिक्षक शिक्षा एक विस्तृत दृष्टिकोण, शिक्षा मित्र दिसम्बर, अंक 2, पृष्ठ संख्या 5
4. कपिल, एच. के. (1997) सांख्यिकीय के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
5. नरवरिया, ए.एस. (2014) माध्यमिक शिक्षा तथा शिक्षक, साहित्य प्रकाशन आगरा।

6. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, उभरते भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा।
7. कैल, लोकेश (1998) 'शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली' विकास पब्लिशिंग।
8. बेस्ट, जॉन, डबल्यू, रिसर्च इन एजुकेशन।
9. भार्गव महेश (1998) 'आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन', हर प्रसाद पुस्तक, कचहरी घाट, आगरा
10. अग्रवाल रामनारायण, मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन मूल्यांकन।
11. गैरेट ई. हेनरी (1995) मापन और मूल्यांकन, कल्याणी पब्लिशर्स, हैदराबाद।
12. वर्मा, प्रीति, श्री वास्तव, डी. एन., नवीनतम संस्करण, 'मनोविज्ञान और शिक्षा में संख्यकीय', विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
13. मिश्रा, मंजू (2014) अध्यापक शिक्षा तथा तकनीक, ओमेगा पब्लिकेशन।
14. पाण्डेय, के. पी. 'शैक्षिक अनुसंधान की रूप', अमित प्रकाशन, मेरठ।
15. सिंह, अरुण कुमार (2011-12) 'मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां', मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, पृष्ठ संख्या 101
16. शर्मा, आर. ए. (2007) 'शिक्षा अनुसंधान', लाल बुक डिपो मेरठ, निकट गवर्नमेंट इंटर कॉलेज।
17. गुप्ता, एस. पी. (1996) 'अनुसंधान की विधियां', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
18. सिंह, अरुण कुमार (2011-12) 'मनोविज्ञान समाज शास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां', मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, पृष्ठ संख्या 217
19. पाण्डेय, लता, (2010) 'प्राथमिक शिक्षक पत्रिका, अंक जुलाई-अक्टूबर, पृष्ठ संख्या 3
20. पाठक, पी. डी., प्रथम संस्करण, 'नई शिक्षा नीति', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।



हरिवंशराय बच्चन के काव्य संसार की एक झलक

-कमल सिंह भूरिया, शोधार्थी, पीएच-डी. (हिन्दी साहित्य)

भाषा अध्ययनशाला, दे.अ.वि.वि. इन्दौर।

बच्चन का काव्य संसार बहुत व्यापक और विस्तृत है। काव्य संग्रह के रूप में 1929 से 1963 तक अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित किये गये हैं। बच्चन के काव्य में निहित भावों और विचारों के साथ ही कलापक्ष के साथ भाषिक संरचना, छन्द-विधान, प्रतीक-बिम्ब-योजना पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी काव्य धारा के सृजन में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक परिवेश का सफलतम चित्रण किया है। छायावाद और छायावादोत्तर गीतिका काव्य की काव्य परम्परा को पुरस्कृत किया है।

बच्चन की कविता में कल्पनाशीलता के साथ हृदय की सर्वतोमुखी संवेदनाओं का सृजन किया है। प्रारंभ में छायावाद की कल्पनाओं का अनुसरण किया है। साथ ही छायावादोत्तर कालखण्ड में व्यक्तिवादी स्वच्छन्द काव्य धारा का भी उन्नत किया है।

और इस कालखण्ड के पश्चात् प्रगतिवादी काव्य धारा की ओर भी उनका अत्यधिक झुकाव रहा है। इस प्रकार उनकी काव्य धारा अविरल सृजन के नये-नये आयाम गढ़ती रहीं।

कवि बच्चन ने व्यक्तिगत सुख-दुख की सहज और सरल अभिव्यक्ति की है। डॉ. नगेन्द्र ने उन के काव्य संसार के परिवर्तनशील काव्य धारा के सन्दर्भ में कहा है कि- 'छायावाद के बाद और प्रगतिवाद के पूर्व को इस काव्य धारा को 'वैयक्तिक कविता' की संज्ञा दी है। उनके अनुसार प्रस्तुत काव्य-धारा छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा है। इसने प्रगतिवाद के लिए एक नवीन मार्ग निर्मित किया।

बच्चन के स्वच्छन्दवादी काव्य में साहित्यिक, कलात्मक और दार्शनिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति की गई है। जिसने उनके संवेदना के धरातल अनेक भावभीनी अभिव्यक्तियाँ प्रकट की हैं।

'साकी बन आती है प्रातः जब अरुणा उषा-बाला,
तारक-मणि-मंडित चादर दे मोल धरा लेती हाला।'

प्रियतम में 'हाला' और स्वयं को 'प्याला' बनाकर उस प्रियतम परमात्मा के साथ एकाकार होने की भावना बच्चन ने सुन्दर प्रतीकों के माध्यम से अपने दार्शनिक दृष्टिकोण को व्यक्त किया है।

इसी सन्दर्भ में 'मधुशाला' के निम्न प्रतीकों को व्यक्त किया है। प्रियतम, तू मेरी हाला है, मैं तेरा प्यासा प्याला, अपने को मुझ में भर कर तू बनता है पीने वाला अध्यात्म' की गूढ़ दार्शनिक भावों से भरी अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कवि बच्चन ने अपनी रचनाओं के द्वारा यथार्थवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट किया है।

'निशा निमंत्रण' और 'एकान्त संगीत' में प्रेम और मस्ती का स्वर भी व्यंजित किया है। यह प्रेम किसी लौकिक सौन्दर्य पर अवलंबित नहीं है अपितु प्रेम की पीर के प्रागढ़ घनत्व को व्यक्त किया है।

अनेक रचनाओं में प्रगतिवादी कविता का विद्रोही स्वर व्यक्त हुआ है, जिसे 'बंगाल का काल' की रचना के द्वारा लक्षित किया है। यहाँ कवि ने सामाजिक असन्तोष को बताया है। कवि ने अपनी काव्य भाषा में भाषा की सहज

किन्तु प्रभावशाली रूप में दर्शाया है। कवि ने केवल व्यक्तिवादी स्वच्छन्दतावाद को ही व्यंजित नहीं किया है। अपितु काव्य को जनजीवन के अधिक निकट के रूप में अपनी उत्कंठ भावाभिव्यक्ति निरूपित की है।

बच्चन की प्रारंभिक रचनाओं में देश प्रेम की भावना का परिचय मिलता है। जैसे 'बंगाल का काल', सूत की माला, खादी के फूल, धार के इधर उधर और आरती और अंगारे में राष्ट्रप्रेम की भावना प्रकट की है।

वही बंगाल—
देख जिसे पुलकित नेत्रों से
भरे कण्ठ से,
कवि ने गाया राष्ट्र गान वह—
वन्देमातरम्।
वह बंगाल—
जिसकी एक सांस ने भर दी
मेरे देश की जान,
आत्मसम्मान,
आजादी की जान
बंग भूमि अब
शस्हीन है
दीन—क्षीण है
चिर मलीन है।

'हलाहल' कविता में संसार के परिदृश्य को कवि ने कहा है—

'जगत है चक्की एक विराट
पाट दो जिसके दीर्घाकार
गगन जिसका ऊपर फैलाव
अवनि जिसका नीचे विस्तार
नहीं इसमें पड़ने का खेद,
मुझे तो यह करता हैरान
कि घिसता है है यंत्र महान
कि पिसता है यह लघु इन्सान।।'

इस थार्थ प्रतीक के रूप में संसार धरती और आकाश के बीच दो पाटों में इन्सान पिस रहा है।

'सूत की माला' में गांधी जी के आकस्मिक देहावसान पर गहरा शोक व्यक्त किया है।

नत्थू खैरे ने गांधी का अंत कर दिया।

0 0 0

'आओ नत्थू बापू के अंतिम दर्शन कर जाओ

चरणों में श्रद्धांजलियाँ अर्पण कर जाओ।'

0 0 0

यह छाती परिचित थी भारत के धड़कन से

0 0 0

काया आत्मा को धरती माता का उन्नयन है,
बापू को अपना अन्तिम कर्ज चुकाने दो

‘खादी के फूल’ में भी कवि ने बापू को विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की है। गांधी जी के निधन का आघात कवि ने बड़ी वेदनाजन्य स्मृति के रूप में व्यक्त किया है। कवि कहता है—

‘हो गया क्या देश के
सबसे सुनहले दीप का निर्वाण!’

0 0 0

गांधी जी ने सभी भारतवासियों के प्रति आत्मीयता बरती है। बल्कि यँ कहें कि पूरी मानव जाति के प्रति गांधी जी के हृदय में आस्था रही है।

इसलिए कवि ने कहा है कि—

फर्क आपने और पराये में न समझा
शान्ति का यह दूत

गांधी जी के प्रति भावपूर्ण श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए बच्चन जी कहते हैं—

‘वे भावी मानवता के हैं आदर्श एक
असमर्थ समझने में है उनको वर्तमान।’

बच्चन जी की कुछ रचनाओं में राष्ट्रवाद की भावना मुखरीत हुई हैं। ‘धार के इधर—उधर’ संग्रह में ‘आज हिंदुस्तान का आह्वान’, ‘देश के नाविकों से’, आजादी की दूसरी वर्षगाँठ आदि रचनाओं में राष्ट्र प्रेम की भावना बड़ी गहराई से व्यक्त हुई है।

सन् 1947 को देश आजाद हुआ तब कवि ने बड़े भावुकता भरे शब्दों में कहा था कि—

‘आज से आजाद रहने का तुझे है मिल गया अधिकार
किन्तु उसके साथ जिम्मेदारियों का शीश पर है भार।’

देश की आजादी की दूसरी वर्षगाँठ पर भी कवि ने देश की वर्तमान दशा पर अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा था कि— ‘जबकि नफरत का जहर फैला हुआ था जातियों के बीच।’

‘आरती और अंगारे’ में कवि ने अपनी पूर्व पत्नी ‘श्यामा’ की रूग्णावस्था की कठिन स्थिति का किसी भी मानव को भाव विह्वल कर देने में पर्याप्त है—वे कहते हैं—

‘श्यामा रानी थी पड़ी रोगशय्या पर,
दो सौ सोलह दिन कठिन कष्ट में थे बीते,
संघर्ष मौत से बचने और बचाने का
था छिड़ा हुआ या हम जीते या व जीते।।’

बच्चन जी ने अपनी अनेक रचनाओं में पुरातन रूढ़ियों और जड़ परम्परा के प्रति विद्रोह व्यक्त किया है।

‘इस कुपथ पर या सुपथ पर
मैं अकेला ही नहीं हूँ
जानता हूँ कें जगत् फिर
उंगली मुझ पर उठाता।’

कवि ने इस बात पर भी आक्रोश व्यक्त किया है कि धर्म के ठेकेदारों ने मानव जाति को जाति और सम्प्रदायों में विभाजित किया है इतना ही नहीं उनके मन में परस्पर विद्वेष की भावना भी भर दी है। कवि कहते हैं—

‘विभाजित करती मानव जाति धरा पर देशों की दीवार,
जरा ऊपर उठकर तो देखो वही जीवन है इस-उस पार,
घृणा का देते हैं उपदेश, यहाँ धर्मों के ठेकेदार
खुला है सब के हित, सब काल, हमारी मधुशाला का द्वार।’

कवि ने समाज में व्याप्त ऊँच-नीच का भेदभाव, विषमता, अभाव और पीड़ा की अभिव्यक्ति की है।

वस्तुतः संघर्ष बच्चन का धर्म है, जीवन है। जीवन की बड़ी से बड़ी विपत्ति में वह जीवन से पलायन नहीं करता। वे कहते थे कि— ‘जीवन की कितनी ही बड़ी चुनौती हो, पर आत्महत्या करने की बात कभी नहीं सोची। जो सोचता है, वह मेरी दृष्टि में निरुत्तर है। मैं नरक में वास कर सकता हूँ, निराश का संग नहीं निभा सकता।’

कवि बच्चन में सौन्दर्य और प्रेम के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। समस्त सृष्टि का प्रेरणा स्रोत प्रेम द्वारा ही परिचालित होता है। कवि के लिए सौन्दर्य विश्व का अन्तरमन संगीत है। बच्चन की कविताओं में स्वदेश के प्रति उनका गहरा अनुराग रहा है। भारत के अतीत को गौरवशाली परम्पराओं के प्रति भी उनमें गहरी आस्था रही है।

‘क्या भूलूँ क्या याद करूँ’, निशा-निमंत्रण की इन रचनाओं में कवि ने अनेक प्रसंगों की याद दिलाते हैं।

‘क्या भूलूँ का याद करूँ मैं
अगणित उन्मादों के क्षण हैं
अगणित अवसादों के क्षण है’

रजनी की सूनी घड़ियों को किन-किन से आबाद करूँ।

इस रचना के माध्यम से कवि ने सुख-दुख, हर्ष-विषाद और विभिन्न स्मृतियों के बंधनों को कवि कैसे भुला सकता है? कवि जब जीवन के अनगिनत प्रसंगों की याद करता है तब वह सोचने को विवश होता है कि जीवन शाप है या वरदान?

‘जीवन शाप या वरदान?
सुप्त को तुमने जगाया
मौन को मुखरित बनाया
करुण क्रंदन को बताया वनों ‘धुरत’ गान?
जीवन शाप या वरदान?’

इस प्रकार कवि ने अपने काव्य-संसार की एक लघुत लहर से परिचित करने का उपक्रम किया।

सन्दर्भ :-

1. हृदयेश मिश्र एवं शिव लोचन पाण्डेय- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 175
2. बच्चन, मधुशाला, रूबई 36, पृ. 46
3. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.150
4. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.151
5. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.156
6. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.160, 162
7. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.181
8. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.233
9. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.242
10. बच्चन/रचनावलि भाग 1, मधुकलश, पृ.135
11. बच्चन/रचनावलि भाग 1, मधुकलश, पृ.103
12. बच्चन/ क्या भूलूँ क्या याद करूँ, पृ.302
13. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.98
14. बच्चन/मेरी श्रेष्ठ कविताएँ/पृ.109



मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी संवेदना

-संगीता कुमारी

शोधार्थी (हिन्दी), भू0ना0 मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्र फलाः क्रियाः।।”⁽¹⁾

अर्थात् जहाँ स्त्रियों का आदर किया जाता है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सब कार्य निष्फल होते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विविध आयाम मिलते हैं। उन्होंने स्त्री जीवन की विविध समस्याओं एवं प्रश्नों को परत दर परत खोल कर पुरुष सत्ता समाज को चुनौती दी है।

उपन्यास आधुनिक युग की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। मानव-चरित्रों पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यासों का मूल तत्व है। स्त्री अनंतकाल से समाज की शक्ति और साहित्य का मुख्य केन्द्र रही है। आज समाज के बदलते मापदंड, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्थाओं का विकास तथा नवीन आदर्शों की स्थापना में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका है।

“पितृसत्तात्मक समाज में नारी आज भी उपभोग की वस्तु बनकर रह गयी है। आज भी माना जाता है कि दमन, अन्याय, उत्पीड़न, हिंसा की जो जितना झेलेगी उतनी ही नारी महान गुणवाली मानी जाएगी”⁽²⁾

नारी स्वयंशक्ति का एक रूप है। वह मनुष्य जाति में ऊर्जा प्रवाह का प्रमुख माध्यम है, जिसके बिना संरचना, पोषण, रक्षा और आनन्द की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारतीय धर्मशास्त्र में देवी माँ दुर्गा के माध्यम से नारी शक्ति की महत्ता स्थापित की गई है। ये एक ऐसी शक्ति है जिसके बिना भविष्य की आशा ही नहीं की जा सकती और न कभी सम्पूर्ण पोषण को प्राप्त किया जा सकता, शुरुआती जीवन उत्पत्ति के समय रक्षा का एहसास बिना यह शक्ति अधूरी है। साथ ही साथ सांसारिक जीवन जीते हुए आनन्द की कल्पना की जा सकती है।

“स्त्री-पुरुष बोझ भी तो गर्भ में सहती है, जिन्दगानी बोझ-वजन के ही हवाले रहनी है, तो आदत डारो।”⁽³⁾

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास ‘अल्मा कबूतरी’ की आत्मा और ‘चाक’ के नैनी सारंग के माध्यम से यह दिखाने की पुरजोर कोशिश की है कि पुरातन से चली आ रही आदर्श प्रवृत्ति पुरुषों के अधीन रहना को उखाड़ फेंकती है। अपने जीवन में आए कँटीलेदार रास्तों को पार कर के आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है। इतना ही नहीं वह अपने मध्ययुगीन संस्कारों की खोज से बाहर आकर नए सिरे से नए तरीके से अपने और अपने आस-पास के परिवेश को समझना चाहती है। सदियों से यही पुरुष प्रधान संस्कृति का विरोध कर वह अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व के लिए लड़ाई लड़ रही है। परंपरागत संस्कृति और वर्तमान विचारधारा से उत्पन्न परिवेश अन्य परिवर्तनों को रेखांकित कर कथा-साहित्य में नारी जीवन के अनुभूति और कल्पित पक्षों पर क्रान्तिकारी अभिव्यक्ति के कारण मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी की संवेदना बनकर उभरे हैं। सीमोन वोडवा लिखती है- “पुरुष जान-बूझकर स्त्री

को बौना रखता है, स्त्री न देवी है न राक्षसी वह मानवी है, जिसे समाज की फूहड़ प्रथाओं ने दासता में जकड़ कर रख दिया।”⁽⁴⁾

“त्रिया हठ” में उन्होंने विलुप्त हुए एक स्त्री की पहचान के कटे-फटे अवशेषों को एकत्र करके उपन्यास को कई शीर्षक में तो बाँटा ही है, साथ ही बरजोर सिंह के मन और घर में जगह बनाती उर्वशी को डायन, चुड़ैल, रांड कहकर कोसने वाली मीरा की दादी भी स्वीकार कर लेती है। धनी मेरे पीछे हमारी देह नहीं मर जाती हम जानते हैं काये से की हमने खुद भुगता है। यह उपन्यास स्त्री के अधिकारों की बात उठाता है, चाहे वह जमीन में हिस्से की बात हो चाहे जीवन में। अपने उपभोग से त्रस्त उर्वशी बरजोर सिंह से यही तो चाहती है।

“तुमसे कोई वचन नहीं मांग रही न कोई धन दौलत चाहिए। बस मेरे साथ खड़े हो जाओ मुझे तुम्हारी जरूरत है।”⁽⁶⁾

उनकी रचना विधान नारी की संवेदनाओं से लबालब भरा है। उनकी नारी लोकतंत्र की मांग करती है, जहाँ स्त्री और पुरुष में किसी प्रकार का विभेद न किया जाय, जितना हक अधिकार पुरुष को अपने कार्य व कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने के लिए है, उतना ही स्त्री को मिलना चाहिए। “इदन्नम्” की नायिका मंदा में राजकिशोर युवा गाँधी को देखते हैं, उनका कहना है कि “सोनपुरा में मंदा की स्थिति बहुत कुछ ऐसी है जैसे दक्षिण अफ्रीका में युवा गाँधी रहती होगी। संघर्षों को समझना फिर छोटी-छोटी लड़ाईयाँ जीतते हुए अन्ततः सम्पूर्ण जन सामान्य को संगठित करके विद्रोह करना मंदा के जरिये मैत्रेयी की नेतृत्व क्षमता का सुन्दर ज्ञापन है।”⁽⁶⁾

मैत्रेयी पुष्पा का कहना है – “जेवर, गहना, बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं। अब तू मेरी खरीदी हुई।”⁽⁷⁾

वस्तुतः मैत्रेयी पुष्पा की उपन्यासों में नारी संवेदना की दशा जमीन का हिस्सा, बेरोजगारी, पंचायत चुनाव में महिला आरक्षण, डाक समस्या, ग्रामीण व्यवसाय एवं उनकी नैतिकता का सर्वाधिक मूल्यांकन किया गया है।

संदर्भ सूची :-

- 1) “मनुस्मृति” अध्याय-3, पृष्ठ संख्या - 56
- 2) “स्त्री संघर्ष और इतिहास” - गुप्ता रमणिका, सामयिक प्रकाशन दिल्ली- प्रथम संस्करण-2012
- 3) “कही ईसुरी फाग” - मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2004, पृष्ठ संख्या- 48।
- 4) “द सेकेण्ड सेक्स” सीमोन वोडवा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 2003, पृष्ठ संख्या - 301।
- 5) “त्रिया हठ” - मैत्रेयी पुष्पा।
- 6) “मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य एवं सत्य” - दया दीक्षित पृष्ठ संख्या - 18
- 7) “अल्मा कबूतरी” - मैत्रेयी पुष्पा - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 2000, पृष्ठ संख्या- 244।



ENVISIONING THE FUTURE OF OPEN AND DISTANCE LEARNING SYSTEM IN INDIA

-Ramshankar Varma

Assistant Teacher, Chemistry Departments,
S K Somaiya Junior College of Arts, Science and Commerce, Vidyavihar, Mumbai 400077

Abstract :-

Open and Distance Learning (ODL) system has been instrumental in enhancing the access to quality higher education in India. Over a period of the last thirty five years, ODL institutions have successfully changed the image of ODL to multimodal technology supported education, and have become a credible alternative to conventional higher education. In the coming years, challenges before ODL institutions especially on technology integrated education and quality concerns, will be immense. For sustenance and greater impact, ODL system will have to be transformed to a learner-centric approach, coupled with technology-enabled online education system. Transition towards online learning can overcome some of the biggest challenges faced by conventional higher education as well as ODL. With the greater emphasis on cost effective online education which is beyond the limitation of territorial jurisdiction, the ODL Institutions have to remodel their framework aligning with technology supported learning environment. For realizing the Online ODL institutions in near future, there is a need to have separate regulations or the existing regulations need amendments. Together, with synergy and an integrated approach, ODL institutions need to be converted into Centres of Excellence in Technology Supported Accessible Learning and this is the vision for reimagining ODL institutions in India.

Keywords :- Higher Education, Education for all, Technology enabled learning

Introduction :-

In the last 38 years, since the establishment of the first State Open University (SOU) in India, an alternate medium of Open and Distance Learning (ODL) has changed the canvas of higher education in the country. The success of Open and Distance Learning (ODL) system in the higher education scenario of our country is due to its technology acumen, accessibility and flexibility.

TRANSFORMATION OF OPEN AND DISTANCE LEARNING TO ONLINE LEARNING :

The Ministry of Human Resource Development, Government of India, is setting a target of GER of 40 per cent by the year 2024. With greater role to be played by the Open and Distance Learning (ODL) system, it is inevitable that the ODL system will have to be transformed to a learner-centric approach, coupled with technology-enabled online education system. The key factors in this transformation could be visualised as:

- Progression from conventional student support to ICT-based student support;
- Remodeling printed Self Learning Materials (SLMs) to Digital/SLMs;
- Face-to-Face Counseling to Four-Quadrant-based Support (e-tutorial, e-content, web resources and self-assessment);
- Three-tier Conventional ODL system to two-tier ICT-based Learner Support System;
- Training and capacity building for ODL system to online programmes/courses;

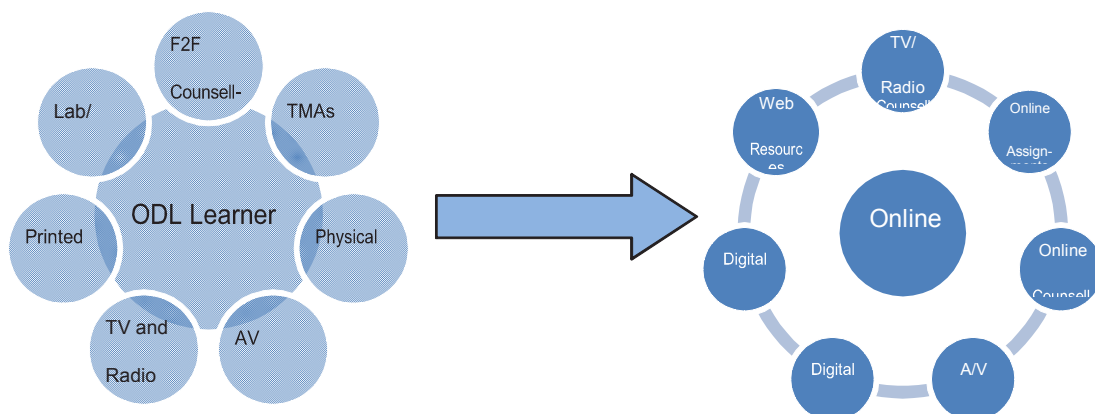
- Pen-paper system to Online Assignments and Examination Reforms;
- Shifting from Copyright Materials to Open Education Resources (OERs);
- Skill development through Physical Laboratories to Virtual Skill and Science Laboratories;
- Succession from ODL Regulations to Online/MOOC Regulations; and
- Periodical revision of programmes to continuous revision.

A diagrammatic representation of the transformation of ODL system is given in Fig. 1, wherein face-to-face counseling is augmented through audio-visual (AV) lessons, television and radio counseling (Gyandarshan and Gyan Vani), and online counseling. Printed Self Learning Material (SLMs) are transformed into digital SLMs with web resources and OERs. Physical libraries are replaced with virtual libraries and conventional tutor marked assignments and examinations have been replaced by online assignments and evaluations.

Conventional Student Support to ICT-based Student Support :-

For increasing access to education, the open universities as well as dual mode institutions need to think beyond conventional Learner Support Centres (LSCs). The management and operation of conventional LSCs requires dedicated manpower and regular monitoring since it has a sanctioned capacity to allocate learners as per UGC ODL Regulations. With greater emphasis on an increased learner base, it is imperative that ODL institutions will progress towards conventional student support to ICT-based student support. The key ingredients for this proposed transformation are presented here.

FIG. 1: TRANSFORMATION OF ODL TO ONLINE LEARNER



From Face-to-Face to TV/Radio (AV) COUNSELING :-

It will be an alternative to the conventional LSCs based face to face counseling. In the TV/ Radio based web counseling, the live lectures of the faculty of the university will be transmitted through TV channels and radio channels with option of live streaming through YouTube or Face Book. Subsequently, soft copies of these lectures maybe provided online for subsequent use of the students who could not participate in the web-based counseling. In other words, the face-to-face counseling may be replaced by ICT-based counseling. The extensive use of 24x7 educational TV channels i.e. Gyan Darshan and FM radio channels Gyan Vani will definitely add value to the web-based counseling. Besides, SWAYAMPRAKASH Channels of MHRD can suitably be tailored into offering electronic counseling to the learners of ODL mode.

Conventional LSCS AS Smart CLASSROOMS OR Digital LSCS :-

Conventional LSCs have limited infrastructure to cater to a sanctioned number of learners as per ODL Regulations. A systematic effort needs to be initiated in due consultations with the host institutions to upgrade the LSC infrastructure to convert into smart classrooms or digital LSCs.

The upgraded LSCs may require broadband connectivity, smart TV, digital board, satellite dish besides the infrastructure available at the conventional LSCs. Since Smart LSCs can cater to the increased number of

learners as compared to conventional LSCs, they will be helpful in increasing the learner base of the ODL mode institutions. The only limitation of smart classrooms is internet connectivity and hence conventional LSCs may continue at all those far flung and difficult areas where digital connectivity is a major concern. The EQUIP report of the MHRD estimates that by 2023-24, additional 3289 conventional and 1647 smart classrooms or digital LSCs will be catering to the increased load of learners @1000 learners per conventional LSC and @ 2000 learners per smart room-based LSCs.

Technological Intervention in ADMISSION i.e. Online ADMISSIONS :-

Technological interface has two basic advantages: transparency and cost effectiveness. The ODL institutions will move towards complete automation of the admission system by integrating the online payment gateway system. A robust online admission system with cloud server support will be capable of managing the increased load of the potential applicants for the admission in the ODL system. Admission confirmations, Digital Student Identity Cards and all the post admission related information will be provided to the students through this system. The entire online admission system will also be offered through a learner friendly app for facilitating admission at the doorstep. The ODL institutions should visualise and develop a dedicated common online admission framework integrated with all the open universities' admission system.

TRANSITION from Conventional LIBRARIES to Digital LIBRARIES :-

In the conventional ODL system, the access to learning resource through libraries is principally at two places i.e. Central Library at the institution itself and library at the regional centres. However, the ODL institutions also need to make a concerted effort to provide access to libraries at the learner support centres Limited access to latest editions of books and journals and shrinking budgetary provisions are two main reasons for the detachment of ODL learners with the libraries. With progressive integration of technology, learning resources are now available through digital libraries or digital laboratories in the form of text, images, social media files, audio and video files including e-books, online journals, etc.

The biggest advantage of digital libraries is that the digital content of learning resources can be housed centrally, say, at the ODL institutions itself, and the remote access could be given to all the LSCs for them to be interoperable, sustainable and cost effective! From the ODL point of view, these digital libraries don't require physical space and they are accessible 24x7, and their availability with multiple accesses and quick information retrieval make them ideal components for ICT-based student support.

Remodeling Printed Self Learning MATERIALS (SLMS) to Digital SLMS :-

For a sustainable environment, an effort would be undertaken by the open universities and dual mode institutions (HEIs) to transform their printed SLMs into the digital SLMs in a progressive manner. Learners should be encouraged and motivated to opt for digital SLMs. The digital repository of the SLMs should be made available in all the desired formats i.e. desktop, mobile, kindle, or as an app. The ODL learners will be able access SLMs through its dedicated e-content app.

To popularise the digital SLMs, open universities and other ODL institutions can consider offering some incentives to the students ranging from 10 to 15 per cent relaxation in the student fee for opting Digital SLMs. It is worth mentioning here that over one lakh students in the July 2019 session of IGNOU have opted for digital SLMs. If open universities and other ODL institutions shift towards digital SLMs, it is expected that, by the year 2030, more than 70 per cent of total students under the ODL system will be shifting towards digital SLMs. With the integration of technology in the ODL environment, digital SLMs would be integrated with audio/video lectures, Open Education Resources (OERs) and learner study pattern and progression framework. The most important aspect of this initiative would be less reliance over printed materials and reducing the usage of paper and thus contribute towards sustainable future and environmental protection.

Face-to-Face Conventional COUNSELING to Four QUADRANTS' BASED Support

The face-to-face counseling is an integral part of the conventional ODL student support framework. With a greater emphasis on increasing learner base and that too without compromising on the quality of instructions imparted to the learners, the ODL institutions in near future will transform into student-centric technology-enabled online learning environments with four basic quadrants (Fig. 2):

Online-Tutorial: Video and audio content, animation, simulations, virtual labs;

Online-Content: Portable Document Format or e-Books or illustrations; video demonstrations documents; and interactive simulations wherever required;

FIG. 2: THE FOUR QUADRANT MODEL

Web Resources: Related links, Open Content on Internet, Case Studies, Historical development of the subject, Articles; Online Assessment: MCQs, problems, quizzes, assignments and solutions, discussion forum topics, setting up the FAQs and adding clarifications on general misconceptions.

This initiative will certainly augment the capacity of open universities and ODL institutions to cope with the increased load of learners together with quality oriented and cost effective learner support environment.

EXAMINATION REFORMS THROUGH TECHNOLOGY

• Online Assignments :-

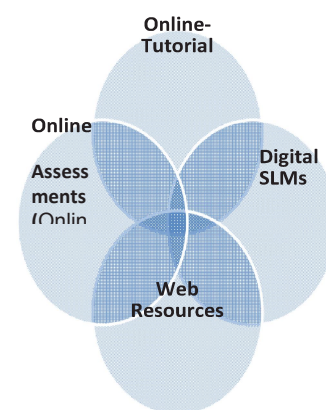
The tutor marked assignments are one of the essential components of continuous assessments of the evaluation methodology adopted by the ODL system. With the increasing base of learners over a period of years, management and evaluation of assignments have become a Herculean task and integrating the assignment marks/grades along with theory/practical examination in a time bound manner is real challenge for the educational administrators of the ODL institutions. ODL institution needs to think towards the technological interventions for online assessment of the assignments.

The online assignments can be hosted on the Learning Management System (LMS) of the university with facility for computer marked assignments (MCQ based questions) and online submission of assignments (essay-based questions) on the LMS with plagiarism check facility and its evaluation on the LMS itself. This transparent system facilitates tutors for marking the assignments as per its convenience and students get tutor comments and marks/grades on the assignments on the LMS itself. The integration of assignment marks together with marks of year/semester end examination becomes a hassle-free exercise.

• Other Digital Technologies :-

Besides admissions, the examination system also needs complete overhauling because of increased student load witnessed by the ODL institutions. Again, with the intervention of technology, there will be increased efficiency and transparency in examination process. A dedicated online examination registration system with electronic payment gateway system facilitates a hassle-free examination registration process for the students. The system also has provision for photo and signature enabled examination ticket. It facilitates the university towards a logical allotment of students to examination centres and its monitoring.

To further enhance confidentiality and secrecy in the examination system, digital delivery of question papers (encrypted question papers) with password protection is being explored. Through this, safe and secure delivery of the digital question papers can be ensured at the examination centres. To further enhance the monitoring of the proctored examination of the students, CCTV based examination monitoring can be explored. Another aspect of the examination system, which also needs technological interventions, is the evaluation of answer scripts of the



students. Online marking of answer scripts is one such example. Many conventional universities have already implemented the system of online evaluation and open universities need to seriously think about adopting it. In this, the answer scripts are scanned through high speed scanners and then transmitted digitally to the designated examiner/evaluator.

The concerned examiner evaluates the answer scripts digitally and marks are transmitted and recorded in the tabulation system for preparation of results. ODL institutions can also brainstorm towards developing an online evaluation methodology starting with online programmes offered by them. It could be on the pattern of online evaluation methodology practiced in the SWAYAM/ NPTEL courses for online examination.

TRAINING AND CAPACITY BUILDING FOR ONLINE PROGRAMMES/COURSES :

The open universities and dual mode institutions can develop their respective strategies for offering online programmes, subject to fulfilling the conditions as laid down in the University Grants Commission (Online Courses or Programmes) Regulations, 2018, and its amendments. The most challenging aspect of offering online programmes is lack of trained human resource – both at the teaching level as well as the technical and administration level. Concerted effort is needed through collaboration amongst the open universities and other ODL institutions for training and capacity building programmes.

The ODL should identify the training needs and accordingly, specialised institutes such as Staff Training and Research Institute of Distance Education (STRIDE) of Indira Gandhi National Open University (IGNOU) or similar training institutes can prepare tailor made training programmes for capacity building of teachers and academic administrators for online programmes/courses and its related support services. It would be more apt to say that development and training and capacity building framework for Online Programmes is the need of the hour. Another good option could be SWAYAM based courses exclusively designed on capacity building for online programmes with a certification process. The capacity building programmes could include the following suggested areas:

Transition from printed SLMs to digital SLMs including e-books;

- Integration of OERs with SLMs;
- Development of audio/video lectures;
- Live counselling through TV and Radio;
- Practical counseling through virtual labs;
- Computer based assignments/assessments (MCQs, quizzes etc);
- Online proctored examinations

Three-Tier Conventional ODL system to Two-Tier ICT-based Learner Support System

The Role of Regional Centres (RCs) in the three tier ODL system framework is tremendous as they act as the first contact point of the potential students and students remain associated with the RCs throughout their ODL journey. It is highly imperative that regional centres should be revitalised as Centres for Diverse Learning Environment or as Mini University Campuses within the University. Rather, the role of regional centres can be visualised as Model Online Learning Centres (MOLCs) wherein all the facets of synchronous and asynchronous learning environment could be created. In the near future, these MOLCs will be replacing the conventional LSCs and thus converting the three-tier ODL system to a two-tier Online Learning system.

Transition from Copyright Materials to Open Education Resources (OERs) :-

The present era higher education environment is surrounded by cost effective technology and collaboration for educational resources. Open Education Resources (OERs), which are available in public domain both in digital and non-digital modes and have tremendous potential for teaching, learning and research. The true potential of OERs is yet to be realised for educational benefits by the ODL institutions. The open universities and ODL institutions can collaborate towards developing the learning resources for OERs and utilising the existing OERs for integration

with respective SLMs. This approach will have twin benefits, the first being availability of updated and revised learning materials and secondly collaborated SLMs without copyrighted materials, thus facilitating the sharing amongst the ODL institutions. The OERs can benefit the ODL institutions in many ways. The are:

1. Extending access to learning and thus reaching the unreached;
2. Flexibility to modify the contents of the course/ programme in cost effective manners;
3. Upgradation and augmentation of existing course materials;
4. Rapid propagation of information and learning contents;
5. Cost effective learning resources for the students; and
6. Regular revision of course materials

All the above positive advantages of OER-based learning materials will reduce the cost of offering ODL education and thus make the ODL mode of education accessible and equitable.

CONCLUSION :-

In this era of Information and Communication Technology, it is in the fitness of the purpose for the ODL institutions to integrate technology into all its domains and make sincere efforts towards providing technology enabled learning environments. ODL system will have to be transformed to a learner-centric approach, coupled with technology-enabled online education system. Transition towards online learning can overcome some of the biggest challenges faced by higher education vis a vis ODL system.

Apart from this, technology enabled ODL will help in combating other challenges of traditional ODL system i.e. huge expenditure in printing and distribution of SLMs; conducting examinations; and delay in delivery of SLMs to the students. Since the receipt of SLMs is first point of commencement of learning process in the ODL system, delays or incomplete receipt of SLMs can hamper the objective of effective and efficient learner support system. The digital SLMs can overcome these challenges of printed SLMs and physical examinations as well. The second biggest advantage of online technologies is developing a culture of collaborative framework of ODL institutions for design, development and sharing of resources for digital technologies and thus making it cost effective too. The only challenge that one can foresee is its adaptability in the heterogeneous group of learners and accessibility related issues due to connectivity problems.

Together, with synergy and an integrated approach, ODL institutions need to be converted into Centres of Excellence in Technology Supported Accessible Learning and this is the vision for reimagining ODL institutions in India.

References :-

1. GoI (2019). AISHE Final Report 2018-19. Accessed from <http://aishe.nic.in/aishe/view>
2. UGC (2018). Online Courses or Programmes Regulations, 2018, University Grants Commission. Accessed from https://www.ugc.ac.in/pdfnews/7553683_Online-Courses-or-Programmes-Regulations_2018.pdf
3. UGC (2018). Online Courses or Programmes Regulations, 2018, University Grants Commission (Open and Distance Learning) Regulations, 2017. Accessed from <https://ugc.ac.in/oldpdf/regulations/distance%20education%20regulations.pdf>
4. UGC(2019). Annual Report 2017-18. Accessed from <https://www.ugc.ac.in/pdfnews/3060779>
UGC(2020). Annual Report 2018-19. Accessed from <https://www.ugc.ac.in/pdfnews/3060779>



वर्तमान संदर्भ में कबीर काव्य की प्रासंगिकता

—रूपम कुमारी

शोधार्थी, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

किसी काव्य की प्रासंगिकता का अर्थ वर्तमान के संदर्भ में उसकी उपादेयता का सिद्ध होना है। इसलिए कबीर काव्य की प्रासंगिकता से अभिप्राय उसका आज के समाज के लिए समीचीनता एवं उपादेयता से है। कबीर जिस काल में अवतरित हुए उसमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक समस्याओं की बहुतायत थी। ऐसे भयंकर समय में शील एवं मर्यादा का घोर अभाव था। इसलिए उन्होंने औपचारिक बंधनों एवं मर्यादाओं का अतिक्रमण कर जीवन की गहराइयों में गहरे पैठकर उन तत्वों को अन्वेषित किया जिसके लिए ना तो बाह्याडंबरों की जरूरत थी और ना किसी भी प्रकार के सांप्रदायिक पूर्वाग्रह की। बल्कि उन्होंने निष्पक्ष भाव से जीवन के सत्यानुभवों को बड़े ही गंभीरता एवं चिंतन-मनन के साथ अभिव्यक्ति दी।

आज मनुष्य-मनुष्य के बीच की सौहार्द भावना जिस तरह समाप्त हो रही है और जिसके लिए मनुष्य विवश और बेचैन है। आदमी-आदमी को आदमी रूप में ना देख कर उसे जाति, वर्ग, कुल, संप्रदाय जैसे संकुचित एवं सीमित दायरे में देखने लगा है। धर्म एवं राजनीति को इस सीमा तक प्रदूषित कर दिया गया है कि उसमें जितनी आध्यात्मिकता एवं उदात्तता की शक्ति थी वह पूर्णतः खंडित होती हुई प्रतीत होती है। तब हमें अपने अतीत के चिंतकों साहित्यकारों की विचारधाराओं की स्मृति होने लगती है जो हमारे मार्गदर्शक रहे हैं। कबीर को इस संदर्भ में पुनः स्मरण करने की आवश्यकता है। कबीर ने जीवन और जगत की वास्तविकताओं को पहचाना और जाना भी था। उनका युगबोध और आत्मबोध दोनों अत्यंत सूक्ष्म, तत्वपूर्ण एवं विस्तृत था। उन्होंने जो उपदेश दिए हैं वे दूसरों के नहीं अपितु उनके जीवन से छनकर निकली हुई अनुभूति है। उनके नैतिक मूल्य बाहर से ओढ़े हुए लबादे नहीं बल्कि उनके जीवन के निष्कर्ष हैं। उनके साहित्य में जो नैतिक तत्व हैं वे संपूर्ण जन-जीवन की सोद्देश्यता की ओर प्रेरित करने वाले हैं उन्होंने जो चेतावनियां दी हैं वे सदैव समाज के लिए कल्याणकारी हैं। कल भी थी, और आज भी है।

आज हमारे समक्ष जो कालखंड है और इसकी प्रासंगिकता का अर्थ कल के कालखंड से जुड़ा रहना है, क्योंकि समय निरंतर प्रवाहमान है और कुछ सामाजिक-धार्मिक समस्याएं भी ऐसी हैं जो काल खंडों में बंटकर परंपरागत रूप धारण किए हुए हैं कबीर के आविर्भाव के 500 वर्षों से अधिक के अंतराल के बाद भी ऐसा लगता है कि उनकी उपादेयता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। जाति-भेद, वर्ण-भेद, धार्मिक कटरता, अंधकार मोहलिप्सा, अंतः से अधिक बाह्य चमक-दमक आदि अनेक ऐसी ही विसंगतियां एवं उलझने समाज में ज्यों की त्यों पूर्ववत् व्याप्त हैं। इन्हीं विसंगतियों एवं समस्याओं को केंद्र में रखते हुए कबीर को वर्तमान संदर्भ में देखना आवश्यक है।

कबीर के काव्य में सामाजिक, धार्मिक एवं सांप्रदायिक विसंगतियों एवं समस्याओं को हुबहू देखा जा सकता है। उन्होंने इन समस्याओं और विसंगतियों के निर्मूलन हेतु जो वाणी प्रस्फुटित की वह आज के संदर्भ में उतनी ही जीवंत एवं उपयोगी सिद्ध होती है जितनी वह अपने समय में थी। इसलिए इन्हीं समस्याओं, विसंगतियों के आधार पर कबीर की प्रासंगिकता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखेंगे-

वर्ण व्यवस्था :-

जिस युग में कबीर का आगमन हुआ उसमें सामाजिक जन-जीवन अस्त व्यस्त था। चारों ओर सामाजिक एवं नैतिक जीवन कुत्सित और खोखला था। देश की जनता इनसे त्राहि-त्राहि पुकार रही थी। उन्होंने स्वयं वर्ण-व्यवस्था की कटुताओं को झेला था। कबीर साहब मध्यकाल में ब्राह्मण व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के सबसे बड़े नेता माने जाते हैं। उन्होंने जिस तरह ब्राह्मण व्यवस्था के गढ़ काशी में रहकर उस व्यवस्था पर प्रहार करते रहे, यह अति सराहनीय माना जाता है। यहां के ब्राह्मणों ने तपस्थली को ब्राह्मण और क्षत्रिय तक ही सीमित कर दिया था। कबीर साहब ने इसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने वहां, 'हरिजन सई न जाति' भक्त के समान कोई दूसरी जाति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि जो भक्त है, वह यदि अस्पृश्य है, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। उन्होंने भक्ति के हथियार से वर्णाश्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया। वे नया मूल्य स्थापित करते हुए कहते हैं-

‘जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहने दो म्यान।।
हस्ती चाड़िए ज्ञान कौ, सहज दुलीचा डारि।
स्वान-रूप संसार है, भूंकन दे झक मारि।।’¹

कबीर का मानना था कि अगर भगवान को वर्ण-व्यवस्था करना होता तो वो जन्म से ही तीन विभाजक खींच देते। इसलिए उत्पत्ति की दृष्टि से समस्त जीव समान है।

‘जौ पै करता बरण बिचारै।
तौं जनमत तीनि डांडी किन सारे।।’²

कबीर ब्राह्मण को जाति-पाती बांटने का जिम्मेदार मानते हुए कहते हैं कि -

‘लिखा, लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।
दुल्हा-दुलिहन मिल गए, फीको पड़ी बारात।।’³

मूर्ति पूजा का विरोध :-

कबीर के समाज में मूर्ति पूजा प्रचलित थी जो आज तक चली आ रही है। धर्म के ठेकेदारों ने ईश्वर को मंदिर-मस्जिदों तक ही सीमित कर दिया था। वे यह भूल गए कि मूर्ति तो साधन-मात्र है। उन्होंने साधन को ही साध्य बना डाला था और यह स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि जितने मानव उतने ही उनके देव हो गए। ऐसे में कबीर ने जनता को भ्रमजाल से निकालकर सचेत करते हुए पत्थर की मूर्तियों को पूजने को निरर्थक सिद्ध कर दिया। वो कहते हैं-

‘पाहन कूं का पूजिय, जे जनम न देइ जवाब।
आंधा नर आसामुखी, यो ही खौबे आव।।’⁴
‘पात्थर ही का देहुरा, पात्थर ही का देव।
पूजणहारा अंधरा, लगा खोटी सेव।।’⁵

वेशभूषा छापा-तिलक का विरोध :-

कबीर ने लोगों के बाह्याचारों पर जो कुठाराघात किए वे तर्कसंगत एवं युक्ति-युक्त है। इस कारण कबीर के बखान के सम्मुख लोग निरुत्तर हो जाते थे। उनके यही उपदेश एवं व्याख्यान पहले की तरह आज भी ज्यों के त्यों लोगों पर लागू होते हैं। आज भी कबीर के उन उपदेशों एवं विचारों की जरूरत है। आज भी लोग जगह-जगह पर ऐसे मिल जाते हैं जो छापा, तिलक, माला, जटा, त्रिशूल, जनेऊ आदि धारण करते मिल जाएंगे लेकिन उनका अंतःकरण अपवित्र एवं दूषित होता है। हाल ही के दिनों में आसाराम, रामरहीम जैसे लोग उदाहरण के तौर पर देखे जा सकते हैं। ऐसे लोग जनता को भ्रम में डालकर छलते हैं। कबीर ने ऐसे लोगों की बड़ी ही निर्भीकता पूर्वक कलाई

खोली है।

‘उज्ज्वल देखि न धीजिए, बग ज्यूं माडे ध्यान।
धीरे बैठि चपेटसी, यूं ले बूड़े ज्ञान।।’⁶
‘कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिले न कोई।
लालचि लोभी, मसखरा, तिनकूं आदर होई।।’⁷

हिंदू-मुस्लिम : साम्य भावना :-

इस्लाम धर्म मध्यकालीन भारतीय समाज का एक अंग बन चुका था। यहां का अन्न और पानी बाहर से आए मुसलमानों में रक्त बनकर संचरित हो रहा था। ऐसी दशा में उन्हें भारतीय समाज से पृथक कर देना संभव नहीं था। फलस्वरूप हिंदू और मुसलमान में एकता लाने का जो प्रयास भारतीय संतो ने किया है उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता है। संत कबीर इसी बात को लक्ष्य करते हुए दोनों ‘हिंदू-मुस्लिम) को ही भला बुरा कहते हैं-

‘कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी राह चलि भाई।
हिंदु तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई।।’⁸
‘रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक राम जपहुं रे, हिंदू तुरक न कोई।।’⁹

वस्तुतः अंधविश्वासी, पापाचारी, कपटाचारी, दकियानूसी, परंपरावादी, बुद्धिहीन लोगों की कमी नहीं है। वे हर समय हर युग में रहे हैं। आज भी ऐसे रूढ़िवादी अंधविश्वासियों, कलहवादियों एवं जाति-वर्ण के आधार पर परस्पर ईर्ष्या, द्वेष रखने वालों की एक बहुत बड़ी भीड़ मिल जाएगी जो अपने आगे किसी साधुजन के विचारों को आत्मसात् करना तो दूर उसे सुनना भी पसंद नहीं करते। कबीर ऐसे लोगों को सचेत करते हुए एक तत्व, एक सत्ता, एक ही परमपिता परमेश्वर की पहचान को लोगों के दिलों-दिमाग में बैठाने की कोशिश करते हैं। इसलिए आज के धार्मिक वैमनस्य के दौर में कबीर के विचार प्रासंगिक है।

वेद, शास्त्रों, पुराणों की उपेक्षा :-

मध्ययुगीन समाज वर्गों में विभक्त था। समाज के तथाकथित नेता आज ही की तरह भिन्न-भिन्न वर्गों को बढ़ावा दे रहे थे और साथ-साथ विभिन्न धर्म-ग्रंथों को आधार बनाकर उस वर्गीकरण को आवश्यक एवं धर्म-संगत बतलाकर पारस्परिक वैमनस्य की भावना को बढ़ाने में लगे थे। धर्म के ठेकेदारों ने स्वनिर्मित पाखंडों एवं आडंबरों का उत्तरदायित्व भी धर्मग्रंथों पर छोड़ दिया जिसके कारण सामाजिक विश्रृंखलता ही नहीं बढ़ रही थी अपितु बाह्याचारों तथा नाना विधानों से लोगों का समय व्यर्थ के झमेलों में व्यतीत हो रहा था। उस समय की जनता भी शिक्षित ना होने के कारण इन धर्मावलंबियों के व्याख्यानों को सुनकर उनकी अनुगामी बनी हुई थी। संत कबीर वेद, पुराण, पढ़ने वाले पंडितों पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं-

‘वेद पुराण पढ़े का क्या गुनु, खर चंदन जस भारा।
राम नाम की गति नहिं जानी, कैसे उतरसि पारा।।’¹⁰
‘पंडित वेद पुराण पढ़ें, औ मौलाना पढ़ें कुराना।
कहे कबीर वे नरक गए, जिन हिरदय राम न जाना।।’¹¹
‘तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता हूं आखिन देखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू रहता उरझाय रे।।’¹²

समाज सुधार की भावना :-

कबीर के अनुसार व्यक्ति को सदाचरणशील और गुणवान होना चाहिए जिससे वह समाज में अपने इन गुणों

के कारण समाज को परिष्कृत एवं परिमार्जित कर सके। जिस प्रकार चंदन वृक्ष अपने पास स्थित आक और पलाश को अपने जैसा कर देता है।

‘कबीर चंदन का बिड़ा, बैठया आक पलास।

आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास।।’¹³

कबीर का मानना था कि समाज में समस्त मनुष्य समान है न कोई ऊंचा है न कोई नीचा, अपितु सभी सम्मान के पात्र हैं। हम सभी में एक ही तत्व की प्रधानता है अतः एक-दूसरे के प्रति मतभेद या वर्ग वैषम्य की भावना नहीं होनी चाहिए। उन्होंने स्त्री-पुरुष में भी किसी को न ऊंचा कहा ना नीचा बल्कि स्त्री या पुरुष दोनों मनुष्य के ही दो रूप हैं। कबीर कहते हैं-

‘जेते औरत मरदां साजे, यह सब रूप तुमारे।

कबीर पूंगरा राम अलह का, सब गुरु पीर हमारे।।’¹⁴

कबीर के अनुसार समस्त मनुष्य एक ही गर्भ में से निकलते हैं तब फिर कौन कहां से ब्राह्मण और शूद्र हो गया? गर्भ के अंदर ना कोई जाति है और ना कोई कुल, सभी एक ही ज्योति से (ब्रह्म बिंदु) से निकलते हैं-

‘गर्भ बास में कुल नहीं जाति।

ब्रह्म बिंदु से सब उत्तपाती।।’¹⁵

आज 21वीं सदी के विश्व में भारत जहां अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है, वहां स्थानीय समस्याएं, नस्लवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, संप्रदायवाद के दौर में एक ‘समग्र भारतीय व्यक्तित्व’ के रूप में कबीर हमारे व्योम में ज्वल्यमान नक्षत्र है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के लिए लिखा है- ‘वे मुसलमान नहीं थे। हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे भगवान के नरसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नरसिंह की भांति असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन बिंदु पर अवतरित हुए थे, जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर भक्ति का मार्ग।’¹⁶ कबीर साहब भारतीय परंपरा में आज जुझारू प्रेरणा के प्रतीक हैं एवं मानवता तथा भारतीयता के सच्चे पोषक हैं। कबीर को सही मायने में समझने के लिए कबीर तुल्य बनना होगा- ‘जो घर जारे अपना चले हमारे साथ। वे मानवता के महान निर्माता थे। डॉ. राहुल के शब्दों में- ‘कबीर आज भी एक ऐसे नाद है जो सुनी जा रही है, और भविष्य में भी सुनी जाती रहेगी।’¹⁷

संदर्भ सूची :-

1. कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक- हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई पृष्ठ - 297
2. श्यामसुंदर दास (क.ग्रं.) प्रकाशक- इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग पृष्ठ - 132
3. कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 324
4. श्यामसुंदर दास (क. ग्रं.) पृष्ठ- 34
5. वहीं, पृष्ठ - 34
6. वहीं, पृष्ठ- 38
7. वहीं, पृष्ठ- 28
8. पूरा कबीर संपादक- बलदेव वंशी, पृष्ठ- 219
9. वहीं, पृष्ठ- 255
10. श्यामसुंदर दास (क. ग्रं.) पृष्ठ- 302
11. वहीं, पृष्ठ- 104
12. कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 168
13. श्यामसुंदर दास (क. ग्रं.) पृष्ठ- 39
14. वहीं, पृष्ठ- 203
15. वहीं, पृष्ठ- 201
16. कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 181-182
17. कबीर- आधुनिक संदर्भ में- डॉ. राहुल, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 8



महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' में नारी व्यथा

– डॉ. आशा देवी

शिक्षा विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय रीजनल सेंटर, बठिण्डा।

शोध सारांश :

आधुनिक मीरा कही जाने वाली महादेवी वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में 23 मार्च सन् 1907 में हुआ था। उनके नाना बृज भाषा के कवि एवं भक्ति प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनकी माता जी धार्मिक प्रवृत्ति की आदर्श महिला थी। सूर, तुलसी और मीरा की रचनाओं का ज्ञान उन्हें अपनी माता से हुआ था। बचपन से ही महादेवी वर्मा को कविता से प्रेम था। मात्र आठ वर्ष की अवस्था में उन्होंने ब्रज भाषा में कुछ कविताएँ लिखीं थी परन्तु मैथिलीशरण गुप्त की खड़ी बोली की रचनाओं से प्रभावित होकर उन्होंने खड़ी बोली में कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया था। पद्य के समान ही गद्य पर भी उनका विशेष अधिकार था उनके संस्मरणों में व्यक्त नारी व्यथा में मानवीय सहानुभूति की संवेदना पाठक के अन्तर्मन को झकझोर देती है। अतीत के चल चित्र में वर्णित विभिन्न नारियों की व्यथा को गंभीरता से व्यक्त किया है।

मुख्य शब्द: – अतीत के चल चित्र नारी व्यथा।

महादेवी वर्मा ने अपनी स्मृति में बसे नारी चित्रों की व्यथा का वर्णन अतीत के चल चित्र में मार्मिकता से किया है। अतीत के चल चित्र में उन्होंने दीन-हीन दलित, विधवा स्त्रियों, बाल विधवा एवं गरीबी में जीती दलित स्त्रियों को प्रस्तुत किया है। समाज में नारी चाहे संभ्रान्त परिवार की हो या दलित, दीन-हीन परिवार की हो शोषित ही होती है। उसके शोषण का ढंग बदल जाता है। अतीत के चल चित्र में चित्रित सभी नारी पात्रों के जीवन की यहीं विडम्बना है कि वे सभी विधि एवं सामाजिक विधान द्वारा सताये गये हैं। कभी प्रतिष्ठा के नाम पर कभी दलित होने के कारण परिवार और समाज द्वारा घोर यातनाएँ सहनी पड़ती है। 'अतीत के चलचित्र' में चित्रित सभी नारी पात्रों को पीड़ा को उन्होंने अत्यन्त निकटता से देखा है उन्होंने उन अनुभवों की पीड़ा को मार्मिकता से व्यक्त किया है।

विधवा का अभिशाप :-

'भाभी' बाल विधवा के प्रति महादेवी वर्मा की अत्यन्त आत्मीयता है। उनके साथ होने वाले व्यवहार की कटुता बड़ी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त की है। पति की मृत्यु का सारा दोष 'भाभी' को दिया जाता है। विधवा के कड़े नियम उन पर थोपे गये हैं जबकि भाभी को नियमों के पालन करने का ज्ञान भी नहीं है बल्कि सामाजिक कुप्रथा का अभिशाप लेकर उन्हें जीवन जीने के लिए विवश किया गया है। विधवा होने के कारण 'भाभी' को न किसी से मिलने की इजाजत है न स्वतन्त्र हवा में सांस लेने की स्वतन्त्रता है। उनके रहने के कमरे का वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखा है "उसमें न एक भी झरोखा था, न रोशनदान, न एक भी नौकर दिखायी देता था, न अतिथि न, एक भी पशु रहता था, न पक्षी, मेरे लिए एक आकर्षण बनने लगा। उस समाधि जैसे घर में एक लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी-साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के मानो निरंतर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।" विधवा जीवन को समाप्त करने के लिए एक बार अल्प भोजन दिया जाता था

वस्त्रों के नाम पर सफेद ओढ़नी वाला लहंगा ही था। वर्ष के सभी 12 महीने एक ही क्रम था। विधवा के जीवन में पर्वत्योहार रंग आदि सभी मानवीय क्रियाओं का कोई स्थान नहीं होता है। हँसना, खेलना आदि एक बार बाल सुलभ रंगों के प्रति आकर्षण भाभी को हरी ओढ़नी उढा दी। यह देखा भाभी की नन्द ने तब तक भाभी की पिटाई की गई जब तक वे बेसुध न हो गयीं। इस घटना का बालिका महादेवी के मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने जीवन से रंगों को निकाल दिया एक मात्र सफेद रंग उनके जीवन का रंग रहा है। ऐसा उन्होंने लिखा है। भाभी पर किये जा रह अत्याचार उनके मन मस्तिष्क में अमिट रूप में बस गये थे। मातृ-पितृ विहीन बाल विधवा भाभी को तिल-तिल मृत्यु की तरफ धकेला जा रहा था ताकि ससुर जी बहू की मृत्यु का पुण्य प्राप्त कर अपना जन्म सुधार सकें।

सौतेली माता का अत्याचार :-

‘बिंदा’ संस्मरण में मातृ विहीन बालिका की व्यथा के मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। “मैली धोती लपेटे हुए बिंदा आंगन से लेकर चौके तक फिरकनी सी नाचती दिखाई देती है। उसका कभी झाड़ू देना, कभी आग जलाना, कभी नल से कलसी में पानी लाना, कभी अम्मा को दूध का कटोरा देने जाना आदि सभी कार्य मुझे बाजीगर के तमाशों जैसे लगते थे। जबकि उस अवस्था में उन्हें खेलना और खाना ही आता था।”² घर के सभी कार्य करती थी नन्ही सी बालिका महादेवी वर्मा ने बिंदा की शारीरिक स्थिति का वर्णन करती हुई लिखती हैं “दो पैसों में आने वाली खँजड़ी के ऊपर चढ़ी हुई झिल्ली के समान पतले चर्म से मढ़े और भीतर की हरी-हरी नसों की झलक देने वाले उसके दुबले हाथ-पैर न जाने किस अज्ञात भय से अवसन्न रहते थे” शारीरिक स्थिति के साथ मानसिक भय से भी भयभीत रहती है। विमाता का अत्याचार अबोध बालिका के मन पर इतना भयावह है कि विमाता की आवाज कानों में पड़ते ही वह थर-थर काँपने लगती है, उसकी भयावह स्थिति पिंजड़े में बंद चिड़िया की तरह है। जो हर समय अज्ञात भय से भयभीत रहती है। विमाता के अत्याचार का एक उदाहरण दृष्टव्य है-चूल्हे पर चढ़ाया दूध ऊनता जा रहा था बिंदा ने नन्हें-नन्हें हाथों से दूध की पतीली उतारी परन्तु वह गर्म दूध उसके पैरों पर गिर गया’ गर्म दूध की जलन से पीड़ा नहीं थी, दुख-दर्द नहीं था परन्तु विमाता की सजा से भयभीत थी। जले हुए पैरों पर सूखी घास की पत्तियाँ भी डर के कारण रेशमी बिछौना लग रही थी। यहाँ सामाजिक व्यवस्था पर व्यग्र एवं पीड़ा दोनों दिखायी देती है कि पण्डित जी पत्नी की मृत्यु के पश्चात पुनः विवाह कर नई अम्मा की व्यवस्था कर लेता हैं परन्तु बिंदा पर विमाता का अत्याचार नहीं दिखायी देता है। माँ की मृत्यु के साथ ही पिता का प्यार भी बिंदा को नहीं मिलता है। अंततः बिंदा विमाता के अत्याचारों को सहन करते हुए चेचक का शिकार हो जाती है। विमाता का भय अबोध मन में इतना बैठ जाता है कि वह माता से कहती हैं आप तारा न बाधय नहीं तो नई अम्मा आ जायेगी और उनकी स्थिति भी बिंदा जैसी हो जायेगी।

परित्यक्ता पत्नी :-

समाज में परिव्यक्ता स्त्री की दशा अत्यन्त दयनीय होती है। ‘सबिया एक दलित स्त्री है उसका पति सबिया का परित्याग कर अन्य स्त्री के साथ विवाह कर नयी गृहस्थी बना लेता है। अपनी अंधी माँ और दो बच्चों की जिम्मेदारी को छोड़ दिया। घर परिवार की आर्थिक स्थिति उसने जर्जर है सबिया अपनी अंधी सास और बच्चों के लिए भोजन जुटाने की व्यवस्था के लिए काम तलाश करती है और अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करती है। सबिया मन की साफ, पवित्र चरित्र की स्त्री है अपने सतीत्व की रक्षा करती है। परन्तु समाज का पूर्वाग्रह उसके पति को जिम्मेदार नहीं मानता है बल्कि सबिया को ही दोषी ठहराता है। लेखिका ने लिखा है “कोई उसको झककी कहता है परन्तु मुझे उसमें काम करने की धुन की झक के सिवा कुछ नहीं दिखायी पड़ता है।”³ कर्तव्य परायणता उसमें कूट-कूट कर भरी हुई है पति ने माँ बच्चे सभी छोड़ दिए अपनी पुरुष वासना की तृप्ति के लिए एक नयी जाति भाई की पत्नी को पत्नी बना लेता है सबिया को कोई-शिकायत नहीं है अपनी किस्मत को ही जिम्मेदार मानती है। दृष्टि में सभी बच्चे हैं सबसे पहले वह अंधी सांस को खाना खिलाती है तत्पश्चात् बच्चों का खाना खिलाती है। उसकी शिकायत न पति से है न

किसी आलोचक से है अपने भाग्य को दोषी मानती है।’

सबिया की सहनशीलता एवं पति भक्ति का वर्णन करते हुए वे लिखती हैं कि “सौतन के साथ घर में रहने के लिए इसलिए मान जाती है क्योंकि पति दुःखी न हो और स्वयं गेंदा सौत के प्रत्येक अत्याचार को सहती है”। इतने अंगारों से भरे जाने पर भी इसके वात्सल्य का अंचल दूसरों को छाया देने में समर्थ है। यह जैसे अपने नादान बच्चों के उत्पात की चिंता नहीं करती, उसी प्रकार पति की हृदयहीनता, सपत्नी के अनुचित व्यंग्य और सास की अकारण भर्त्सना पर भी ध्यान नहीं देती है। उसके निकट मानो सब बच्चे हैं।”⁵ परित्यक्ता और दलित होने के कारण संभ्रान्त समाज भी उसे हेय दृष्टि से देखता है सच तो यह है ‘सबिया पौराणिक सावित्री का पर्याय है जिसमें जीवन की सीमा रेखा किसी अज्ञात लोक तक फैला दी थी।’⁶ सबिया दलित जाती से है। दलित पुरुष भी पुरुष प्रधान मानसिकता से ग्रहत है। सबिया में वह सभी स्त्री सुलभ गुण हैं जो हर विवर्तित को सहकर भी अपने पतिवृत्य धर्म का पालन करती है। पति को सर्वस्व मानकर तिल-तिल जलकर जीवन जीना भी अपना भाग्य समझ रही है। समाज में परित्यक्ता होना एक अभिशाप है। सबिया के लिए दो अभिशाप हैं एक सौत दूसरा परित्यक्ता। सबिया इन दोनों दुःखों को बिना कहे झेल रही है।

बाल विधवा का अभिशाप :-

‘बिट्टो’ संस्मरण में बाल विधवा की दुःखद वास्तविकता है बिट्टो माता-पिता विहीन बाल विधवा है। एक के बाद एक कुर प्रहार बिट्टो की जिंदगी के साथी हैं। “भाभियों के प्रहार से दिन-प्रतिदिन बिट्टो का शरीर शिथिल होता गया और मन भी टूट गया। ज्वर रहने लगाए बेहोशी के दौर आने लगे। किसी में क्षय के लक्षण बताये किसी ने मृगी रोग, दोनों का लंका संक्रामक थे। अंतः भाभियों ने बिट्टो के विधवा विवाह के लिए भाईयों को तैयार कर दिया। अब तो विधवा विवाह होने लगे है।” बिट्टो के लिए 54 वर्ष के वृद्ध वर का प्रबन्ध किया गया। अतः बिट्टों का पुनः विवाह कर दिया गया। महादेवी वर्मा ने व्यंग्य करते हुए लिखा है “जिस समाज का 64 वर्ष का व्यक्ति 14 वर्ष की पत्नी चाहता है वहाँ 32 वर्ष की बिट्टो के लिए विधवा विवाह का प्रश्न जटिल था।” परन्तु बिट्टो के पुण्यफल से 54 वर्ष के बाबा ने उद्धार का बीड़ा उठाया।”⁷ महादेवी वर्मा लिखती हैं विधवा के प्रति समाज, परिवार का संवेदनहीन व्यवहार विधवा स्त्री की व्यथा को बढ़ाने एवं उसे असमय मृत्यु की तरफ ढकेल परन्तु बिट्टो के पुण्यफल से 54 वर्ष के बाबा ने उद्धार का बीड़ा उठाया।”⁷ महादेवी वर्मा लिखती हैं विधवा के प्रति समाज, परिवार का संवेदनहीन व्यवहार विधवा स्त्री की व्यथा को बढ़ाने एवं असमय मृत्यु की तरफ ढकेल देता है। पुरुष अपनी धूर्तता से विधवा स्त्री को अनेक विषम परिस्थितियों और समाज के संकीर्ण बंधनों में धर्म की दुहाई देकर बाँध देता है। उसके लिए मुट्ठी भर अन्न भी भारी पड़ता है। पुरुष की मृत्यु होने पर सारा दोष स्त्री के कर्म और भाग्य को देकर विधवा के जीवन को नरक बनाने का प्रेय किसी पुरुष को देने की हिम्मत यह संकीर्ण पुरुष नहीं कर सकता है।

पुरुष की धोखे का शिकार बालिका माँ :-

‘बालिका माँ’ बाल विधवा माँ को लोक लाज के भय से बच्चे का त्याग करने के लिए विवश किया जा रहा है परन्तु वह अपने बच्चे को नहीं छोड़ना चाहती है। बालिका माँ को इस दयनीय स्थिति में पहुँचाने वाला पुरुष विधवा को माँ बनाकर समाज के समक्ष घोरतम नरक में छोड़ कर चला गया। ‘बालिका माँ का कोई पुरुष यदि अपनी पत्नी स्वीकार नहीं करता है। तो क्या केवल इस भय से वह अपने बालक को त्याग देगा।’⁹ विधवा बालिका माँ को संभ्रान्त परिवार समाज के भय से छोड़ देता है परन्तु माँ अपने शिशु का पालन-पोषण करती है। महादेवी वर्मा ने पुरुषों के अत्याचार पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि “यदि स्त्री साहस करके कह सके कि बर्बरो तुमने सब ले लिया पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी।”¹⁰ वह अपने बच्चे को खोना नहीं चाहती है लेखिका से सहायता की माँग करती हुई कहती है।” दिन में एक बार रूखी-सूखी रोटियाँ, उतरे हुए कपड़े पहन लेगी। जब बच्चा बड़ा हो जायेगा

तब जो काम बता देगी वही तन-मन से करती वह जीवन बिता देगी।”¹¹ वह समाज के भय से भयभीत है। वह लेखिका के पास रहकर अपना जीवन बिताना चाहती है। ममत्व उसकी व्यथा भी है विवशता भी है। व्यथा और विवशता को ढाल बना कर जीना चाहती है। समाज की विकृति पुरुष मानसिकता ने विधवा को विधवा माँ बना दिया परन्तु परिवार लोक लाज का भय दिखाकर वात्सल्य का त्याग करने के लिए विवश कर रही था परन्तु उस विकृति मानसिक पुरुष को कोई न समाज का भय दिखा पा रहा है न ही समाज की नंगी व्यवस्था पर बोलने के लिए तैयार है बल्कि विधवा माँ का परित्याग कर पुनः विकृति समाज व्यवस्था का अंग बनने की जल्द बाजी है। ऐसे समाज में कोई न कोई विधवा किसी पुरुष की वासना की आग में जलकर अपना जीवन जलाती रहेगी। इस विकृति मानसिकता का मुकाबला नारी को अपने वात्सल्य बल से करने की ताकत देती है वे कहती हैं नारी को स्वयं को शक्तिशाली बनाना होगा अन्यथा यह भ्रष्ट व्यवस्था बलपूर्वक उनसे त्याग करवाती रहेगी।

बहिष्कृत समाज की पतिव्रता पत्नी :-

‘अभागी स्त्री’ बहिष्कृत पतित समाज की पुत्री है लेकिन साधवी स्त्रियों के गुणों से युक्त है। उसमे समाज के प्रवेश पत्र के बिना पतिव्रता स्त्रियों की सूची में अपना नाम लिखा लिया है परन्तु ससुराल वालों ने उसे स्वीकार नहीं किया है। दुर्भाग्य से पति बीमार पड़ गया। उसके पास पति का ईलाज करवाने के लिए न पैसा है न कोई व्यवस्था है। स्वाभिमानी अपनी माँ के पास न जाना चाहती है न ही माँ की दी मदद स्वीकार है। पति की बीमारी में वह सब कुछ बेचकर ईलाज करवाती है परन्तु पति की मृत्यु हो गयी। महादेवी वर्मा ने स्त्री को इस स्थिति में पहुँचाने वाले समाज पर प्रश्न किया है “उसे पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है, जिससे छूकर वह वह जिस स्त्री को सती कह देता है, केवल वहीं सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है।”¹² यह माता, पत्नी, पुत्री आदि उपाधियों से रहित जीवन मुक्त नारी-मात्र हैं। वे लिखती हैं वह अबोध स्त्री समाज के जटिल नीतिशास्त्र को नहीं समझती है। जब करुण शब्दों से वह कहती है ‘क्या मैं पवित्र नहीं हूँ’ इन शब्दों में अथाह व्यथा दिखायी पड़ती है जो अपराध उसने किया ही नहीं उसकी सजा दी जा रही है। “ससुर से आंचल फैलाकर दीनता से कहा- घर में कई नौकर-चाकर हैं। मेरे लिए दो मुट्ठी आटा भारी न होगा। मैं भी आप सबकी सेवा करती हुई पड़ी रहूँगी।”¹³ यह सुनकर ससुर कहते हैं ‘क्या लेकर आयी थी वही लेकर चली जाओं’ उस पर किसी करुणा नहीं आयी स्वयं महादेवी वर्मा लिखती हैं कि संभ्रान्त और लोक भय के भार से इतना दब गयी कि उसकी पतिव्रता कार्यनिष्ठा को देखकर भी न देख सकी। कैसी समाज व्यवस्था है पति की मृत्यु के पश्चात संभ्रान्त विधवा बनकर एक निष्ठ भाव से परिश्रम कर जीवन जी रही है।

दरिद्रता का अभिशाप :-

‘लछमा’ पहाड़ी लड़की है। माता-पिता अत्यन्त दरिद्र थे। अभावों एवं कष्टों की सहती हुई अपने परिवार का पालन-पोषण करती है। लछमा पर माता-पिता भाई और दो बच्चों की जिम्मेदारी है। उसकी आर्थिक स्थिति का बहुत कारुणिक वर्णन द्रष्टव्य है “शीत सहते सहते ओठों पर फैली नीलिमा, रात-दिन दौड़ते-दौड़ते पैरों में और घास काटते-काटते और लकड़ी तोड़ते-तोड़ते हाथों में जो कठिनता आ गई है, उसे मिट्टी और गोबर की आर्द्रता ही कुछ कोमल कर देती है।”¹⁴ माता-पिता की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण लछमा का विवाह एक अल्प बुद्धि बालक के साथ कर दिया गया। ससुराल में देवर-जेठ के तरह-तरह के अत्याचार सहकर भी वह अपना अधिकार नहीं छोड़ती है एक दिन देवर जेठ उसको इतना पीटते हैं कि वह बेहोश हो गई और उसे मृत समझकर खड्डे में छिपा दिया गया। होश आने पर वह किसी तरह अपने माता-पिता के पास पहुँचती है। अपने ऊपर हुए अत्याचारों को वह अपने सम्बन्धियों को नहीं बताती है। शरीर पर लगी चोट के निशान को ‘पहाड़ी से गिर गयी थी’ बताकर अपनी ससुराल की लाज बचाती है। ससुराल के अत्याचार का मार्मिक वर्णन किया है “उसकी हड्डी ढीली हो गई है। कुछ देर बैठने

से रीढ़ का दर्द व्याकुल कर देता है और खड़े रहने से घुटनों में चिलक उठती है।'¹⁵ इतने अत्याचार सहकर भी दुख में स्थित है।

पति के प्रति श्रद्धा और सम्मान का भाव है। स्वार्थ और लालच से दूर है। पति के लिए रहने का, खाने का प्रबन्ध करेगी स्वयं कष्ट सह लेगी। विवाह के बंधन को जीवन भर निभायेगी। वह अपने माता-पिता, भतीजा-भतीजी के साथ पति की जिम्मेदारी के प्रति समर्पित है परन्तु ससुराल नहीं जाना चाहती है क्योंकि देवर-जेठ संपत्ति के लालच में मार डालेंगे। दरिद्रता और दहेज दोनों लछमा के जीवन की विडम्बना है। दरिद्रता के कारण अल्प विकसित बुद्धि के साथ विवाह कर दिया गया। कहीं न कहीं दरिद्रता और दहेज न होने के कारण उसका जीवन दुखद हो गया। यदि दरिद्रता न होती तो विवाह सम्पन्न परिवार में होता। भारतीय समाज में यदि पुरुष सम्पन्न परिवार से है तो विवाह की समस्या नहीं होती। यदि स्त्री गुणों युक्त है दरिद्रता है तो योग्य वर नहीं मिलेगा। संपन्नता पुरुष के दुर्गुणों को ढक देती है उसके विवाह की योग्यता ही संपन्नता है विवाह की अनिवार्यता के लिए लड़की का सर्वगुण सम्पन्न होना आवश्यक है। तो पुरुष के लिए यह अनिवार्यता क्यों नहीं, समाज को अपनी सोच बदलनी चाहिए ताकि स्त्री के जीवन को बचाया जा सके।

निष्कर्ष-

‘अतीत के चलचित्र’ संस्मरण में वर्णित सभी नारी पात्रों का वर्णन निकटता के अनुभवों से किया है। यह सभी पात्र किसी न किसी रूप में उनके जीवन का भाग रहे हैं। विधवा, बाल-विधवा, दलित नारी अथाह पीड़ा से गुजरती है और पीड़ा, संत्रास उनके जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है। समाज की मानसिकता इनके प्रति पूर्वाग्रह युक्त होती है। स्त्रियों की स्थिति में आज भी अधिक परिवर्तन नहीं आया है। आज भी समाज विधवाओं के प्रति संवेदनशील नहीं है। महादेवी वर्मा ने उन सभी के प्रति स्नेह सहानुभूति करुण दिखायी है। विधुर पुरुष एक पत्नी के मृत्यु के पश्चात दूसरी पत्नी खिलौने की तरह ले आता है। इस विवाह के कुपरिणाम सौतेली माँ के रूप में संतान को झेलने पड़ते हैं जैसे कि बिन्दा को। कहीं न कहीं स्त्री की पीड़ा और कुंठा ही होती है। अतीत के चलचित्र में चित्रित सभी नारी पात्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। समाज का उनके प्रति असंवेदनशील व्यवहार पाठक को झकझोर देता है और समाज की सदियों से चली आ रही रूग्ण व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिए व्याकुलता पैदा कर देता है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.28
2. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.35
3. वहीं, महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 37
4. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 42
5. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.46
6. वहीं, पृ. 47
7. महादेवी वर्मा, बिट्टो, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 52
8. वहीं, पृ. 52
9. महादेवी वर्मा, बालिका माँ, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.58
10. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.59
11. वहीं पृ. 59
12. महादेवी वर्मा, अभागी स्त्री, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.74
13. वहीं, पृ.77
14. महादेवी वर्मा, लछमा, अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.99
15. वहीं, पृ. 101



HIGHER EDUCATION IN INDIA

Nature and Trends

-Dr Bhupender Singh

Associate Professor, Head Of Deptt. Commerce Faculty, Bareilly College Bareilly

Introduction :-

Higher education is one of the most important catalyst of socio-economic development and transformation of the society that has attracted the attention of the planners policy makers and leaders . it is also considered as the most crucial component in human resource development.. It creates manpower for national growth and development . Higher education is regarded as a process of empowerment through the imparting knowledge , skills and values of the individual. It is also the process of developing human ability and behaviour It is the key that can open the doors of the development and prosperity of the individuals and the society . The aim of the higher education is to achieve multiple developments and enlightenment of mind , enhancing knowledge , broadening of vision and character building which can be beneficial to the individuals as well as to the society and the nation at large.

Higher education institutions play a key role in the generation, transfer and application of new knowledge, They produce trained manpower required for industry , agriculture administrations , services and all other sectors. The role of these institution in nation building and societal formation is very crucial and all pervasive .Higher education , is no longer a luxury , but it is essential for survival.

The quality and quantity in higher education , both require better academic and physical infrastructure as well as adequate financial resources.

Growth of Higher Education In India :-

The present system of higher education in India has its roots in European institutions and model especially in British Model. After independence the Govt of India promoted education as an important instrument of social change and development . The Govt of India in 1948 appointed the University Education Commission known as Radhakrishnan Commission to offer suggestion for enabling the Indian universities to meet the new responsibilities The commission felt that all universities should be constituted as autonomous bodies and they should be teaching institution rather than affiliating types.It also suggested that UGC should be reconstituted and should be set up for allocation of funds.

The Education Commission of 1964-66 known as Kothari Commission reviewed Indian education in a comprehensive way and the new education policy was framed on the recommendations of Commission. Further Various Commission were formed for the development of higher education in India. The New Education policy 1992 has very clearly defined the importance of Higher Education as below :-

“Higher Education provides people with an opportunity to reflect on the critical social, economic, cultural moral and spiritual issues facing humanity. It contributes to national development through specialized knowledge and skills,” The Chairman of the University Grants Commission , Sukhdeo Thorat (2006) has stated that the focus of higher education in India during the 11th Five Year Plan will be to provide quality education to the students from all sections of the society including the poor and the minorities, The universities will be encouraged to develop

courses in a manner to promote values of secularism, multiculturalism, scientific tempers etc.

In 2005 -06 there were 356 universities and 17625 colleges as compared to 20 universities and 500 colleges at the time of Independence in India. The number of students also grown from 2.37 Lac to 105 Lac in 2006 There were 4.72 Lac teachers imparting higher education in the higher education sector. It is interesting that the number of girl students is increasing in the higher Education institutions of India due to the world social uprising and empowerment of women. Further, in order to finance the expansion of higher education, the Govt Of India has consistently increased its share in the total expenditure on higher education.

At the time of independence, only 14 % of the population in India was literate but now as per census literacy rate is 74%. No doubt this shows a considerable progress in the field of education in the country especially after independence. The funding of higher education by the Government deliberately or otherwise is on the decline, with the motive of encouraging private sector participation. In India Govt has given permission to enable the other countries for opening their universities on Indian soil and enrol Indian students to their institutions. On the other hand, Indian Universities will open campus in other countries so as to admit the students belonging to these countries. Though India has moved to open- up its higher education to private participation but public universities will remain the key players in it.

The Challenges :-

In this era of globalization and liberalization of the 21st century, India is undoubtedly becoming progressively more integrated into the global economy with the restructuring of economy, new trade and industrial policies, the Indian industry is exposed to domestic and global competition. In such a situation. the role of higher education becomes all the more important and crucial. There is no denying the fact that India has made a tremendous progress in the field of higher education especially after independence. The higher education system has been doing a commendable job with all its limitations in fulfilling its role as a powerful tool for socio-cultural, economic and political change and development in the country. It is a source of new knowledge, research and manpower generator for all sectors of the society.

In today's world of high competition and high technology. high quality education is necessary for the survival as well as socio-economic development of a nation. But during the past few decades, not much has been done in improving, modernizing and re-orienting our higher education system to suit the varied socio cultural, economic and political changes and developments that have been taking place in our society.

The major challenge before the Indian higher education system today is to create new strategies, policies and programmes of revolutionary nature that would lead to the qualitative improvement, equality and involvement of all people in the process of development. Our higher education system also suffers from ambiguity, multiplicity and incompatibility of objectives. It lacks clarity of purpose and fails to evolve priorities which, in turn, affects its performance adversely. The courses offered by most of our higher education institutions are archaic, rigid and irrelevant to meet the emerging needs and challenges of the 21st century. Today our institutions are over-crowded with the students who do not know even the purpose for which they have come to these institutions. The main objectives of these students are to get the degrees which is the basic requirement for any kind of job. The enrolment of a large number of unmotivated and undedicated students because of liberal and unrestricted admission policies has led to decline the standards of our higher education. Further our examination system is also quite defective because it encourages selective study and practise of model papers study discourages innovative teaching, serious and sustained study. Besides this, the increasing trend of mass copying in the examination nullifies the basic objectives of teaching and examination.

The most undesirable development that has taken place after independence in our higher education system is the entry of party politics. our universities and colleges have almost become the instruments of political advancement.

Politicization of unions of students, teachers and non teaching employees in the name of democracy has turned our campuses into battle fields of rival political parties and groups.

Higher education in India is facing challenges, not only in producing quality manpower but also scholars of excellence. The universities in India seem to be far behind the universities in terms of academic standards and research. Our country needs top class research based university in order to compete successfully in the knowledge driven world of the 21st century.

Further, higher education in India is in financial stress. India is spending about 4% of its GDP on education, This is below the internationally accepted average of 6%. Further only 1/10th is being spent on higher education. The inadequate investment on higher education sector adversely affects the quality of education system. On the whole, the problem of increasing number of students, under-prepared and non serious students, indifferent teachers, reduced resources, inadequate coordination between different stages of education, distancing education from social needs and manpower requirements have deprived the Indian Higher Education of quality.

The Remedies :-

The general conditions of higher education system in India is a matter of great concern for all of us and requires restructuring and revamping in the era of globalization and liberalization. Keeping in view the deficiencies of the existing system of higher education there is a danger of its becoming obsolete and irrelevant. It becomes imperative for us to make higher education more purposive and effective. To achieve this objective, it would require immediate corrective measures to make it more meaningful and up to date. The higher education system should be prepared to respond adequately to the emerging challenges of 21st century.

Today higher education, besides its basic functions of teaching and training has to promote development of personality and to prepare responsible and informed citizens committed to work for the betterment of the country. With the advancement of knowledge and explosion of information technologies there would be knowledge based society. In order to compete with the best in the world, it is necessary for our higher educational institutions to upgrade the academic curriculum, strengthen the financial position and physical infrastructure, improve quality and accessibility, appoint scholar teachers etc.

The bulk of employment opportunities has now shifted to non-Government sectors as employment opportunities have shrunk in Govt. sectors. The conventional education in Arts Science and Commerce does not totally fit into the high tech market-driven economy. The streams of higher education therefore, need to be diversified to job and employment oriented courses.

Higher educational institutions should be well equipped with the basic minimum infrastructural facilities like buildings, classrooms, laboratories, libraries and adequate qualified teaching staff. It becomes mandatory that only persons of high academic and intellectual calibre should be appointed on the basis of merit through impartial and objective recruitment procedure. The teachers appointed on caste, communal, regional can never raise the standard of higher education. Yet another step can be adopted to improve our existing examination system by a continuous evaluation and internal assessment by the teachers.

The university campuses should be depoliticised and it be banished from the higher education institution and there should be no political interference in the functioning of these institutions.

The overcrowding in the higher educational institutions should be checked by restricting admissions to only those who have genuine interest in higher studies and do not join these institutions merely to pass time or involvement in student politics.

In nutshell, we may conclude that higher education in India has to turn as an important index of human development, a vital tool for intellectual, cultural and aesthetic development and a means for achieving the socio economic development. It also must keep pace with the fast emerging educational and occupational trends

around the world. The renewal of higher education is essential in the phase of globalization, our country has to develop its higher education system according to rapidly changing scenario and to meet the challenges of twenty first century.

The government has embarked upon reforming the regulatory bodies governing higher education in the country in keeping with the upcoming challenges and fulfilling the needs of the future.

References :-

1. Ram Chandra Dheer (2004) “Globalisation of Higher Education in India”.
 2. Dayanand Dongaokar “Higher Education in India The Varied Dimensions”.
 3. Report of education Commission 1964-66.
 4. Govt. Of India The new educational policy 2020.
 5. K B Pawar 1995 “Higher Education in India Historical perspective , Present status and outlook for the future.
 6. D N Sahaya “Our country needs world class research based universities”.
 7. Mithlesh Kumar Singh “Challenges Globalisation on Indian Higher Education”.
- Dr Bhavna Jharta



महाकवि पाश के साहित्य में क्रान्ति धर्मिता तथा सामाजिक चेतना

—डा० परमजीत कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बरेली कालेज, बरेली।

पाश सत्तर के दशक में पंजाबी काव्य जगत का रोशन सितारा थे। वह अपने समाज और धरती से जुड़े धरतीपुत्र थे। अवतार सिंह, संधू 'पाश का जन्म 9 सितम्बर 1950 में तलवंडी सलेम जिला जालंधर में हुआ था। उन्होने केवल 15 साल की आयु में काव्य लेखन आरम्भ कर दिया था। 'पाश' की कविताओं का प्रथम प्रकाशन 1967 में हुआ था। पाश की विचारधारा आरम्भ से ही फासिस्टवाद के विरुद्ध थी। यह अद्भुत संयोग है कि 'पाश' की शाहदत का दिन भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारी नायक के शहीदी के दिन 23 मार्च को ही है। पंजाबी के इस महान कवि की महज 39 वर्ष की आयु में 23 मार्च 1988 को उनके ही गांव में खालिस्तानी आतंकवादियों ने गोली मारकर हत्या कर दी थी। पाश की विचारधारा धार्मिक संकीर्णता के विरुद्ध थी। वैचारिक क्रान्तिधर्म होने के कारण 'पाश' को आधुनिक भगतसिंह की उपमा भी दी गई है। वस्तुतः भगतसिंह तथा पाश दोनों की ही शहादत राजनीतिक तथा सांस्कृतिक एकता का अनूठा संगम है। भगत सिंह तथा उनके साथियों ने एक ऐसे भारतीय समाज का स्वप्न देखा था, जो दमन, अत्याचार, शोषण तथा अन्याय जैसे मानव विरोधी मूल्यों से सर्वथा मुक्त हो तथा जहाँ सत्ता किसानों तथा मजदूरों के हाथों में हो।

भारतीय जनता के गौरवशाली संघर्ष के कारण राष्ट्र को 15 अगस्त 1947 को स्वाधीनता प्राप्त हुई लेकिन इस स्वाधीनता का लाभ चंद राजनेताओं, पूंजीपतियों तथा विशेष वर्ग के लोगों को ही प्राप्त हुआ। गिरे अंग्रेजों की जगह विशेषधिकार प्राप्त काले अंग्रेजो ने ले ली। देश नव्य पराधीनता के जाल में फंस चुका था। यहाँ तक कि 70 के दशक में भारत के शासक वर्ग के खिलाफ जनअसंतोष प्रखर हुआ। साहित्य समाज का दर्पण होता है। इस जनअसंतोष की अभिव्यक्ति साहित्य तथा संस्कृति में भी हुई। उस दौर में पंजाबी साहित्य के क्षेत्र में जिन नई पीढ़ी के कवियों ने पंजाबी कविता को नवीन रूप प्रदान किया उनमें 'पाश' अग्रणी पंक्ति में थे।

वस्तुतः पाश की कवितायें तत्कालीन इतिहास बोध की कविताएं हैं। यह उस दौर का साहित्य है जो हमारे राष्ट्र का, उस समय का जटिल संक्रमण काल था। पाश की कविताओं की जो लय है, वह मूलतः पंजाबी लोकसाहित्य की वाचिक परम्परा, वहाँ के जनसंघर्षों के सुदीर्घ इतिहास की लोक स्मृति, वहाँ की माटी की खुशबू, वहाँ की नदियों-नृत्य गीतों से ग्रहण की गई है। लेकिन साथ-साथ पाश की रचनाधर्मिता में भारतीय जनमानस की स्मृति, परम्परा एवं समकालीन जीवन की गति का द्वंद भी है। पाश उन कवियों की तरह नहीं थे जिनकी पुस्तकों की सूचियाँ लचर व्यवस्था की विडंबनाओं की तरह लम्बी हो लेकिन कम होते हुए भी वह पाठकों के हृदय में रची-बसी हैं न तो वह अपनी कविताओं में अलंकृत शैली तथा शब्दों का ही प्रयोग करते हैं, जिसे समझने में पाठक को कोई दिक्कत हो वरन उनकी लेखनी में सपाटबयानी है, जो सीधे-सीधे पाठक वर्ग के मर्म स्थल पर आघात करती है। वो स्वीकारते हैं-

“मैं शायरी में क्या समझा जाता हूँ
जैसे किसी उत्तेजित मुजरे में
कोई आवारा कुत्ता आ घुसे।”

पाश की प्रथम कविता 1967 में छपी थी। अमरजीत सिंह चंदन के सम्पादन में भूमिगत पत्रिका ‘दस्तावेज’ के चतुर्थ अंक में परिचय सहित पाश की कविताओं का प्रकाशन पंजाबी साहित्य के क्षेत्र में धमाके की तरह था। उन दिनों पंजाब में क्रांतिकारी संघर्ष अपने उभार पर था। पाश भी इससे अछूते नहीं थे। पाश का गाँव तथा इलाका इस संघर्ष के केन्द्र में था। उन्होंने इसी संघर्ष की जमीन पर कविताएं रची तथा इस जुर्म में दो वर्ष तक कारावास का दंड भोगते हुए, सत्ता के दमन का मुकाबला करते हुए ढेरों कविताएं लिखीं। वहीं रहते हुए उनका प्रथम काव्य संग्रह ‘लोककथा’ प्रकाशित हुआ। 1972 में जेल से रिहा होने के बाद पाश ने ‘सिआड’ नाम की साहित्यिक पत्रिका निकाली। पंजाबी लेखकों तथा संस्कृति कर्मियों को एकजुट तथा संगठित करने के प्रयास में पाश ने ‘पंजाबी साहित्य-सभ्याचार मंच’ का गठन किया तथा अमरजीत चंदन, हरभजन हलवारही आदि के साथ मिलकर ‘हेमज्योति’ पत्रिका निकाली। इस दौर की पाश की कविताओं में भावनात्मक आवेग के स्थान पर विचार एवं कला की ज्यादा गहराई है। 1974 में उनका दूसरा कविता संग्रह ‘उड़डे बाजा मगर’ छपा तथा तीसरा संग्रह ‘साडे समियां विच’ 1978 में प्रकाशित हुआ था। उनकी मृत्यु के पश्चात ‘लड़ेगें साथी’ शीर्षक से चौथा संग्रह आया जिसमें प्रकाशित एवं अप्रकाशित कविताएँ संकलित हैं। उनका हिन्दी कविता संग्रह में ‘बीच का रास्ता नहीं होता,’ ‘समय ओ भाई समय’ तथा ‘हम लड़ेगें साथी’ मुख्य है।

पाश ने कभी भी सत्ता का शोषण स्वीकार नहीं किया-

“हाथ यदि हो तो
जोड़ने के लिए ही नहीं होते
न दुश्मन के सामने खड़े करने के लिए ही होते हैं
यह गर्दन मरोड़ने के लिए भी होते हैं।”

पाश ने आपातकाल के दौर में गाँव-देहात की दारिद्र्यता से जूझ रहे आम लोगों का दर्द बयाँ करते हुये लिखा है-

“जिन्होंने देखे हैं
छतों पर सूखते सुनहरे भुट्टे
और नहीं देखा
मंडियों में सूखते दाम
वे कभी न समझ पाएंगे
कि कैसी दुश्मनी है
दिल्ली की उस हुक्मरान औरत की
नंगे पावों वाली गाँव की उस सुन्दर लड़की से”

पाश की कविताएं जीवन्त पंजाबियत का सम्पूर्ण दस्तावेज है। तत्कालीन पंजाब की बेटियों का दर्द ‘चिड़ियों का चम्बा’ (डार) में वह यूँ बयाँ करते हैं-

“चिड़ियों का चम्बा उड़कर कहीं नहीं जाएगा
यहीं कहीं इधर-उधर मेढ़ों पर घास खोदेगा,

और मैली ओढ़नियां भिगोकर लू से जले चेहरों पर फेरेगा
अकेले में रोया करेगा
शापित यौवनों के मर्सियें गाया करेगा।”

वैसे तो पाश की सम्पूर्ण रचनाधर्मिता सामान्य व्यक्ति के लिए तथा सामान्य व्यक्ति के दुःख दर्द की है लेकिन इन कविता में पाश ने सीधे-सादे ग्रामीण व्यक्तित्व का सम्पूर्ण खाका ही खींच दिया है जो कभी यह नहीं जान पाता कि वह शोषित समाज का हिस्सा है और उसकी छोटी सी दुनिया से इतर एक विशाल दुनिया भी है-

“वह बहुत देर तक जीता रहा
कि उसका नाम रह सके
उसने उम्र भर बस तीन ही आवाजें सुनी
एक मुर्गे की बांग थी
एक पशुओं के हांफने की आवाज
और एक अपने ही मसूड़ों में रोटी चुबलाने की
उम्र भर वह तीन ही रंगों से वाकिफ रहा
एक रंग जमीन का था जिसका कभी भी उसे नाम न आया
एक रंग आसमान का था जिसके बहुत से नाम थे।
पर कोई भी नाम उसकी जुबान पर चढ़ता नहीं था।

एक रंग उसकी पत्नी के गालों का था, जिसका कभी भी उसने शर्मते नाम नहीं लिया।”

पाश श्रम का बहुत सम्मान करते थे। शोषण और श्रम की लूट का विरोध उनकी हर कविता में मिलता है। पाश ने तथा कथित लोकगायिकी तथा सतही किस्म की रोमांटिक एवं चाटुकारिता से लबरेज साहित्य का हर किस्म से विरोध किया है-

“शब्द जो राजाओं की घाटी में नाचते हैं
जो माशूक की नाभि का क्षेत्रफल नापते हैं
जो मेजों पर टेनिसबाल की तरह लुढ़कते हैं
जो मंचों की खारी धरती पर उगते हैं कविता नहीं होते।”
वहीं दूसरी तरफ युद्ध हमारे बच्चों के लिए कपड़े की गेंद बनकर आयेगा।
युद्ध हमारी बहनों के लिए कढ़ाई के सुन्दर नमूने लायेगा।
युद्ध हमारी बीबियों के स्तनों में दूध बनकर उतरेगा।
युद्ध बूढ़ी माँ के लिए नजर का चश्मा बनेगा।
युद्ध हमारे पुरखों की कब्रों पर फूल बनकर खिलेगा।”

जैसी शब्द रचनाएं रचकर पाश ने कविता को नवीन आयाम प्रदान किया है। बर्बर सन्नाटों को चीरते हजार कंठों से निकली आवाज ही पाश की कविता में शब्दबद्ध होती है। पीड़ित-शोषित जन के कंठों की ऊष्मा हम पाश की कविताओं में पाते हैं।

पाश की कविताओं में विषय-वैविध्य भरपूर है, किन्तु उनके केन्द्रीय भाव हमेशा एक है। तहजीव की आड़ में छुरे के इस्तेमाल को उन्होनें हमेशा दुत्कारा :-

“हम चाहते हैं अपनी हथेली पर कोई इस तरह का सच

जैसे गुड़ की चाशनी में कण होता है
जैसे मिलन के समय महबूब के होठों पर
कोई मलाई जैसी चीज होती है।”

इस अंदाज में अपनी बात वही कवि रख सकता है जिसे पता हो कि वह कहाँ खड़ा है और सामनेवाला कितने पानी में है:-

“जा, तू शिकायत के काबिल होकर आ
अभी तो मेरी हर शिकायत से
तेरा कद बहुत छोटा है।”

पंजाब में जब खालिस्तानी आतंकवाद अपने ऊान पर था बहुत से साहित्यकारों ने चुप रहने में ही भलाई समझी। ये वे साहित्यकर्मी थे जो तूफान के गुजर जाने का इन्तजार कर रहे थे। उस विषय दौर में भी पाश की कलम नहीं रूकी। अपनी सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता ‘सबसे खतरनाक’ में वह कहते हैं-

“मेहनत की लूट सबसे खतरनाक नहीं होती
पुलिस की मार सबसे खतरनाक नहीं होती
गद्दारी-लोभ की मुट्ठी सबसे खतरनाक नहीं होती
सबसे खतरनाक होता है
मुर्दा शांति से मर जाना
न होना तड़प का सब सहन पर जाना
घर से निकलकर काम पर
और काम में लौटकर घर जाना
सबसे खतरनाक होता है।
हमारे सपनों का मर जाना।”

धर्मान्ध आतंकवादी त्रासदी तथा तथाकथित धर्मगुरुओं पर व्यंग्यात्मक चोट करती हुई कविता ‘धर्म दीक्षा के लिए विनयपत्र’ की कुछ पक्तियाँ निम्नवत है :-

“मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु
मर्द बेचारा सिर पर नहीं रहा
मैं बहुत पगली रही हूँ अब तक
मेरे परिवार का जो धर्म होता था
मेरा उस पर भी कभी ध्यान नहीं गया।
मैं परिवार को ही धर्म मानने का कृप करती रही
मैं पगली सुन सुनाकर पति को ही परमात्मा कहती रही
- - - - -
तेरा बारूद रातों को रौनक बॉटता है
तेरा बारूद रास्ते से भटकों को राह दिखाता है
मैं तेरी आस्तिक गोली की पूजा करूँगी।
मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु और मर्द बेचारा सिर पर नहीं रहा।”

साठ तथा सत्तर के दशक में जब शिवकुमार बटालवी जैसे साहित्यकर्मी जन-मानस के समक्ष हारे हुए प्रेमी के मर्सिया प्रस्तुत कर रहे थे तथा कलावादी समीक्षक मै-मै' की रट लगाये हुए थे तब पाश पलायन की नहीं समस्या से जूझते हुए, हक की लड़ाई की बात करते है-

“हम लडेगें साथी उदास मौसम के लिये
हम लडेगे साथी गुलाम छांव के लिये
हम चुनेगें साथी जिंदगी के टुकड़े
हम लडेगें कि लड़े बगैर कुछ नहीं मिलता
हम लडेगें कि अब तक लड़े क्यों नहीं।”

“लोकतन्त्र’ को 70 के दशक में एक पार्टी की मुखिया ने अपने पॉव की जूती बना डाला तब एक सच्चे क्रान्तिधर्मा-जागरूक साहित्यकार की भोंति निर्भीक पाश यह ‘हमारा समय’ जैसी कविता रच बैठे-

“यह शर्मनाक हादसा हमारे साथ ही होना था
कि दुनिया के सबसे पवित्र शब्द ने
बन जाना था सिंहासन की खड़ाऊ
मावर्स का सिंह जैसा सिर
दिल्ली की भूल भूलैयों में मिमियाता रिता
हमें ही देखना था
मेरे यारों, यह कुफ हमारे समयों में होना था।”

पाश ने अपने प्रथम काव्य संग्रह का नाम रखा था ‘लौहकथा’। इस नाम को सार्थक करने वाली उनकी कविता है ‘लोहा’। कवि ने इस कविता में लोहे को इस कदर पेश किया है कि समाज के दोनों वर्ग सामने खड़े दिखते है। एक के पास लोहे की कार है तो दूसरे के पास लोहे की कुदाल। कारवाला पैसे के मद में चूर है, लेकिन कुदाल लिये हुए हाथ आक्रोश से भरे हैं। इन दो वर्गों में ‘पाश’ जिस अर्थपूर्ण अन्तर दिखाते है, वह यू हैं-

“मै लोहे की आँख से
दोस्तों के मुखौटे पहने दुश्मन
भी पहचान सकता हूँ
क्योंकि मैंने लोहा खाया है
आप लोहे की बात करते हो।”

पाश की कविताओं की भाव तथा बनावट ऐसी है कि पाठक पढ़ते-पढ़ते उसी में खो सा जाता है तथा जहाँ कविता समाप्त होती है वहाँ पाठक स्वयं को आशा की नई रोशनी से लबरेज़ पाता है अर्थात् उनका लेखन पाठक को मात्र युयुत्सु ही नहीं बनाता वरन् उसकी जिजीविषा को भी बल देता है-

“मै किसी सफेदपोश कुर्सी का बेटा नहीं
बल्कि इस अभागे देश के भावी को गढ़ते
धूल में लथपथ हजारों चेहरों में से एक हूँ
मेरे माथे पर बहती पसीने की धारों से
मेरे देश की कोई भी नदी बेहद छोटी है।
अभी मैंने उस्तरे नाइयों के

खंजरोँ में बदलने हैं
अभी राजों की करंडियों पर
मैने लिखनी है वार चंडी की।”

उन्होंने अपनी कविता ‘पुलिस के सिपाही’ से में स्पष्ट कहा है-

“मैं जिस दिन रंग सातों जोड़कर
इन्द्रधनुष बना
मेरा कोई भी वार दुश्मनों पर
कभी खाली नहीं जायेगी।”

लेकिन इसके लिए बेहद जरूरी है कि-

“मैं उस रोशनी के बुर्जी तक
अकेला पहुँच नहीं सकता
तुम्हारी भी जरूरत है
तुम्हें भी वहाँ पहुँचना पड़ेगा।”

‘पाश के हृदय में अपने वतन के प्रति कोमल भाव थे पर पाश इस भारत को किसी राजे-राजवाड़े का भारत नहीं मानते वरन पाश का वतन ‘भारत तो वंचक पुत्रों का राष्ट्र है और भारत को अपने लिए सम्मान मानने वाले पाश कहते हैं-

“भारत
मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द
जहाँ कहीं भी इस्तेमाल होता है
बाकी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं।

- - - - -

इस शब्द के अर्थ
किसी दुष्यन्त से सम्बन्धित नहीं
वरन खेतों में दायर हैं
जहाँ अनाज उगता है
जहाँ सेंध लगती है।”

पाश के लिखे साहित्य में गाँव की माटी की सोंधी-सोंधी महक है। उनकी कविताओं में बैल, रोटियाँ, हुक्का, गुड़, चाँदी रात, बाल्टी में झागवाला फेनिल दूध, खेत खलिहान सब अपने पूरे बजूद में जीते-जागते मिलते हैं। पाश के विषय में सबसे खूबसूरत बात यह भी है कि पंजाबी भाषा का कवि होने के बावजूद पूरी हिन्दी पढ़ी उन्हें अपना मानती है। पाश ने खुद भी कहा है कि :-

“मैं आदमी हूँ, बहुत छोटा-छोटा
कुछ जोड़कर बना हूँ।”

वे ताउम्र इसी छोटे-छोटे बहुत कुछ को बचाने की जिद में और इसी बहाने इंसान को इंसान बनाए रखने की ललक में लहलुहान होते रहे। वे अकेले कवि है जिनकी कविताओं ने जितना प्यार है, उतना ही आक्रोश भी। पाश ने अपनी हत्या से 10 वर्ष पूर्व लिखी कविता में अपनी सामाजिक भूमिका का उल्लेख करते हुए अपनी अन्तिम परिणति

का जिक्र किया था-

“तुम यह सब भूल जाना मेरे दोस्त
सिवाय इसके
कि मुझे जीने की बहुत लालसा थी
कि मैं गले तक जिंदगी में डूबना चाहता था
मेरे हिस्से का भी जी लेना मेरे दोस्त
मेरे भी हिस्से का जी लेना।”

सन्दर्भ सूची :-

1. Pash-Biography Profile
2. बीच का कोई रास्ता नहीं होता www.google.com
3. साहित्य। सत्याग्रह।
4. जिरह : साहित्यिक वेब पत्रिका
5. पाश www.newsstate.com
6. पाश। परिचय-कविता कोष
7. पाश : काव्य चर्चा। www.amarujala.com
8. 'हमारा समय' - [ganveshi Blogspot.com](http://ganveshi.blogspot.com)
9. कविता कोष में पाश।



जेंगेत् जाकात् दरबार रे संताली पारसी

-Sabana Rahman

Assistant Professor, Mahatma Gandhi College Purulia, West Bengal.

नोवा जेंगेत् जाकात् रे 600 गान जानाम पारसी मेनाक् आ। पारसी दाइमाकाइ बर्ति 30 हजार (अकोय कोवाक् लायते 5 लाख) पारसी जानाम काते रेहं बा टिकाव आकाना। पारसी साइसिया को मोनेयेदा-नाहाक् चलतान 600 पारसी मुदरे जासती पारसी गे हापेन आद दाइयाक् आ। पारसी बाबोतते मानोतान कोवाक् काथा लेकाते डॉ. भोलानाथ तिवारी दोय मेन आकादा 'पारसी दो अना साधन काना जांहा दाराय ते आबो वोन उयहारा। आर आबोआक् बिचार को बोन सदरा। ओनकागे डॉ. बाबुराम साकसेना दय मेन आकादा जांहा आइ चिन्हा दारायते मानवाको निजेर तालारे बिचार को एपेम चापाला ओनागे पारसी दोको मेताक् काना। पारसी दो जांहा ओजे तेगे सिरजन आकान, आसल काथा दो हुयुक् काना ओना पारसी पारचाव। संताली पारसी रेनाक् दो सानाम लेकान गुन कँ हँ मेनाक् आकादा। आर ओल तोल लागित जथात लिपि हँ मेनाक् आ। जेंगेत् जाकात् पारसी को रेयाक् बिनिशिड़ी दो अतनोक् (ळमवहतंची)

लेकाते पुन हाटिं रे मेनाक् आ।

1. आफरिका खन्ड
2. आमेरिका खन्ड
3. इउरेसिया खन्ड
4. प्रसान्त महासागरीय खन्ड।

नोवाको खन्ड मुदरे इउरेसिया पारसी धरोजं रे मेनाक् अस्ट्रो, सियाटिक मुन्डारी चांगारे संताली पारसी दो मेनाक् आकादा। संताली पारसी दो अस्ट्रो, सियाटिक पारसी धरोजं रेयाक् मितर्ता मारे आर किंसाइ पारसी काना। नोवा पारसी रोरोइ होइ दो भारत, बालादेश, नेपाल, पाकिस्तान, भुटान, मायानमार, त्रिनिदाद, एमान दिसोम रे मेनाक् कोवा। ओना मुदरे भारत दिसोम रेगे इतरखोन जासती संताली पारसी रोरोइ होइ दो मेनाक् आकाद कोवा। होइ लेखा जोखाते भारत दिसोम रे संताली रोरोइ होइक् ठांव दो गेल पे आनाक्। भारत रेयाक् गेल गर्टा पनत आर केन्द्र (तालमा) सासनिया तुर्य गर्टा पनतरे संताली पारसी रेनाक् ठांव दो श्रुम आनाक् गे। जेंगेत् जाकात् रेनाक् 202 गर्टा फुरगाल राष्ट्र मुदरे 108 गर्टा राष्ट्ररे संताली रोरोइ होइक् लेखा दो जासती गया। पुरोजेंगेत् जाकात् रे संताली पारसी रेनाक् ठांव दो आरेगेल पुन २१४३३ आनाक्। सेनसास 2001 लेकाते संताल कोवाक् होइ लेखा दो नोकाकाना। पछिम बंगला रे 2280540 झारखन्ड पोनोत रे 2879576 उडिसा पनतरे 699270 आर आसाम रेदो 242886 होइ।

संताली पारसी रोरोइ होइ लागित जुदाते पोनोत छाटियार लेना। ओना हँ तायम दाराम ते एटाक् पारसी एटाक पनत रेको राज केदा। मिद अक्त ई-रेज कोवाक् राजधानी दो कोलकाता ताहे काना। बांगाली होइ सांव मेसा काते ई-रेज कोदो कानुन को लागुकेदा। सानाम होइ गे बंगला पारसी ते रोइ हुयुक् ताकोवा। आपान आपिन जानाम पारसी ते रोइ लेखान सासेतको श्रामा। नोकागे एटाक् पारसिरेन होइ कोको लाजाव आर बोतोर होचोएद को ताहे काना, उनकुवाक् जोस दो ताहेकाना संताली पारसी दो निधान गे दोहो हुयुक् आ। मेनखान जुग दो मित बा ताहेना। सारियाक्

दो उक् से दापाल काते जायजुग दो बाँ ताहेना। पारसी दो आरु आनाक् गे ताहेना। एनरेहं आगिल हापड़ाम कोवाक् उयहार भावना दो हिड़िं बाँ ताहेकाना। आगिल हापड़ाम को जुदि नोवा पारसी बाँको चारचाव आगु केया एनखान तेहेन एटाक् पारसी लेकागे संताली पारसी दो ओद सारि कोक् आ। पारसी जियाड़ दोहोयरे आगिल हापड़ाम कोवाक् रोड़ सांवहेद दो आड़िगे दामान आ। तायोम दाराम मिसनारी को स्कोटलेन्ड, जार्मानी, आमेरिका, सुइडेन, इउलेन्ड डेनमार्क, नरवे दिसोम को संधार लेदा। संताली पारसी आर सांवहेत् हाराबुरु रे मिशनारी कोवाक् आड़ी आयमा एनेम मेनाक् आकादा। संताली ओल सांवहेद रेयाक्, मुठोन दो उनकु मिशनारी कोगे को एमेद ताहे कान ताहें। तायोम दाराम पन्डित राघुनाथ मुरमु 1925 सेरमारे संताली ओल पारसी लागित ओलचिकि लिपिय सिरजन केदा खान गे संताली पारसी रेनाक् मोन दो चोट चूड़ा रेय राकाब केदा। संताली पारसी रेयाक् कोड (Language Code)। "Ethnology, Language of the World जांहारे दिसोम जाकात रेयाक् पारसी रेयाक् कोड मेनाक् आकादा। ओना लेकाते संताली पारसी रेयाक् कोड दो'' ISO639-3 Sat" 24 काना।

भारत दिसोम रेनाक् होकहित रे इराल आनाक् तोपसिली रेदो आड़ी पारसीगे सेलेद मेनाक् आ। संताली पारसी रेनाक् नागामरे 22 से डिसेम्बर 2003 सेरमा दो दिसा दोहय लेकानाक् दिन कान गया। निया दिन रेदो लोकसभा रे संताली पारसी होकहित रेयाक् इरालानाक् तपसिली रे सेलेद लेना। भारत रेन दिसोम गोमके दो 7इ जानुवारी 2004 सेरमारे विभाग खोनाक् संताली पारसी मान साकाम एमादा। इना तायोम खोन गे संताली पारसी दो सरकारी राज कामी रे मान ए श्रम केदा। भारत दिसोम रे लोकसभा आयोग, साहित्य एकाडेमि, ज्ञानपीठ, एमान पाहाटा रेगे कामी होराको चालाव हिजुक् काना। इसकुल कोलेज इउनिभारसिटि कोरे संताली पारसी ते ओल पाड़हाव एतोहब आकाना। राजआरी रेयाक् दोरबार बिधानसभा लोकसभा आर धारति रेनाक् राष्ट्र अधिबेसन रे संताली पारसी ते रोड़ रेनाक् दाव मेनाक् आकादा। पछिम बांगला पनोत सरकार दो अनग्रसर श्रेनी कल्यान अधिकार खोन साधु रामचांद मुरमु उयहार सिरपा, पन्डित राघुनाथ मुरमु उयहार सिरपा, सारदा प्रसाद किस्कू, उयहार सिरपा आर बिरसा मुन्डा उयहार सिरपा, सिधु कानहु उयहार सिरपा एम रेनाक् ए बन्देज आकादा।

तेहे श्र संताली पारसी चारचाव लागिद ते नोवा सानामाक् रेडिवो, अडिवो केसेट, सिनेमा, टी.वी., गायान, रेयाक् आड़ी आयमा एनेम मेनाक् आ। मेनखान नाहाक् बिश्वायन जुग रेदो मोबाइल, कमपिउटार, रे संताली पारसिते 'अलचिकि' लिपि रेनाक् सप्टेआर बेभारोक् कान खातिर सानाम दिसोम रेगे झालकाव आकाना।

संताल कोबाक् उपरुम :-

धारती जाकात रे संताल जाती होड़ को दो एना खोन गे जियोन को बिताव आगुएदा। नुक् संताल को एना रेदो 'होड़' मेनतेको बिकाव ओक् कान ताहे काना। 'होड़' मेन दो मानमी नोडे लाय लाकति काना। मुन्डा कोदो हो आर हो से कोल कोहं हो मेनतेको लायओक् कान ताहें। नुक् सान्ताल, मुन्डा, हो, लाकड़ा, शबर, माहले, बिर होड़ एमान, आदिम आदिबासी कोदो को लाय ओक् ताहे खेरबाल बंश। नुक् आक् जाति दो खेरबाल जाति, आर नुक् आक् जाति गांताक रेन होड़ कोवाक् पारसी गे खेरबाली पारसी (संताली भाषार आलोके बिश्व संस्कृतिर उतसो सन्धाने बास्के रामसुन्दरम) मेनखान संताल शाबाद रेयाक् जानाम ओकालेकाते बेनाव आकाना, नोवा इदिकाते पन्डित को अकय चेद को मेन आकादा -

- (क) पारसी गाखुड़िया सुनिती कुमार चवोपाध्याय ए मेन आकादा संताल सोबदेर मूलरुद हिसाबे संस्कृत सामन्त पाल (अपभ्रंस) सा-अन्त -आल झ संताल (बांगला)।
- (ख) गालचियर खुदिराम दास आजाक् संताल बंगला समसब्द अभिधान, पुथी रेनाक् एतोहोप रेय रड़ आकादा-सम्भवत विमिश्रित आर्यभाषी। अर्थात् आमारेई, अर्थात् अ संतालि देर बा बिदेशी देर देवा नाम बोलेइ मोने कोरेन।
- (ग) Rev. L.O. Skrefsrid साहेब आक् काथा लेकाते संताल शब्द टि सावनर शब्देर अपभ्रंश बोलेई उल्लेख

कोरेछेन। उनियाक् जुक्ति दो हुयुक्काना एक समय मेदिनीपुर जेलार एक अंश के संतभूमि बला होतो। नोवा टठा रे आयमा दिन गिराबास खातिर उनकु दो संताल श्रुतुम तेको उपरुम एना।

- (घ) धिरेनद्रनाथ बास्के आज्याक् बंश संस्कृतिते प्राक बेदिक प्रभाव पुथिरे सदर आकादा-ग्रीक एइतिहासिक हेरोडोटासेर बिबरने प्राचीन भारतेर सभ्यता उ संस्कृति एबो सामाजिक अवस्था सम्पर्के बहु मूल्यवान तथ्य पावा जाय। तिनि सिन्धु ओ बालुचिस्तानेर प्राचीन अधिबासीदेर तिन क्षेत्रिते भाग कोरेछिलेन। तादेर पेशा अनुजायी, तार बिबरने मजुर उ कृषक श्रेणिर लोकेदेर बला होतो 'कोल' कुटिर शिलपिदेर बला होतो संताल बा सांवताल, आर देशी कारबारी श्रेणिके बला होतो द्राविड़।
- (ङ.) कोबि सारदा प्रसाद किस्कू (खेबा) आक् काथा लेकाते-संताल कोयिज राजा सान्ता रेन प्रजा कोगे सांवताल श्रुतुम तेको बाडायोक् काना।
- (च) मानोतान परिमल हेमब्रम आक् काथा लेकाते-सांज दिशम श्रुतुम सांव सांताल साबाद रेयाक् गाहिर सागाई मेनाक् आ।
- (छ) मानोतान गोमस्ता प्रसाद सोरेन आक् मेन दो शेम मेनेद कृष्ण आक् ताल पिछा होइ कोगे संताल।

चेतान रे एम आकान पन्डित कोबाक् मतामत बिचार काते श्रुल लेखान डॉ० डी बड़का किस्कू आक् मतामत गे जोथात सांहिज श्रुलोक् काना। किस्कू गोमके दो जांहा को तेतेद चेतान साब काते लाय आकादाय जे 'संताल' साबाद दो ब्रिटिश कोवाक् एस श्रुतुम काना। संताल श्रुतुम दो बारया संताली शाबाद रेयाक् गाबान काना जेलेका - 'सेन' मेन दो 'दिक' से ज्वूतक आर 'ताड़म' मेन दो होरते चालाक् सेसा नोवा बारेया साबाद आतेक् बेनाव आकाना सेन+ताड़म त्र सेन्तड़म झ संताड़ झ संताल, जांहा रेनाक् मेनदो दो इश्वराक् होर।

संताल कोबाक् गिराबास टठा आर होइ लेखा :-

संताल जाति होइ दो सिश्रुत दिसोम रेनाक् आयमा पनत रेगे मेनाक् कोवा। मेताक् मे नुक्ु गे नोवा दिसोम रेन आदिम होइ काना को। जेलेका-पछिम बंगला पनत रेनाक् बांकुड़ा, पुरुलिया, बीरभुत, मालदह, मेदिनीपुर जेला रेदो जासती गे संताल को गिराबास काते मेनाक् कोवा। अना छाड़ा उड़िसा, आसाम, बिहार, झारखण्ड, एमान रेहं सागे संताल मेनाक् कोवा। सिश्रुत दिसोम छाड़ा बालादेश, नेपाल, भुटान, त्रिनिदास, एमान दिसोम रेहं संताल गिराबास काते मेनाक् कोवा। संताल कोबाक् जियोन डहार रे नाना हुनार कामी कासनी रायरीत, आरियाली, धरम पातियाव जियोन रेयाक् लाकचार कोदो जुदा गया। मेनखान सिश्रुत दिसोम रेन एटाक् को सालाक् जियन डहार खांडावरे नुक्ु दोको तायम गया। अनातेगे सिश्रुत दिसोम रेनाक् हकहित तालाते नुक्ु दो रानाकाप रेनाक् सुजोग मेनाक् ताकोवा।

संताली पारसी रेयाक् उपरुम :-

संताली पारसी दो सिश्रुत दिसोम रेनाक् अड़ी मारे आर किंसाड़ उतार पारसी काना। सिश्रुत दिसोम रे होइ लेखा तुलुज काते संताली पारसी दो 13 आनाक् ठांव रे मेनाक् आकादा। दिसोम रेनाक् गेल गोटा पोनत आर तुरुय गोटेन केन्द्र शासित पोनोत खोन पोनोत रेन संताल कोवाक् लेखा जोखा दो ठेर गया। धारती जाकात रेनाक् 202 गटा फुरगाल राष्ट्र होइ लेखा खोन हँको जासितया, ओना लेकाते संताली पारसी दो धारती जाकात रेदो 98 आनाक् ठांव ए हामेट आकादा। मानोतान जि.ए ग्रियारसन आज्याक् Linguistic Survey of India पुथि रे संताल हो मुन्डा भुमिज कोडा, एमान कोवाक् पारसी दो खेरवाली पारसी मेनते छाटियार आकाना। उनी ओललेदा-संताली, मुन्डारी, भुमिज, कोड़ा, हो, टुरी, असुरी, कोरवा, नोवा कोदो मिदटा पारसी रेयाक् गे भिना-भिना रुप काना। संताली पारसी सुर सुपुर नुक्ु आदिबासी कोवाक् हं मिदगे उतस। ओनातेगे नुक्ु दो मिद अक्त खेरवाल को लायओक् कान ताहे। आर नोवा खेरवार पारसी दो एटाक् पन्डित को ओकय चेद श्रुतुम तेको बेभार आकादा अनाकोदो -

- (1) मानतान मेकसमुलार संताली पारसी दो - मुन्डा द्राविड़।

(2) मानतान जर्ज केम्पबल संताली पारसी दो - कोलरियान।

(3) मानतान सेर फेडरिक दो - कोल मुन्डा

संताली पारसी दो अस्ट्रो-एसियाटिक पारसी धारोजं रेनाक् मुन्डारी शाखारे मेनाक् आकादा। नागाम रे श्मोक आ आर्य माई जुग रे नोवा बांगला दिसोम रेदो गोटागे प्राक द्राबिड से प्रोटो आस्ट्रोलायेड कोवाक् जासती गिराबास ताहेकाना। उनकु जांहा पारसी तेको रड एद ताहेद अना दो अस्ट्रिक पारसी। पारसी बिचाररे अस्ट्रो एसियाटिक मुन्डारी शाखा रेनाक् आयमा धारोज साब राकाप होय एना।

संताली साँवहेत रेयाक् उपरुम :-

पारसी आर साँवहेत काथा दो मित श्जेक् गे आंजोमोक् कान रेहं एकाल दो बाँ मिद आ। आडी होइ दो मिद गेको मोनेया। तोबे साँवहेत दो पारसी खातिर आर पारसि लागित कान गया। साँवहेत हारा लेनखान पारसी रेयाक् हँ लाहानती होयोक् आ। संताली पारसी दो आडी मारे पारसी काना। माई दो नोवा पारसी दो होइ पारसी मेनते मेनोगोक् कान ताहे काना। होइ पारसी दो सेदाय खोन नित धाबिच मोचा आई आर लुतुर रेगे ताहे हेज आगु आकाना। संतालाक् जानाम पारसी दो आको आक् जानाम ठाँव हिहिडी पिपिडी खोन गे हेज आगु आकाना। अक्त जानी ताला ताला आडी लेकान होय भारडु ते गुरलाव आकाना। एनहं निरोइ रोरोइ लेगचार साँवते नित धाबिच अनका गे बाश्चाव मेनाक् आ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. धिरेन्द्रनाथ बास्के - पछिम बंगेर आदिबासी समाज।
2. प्रोफेसर दिगम्बर हाँसदा - गानाँ माला।
3. डॉ. कृष्ण चन्द्र टुडू - संताली पारसी उनुरुम।
4. CIIL - संतालि रनइ।
5. आमपा कुमार हेमब्रम - पारसी साइेश मिद उपरुम।



आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन विशेष संदर्भ बी. एस.टी.सी. प्रशिक्षणार्थी

– डॉ. गौरव शर्मा

सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, एसकेडी विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान।

शोध सारांश :-

प्रस्तुत शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य बी.एस.टी.सी. के प्रशिक्षार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर का अध्ययन करना है। न्यादर्श के रूप में 200 प्रशिक्षार्थियों का चयन किया गया है। दत्त संकलन हेतु उपकरण के रूप में डॉ. रेखा गुप्ता द्वारा निश्चित आत्मविश्वास प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष रूप में पाया गया कि बी.एस.टी.सी. के प्रशिक्षार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

मूल शब्द :- बी.एस.टी.सी., आत्मविश्वास, प्रशिक्षणार्थी

प्रस्तावना :-

वर्तमान समय प्रतिस्पर्धा का समय है और ऐसे समय में प्रत्येक व्यक्ति सफलता पाने के हेतु प्रयासरत है। सफलता में मेहनत का तो मुख्य स्थान है ही किन्तु ऐसे भी है जो सफलता प्राप्ति में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं।

आत्मविश्वास एक व्यक्तित्व का ऐसा ही घटक है जो सफलता को सीधे रूप में प्रभावित करता है। आत्मविश्वास व सफलता का ऐसा संबंध है कि आत्मविश्वास से सफलता शीघ्र प्राप्त हो जाती है और सफलता प्राप्त होने से आत्मविश्वास में वृद्धि हो जाती है, अर्थात् वे दोनों एक दूसरे पर परस्पर निर्भर रहते हैं।

आत्मविश्वास के निर्माण में भूतकाल की बहुत बड़ी भूमिका होती है अर्थात् जिस बालक का भूतकाल बिना चिंता के तथा सफलतापूर्वक व्यतीत हुआ होता है उसका आत्मविश्वास का स्तर उतना ही उच्च होता है। जबकि जिस बालक का भूतकाल जितना अभावग्रस्त, समस्यात्मक व असफलताओं में गुजरा होता है उसके आत्मविश्वास का स्तर उतना ही निम्न कोटि का होता है। इसी आत्मविश्वास के स्तर से सफलता की संभावना जुड़ी होती है और जब मनुष्य जीवन में असफलता को प्राप्त करता है तो अराजक हो जाता है जो संपूर्ण मानव समाज के लिए खतरा बन जाता है, इसलिए कहा भी गया है कि-

जब तक मनुज-मनुज का यह सुख भाग नहीं सम होगा।

शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा।

अर्थात् यदि हम गहनता से देखें तो वर्तमान समाज में व्याप्त अराजकता का परोक्ष रूप से संबंध आत्मविश्वास से है। यहाँ शोधार्थी द्वारा उक्त मनोवैज्ञानिक घटक के स्तर का अध्ययन बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों पर किया गया है। उक्त चयन का कारण शोधार्थी की यह जिज्ञासा थी कि क्या बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त है या नहीं? और यदि है तो क्या इनमें लिंगगत या विषमगत कोई भेद है और इनका उनके आत्मविश्वास पर क्या प्रभाव पड़ा है?

शोध के उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या आत्मविश्वास के गिरते स्तर पर की गई है।

शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार है-

1. बी.एस.टी.सी. प्रशिक्षणार्थियों में आत्मविश्वास के स्तर का आंकलन करना।
2. ग्रामीण एवं शहरी बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में आत्मविश्वास के स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ :-

हम जानते हैं कि परिकल्पनाएँ ही किसी भी शोध का आधार होती हैं क्योंकि जब तक परिकल्पना नहीं होगी तब तक परीक्षण किसका किया जाएगा। यहाँ शोधार्थी ने निम्न परिकल्पनाओं का चयन किया है-

1. बी.एस.टी.सी. प्रशिक्षणार्थियों में आत्मविश्वास के स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. शहरी एवं ग्रामीण के बी.एस.टी.सी. प्रशिक्षणार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श :-

उपर्युक्त शोध हेतु शोधार्थी ने सीकर शहर के दो अशासकीय शिक्षा महाविद्यालय के 200 छात्रों का यादृच्छिक विधि से निम्न प्रकार चयनित किया है।

न्यादर्श

200 प्रशिक्षणार्थी

100 महिला	100 पुरुष
50 ग्रामीण 50 शहरी	50 ग्रामीण 50 शहरी

उपकरण :-

शोध के निष्कर्ष हेतु समंको की आवश्यकता होती है और उपर्युक्त शोध में समंको के एकत्रीकरण हेतु एक प्रपत्र को उपकरण हेतु चयन किया गया है शोधार्थी ने उपकरण के रूप में डॉ. रेखा गुप्ता के आत्मविश्वास सूची को चुना है।

शोधविधि :-

प्रस्तावित शोध अध्ययन एक सर्वेक्षण शोधकार्य है। चयनित उपकरण के माध्यम से शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण के माध्यम से आँकड़ों का संग्रह किया गया है। तथ्यों के स्पष्टीकरण हेतु पुस्तकों, पत्रिकाओं, शोधपत्रों आदि का प्रयोग किया है। निष्कर्ष प्राप्त हेतु प्राप्त समंको का व्यवस्थापन सारणीयन कर व्याख्या, विश्लेषण हेतु मध्यमान, प्रमाणिक विचलन व टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष :-

शोधार्थी ने अपने शोधकार्य में चयनित परिकल्पनाओं की जाँच की और परिकल्पनाओं की जाँच के आधार पर शोधार्थी ने निम्न निष्कर्ष प्राप्त किए।

परिकल्पना

बी.एस.टी.सी. प्रशिक्षणार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

संख्या 1

प्रदत्त		मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी मूल्य
बी.एस.टी.सी. महिला प्रशिक्षणार्थी	100	27.84	5.13	1.92
बी.एस.टी.सी. पुरुष प्रशिक्षणार्थी	100	26	4.53	

उपरोक्त सारणी संख्या 01 में बी.एस.टी.सी. प्रशिक्षार्थियों के आत्मविश्वास सम्बन्धी दत्तों को विश्लेषित किया गया। जिसमें आत्मविश्वास सम्बन्धी मध्यमान 27.84 व 26 तथा प्रमाप विचलन 5.13 व 4.53 व टी-मूल्य 1.92 प्राप्त हुआ है। जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 व 0.05 के सारणी मान 2.63 से कम है। अतः इस आधार पर उपरोक्त परिकल्पना को स्वीकृत कर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बी.एस.टी.सी. के प्रशिक्षणार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

द्वितीय परिकल्पना

शहरी एवं ग्रामीण बी.एस.टी.सी. प्रशिक्षणार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

संख्या 2

प्रदत्त	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी मूल्य
बी.एस.टी.सी. शहरी 50	26.78	5.72	2.24
बी.एस.टी.सी. ग्रामीण 50	24.36	5.08	

उपरोक्त सारणी संख्या 02 में बी.एस.टी.सी. शहरी व ग्रामीण प्रशिक्षार्थियों के आत्मविश्वास सम्बन्धी दत्तों को विश्लेषित किया गया। जिसमें आत्मविश्वास सम्बन्धी मध्यमान 26.78 व 24.36 तथा प्रमाप विचलन 5.72 व 5.08 व टी-मूल्य 2.24 प्राप्त हुआ है। जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 व 0.05 के सारणी मान 2.63 से कम है। अतः इस आधार पर उपरोक्त परिकल्पना को स्वीकृत कर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बी.एस.टी.सी. के प्रशिक्षणार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

आगामी शोध हेतु सुझाव :-

उक्त शोधकार्य के आगे भी कार्य की सम्भावनाएँ बनी हुई है। ये क्षेत्र निम्न प्रकार संभव है-

1. दो पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के मध्य आत्मविश्वास के स्तर का आंकलन करना।
2. कार्यरत और बेरोजगारों के बीच आत्मविश्वास के स्तर का आंकलन करना।
3. शासकीय एवं अशासकीय सेवारत लोगों के मध्य आत्मविश्वास के स्तर का आंकलन करना इत्यादि।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. अस्थाना विपिन, श्रीवास्तव विजया, अस्थाना निधि “शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी “अग्रवाल पब्लिकेशन संस्करण 2011 पृष्ठ सं. 718-19
2. अग्निहोत्री रेखा (1987) “मैन्यूअल फोर सेल्फ कॉन्फिडेन्सी इन्वेन्ट्री नेशनल साइकोलॉजिकल कॉरपोरेशन, आगरा
3. आर्य पी. के. “आत्मविश्वास सफलता की सीढ़ी है” हिन्दी पुस्तिका कक्षा 6, राजस्थान पुस्तक मण्डल।
4. कटारिया चित्रंश “आत्म विश्वास का आसरा” राजस्थान पत्रिका (1 जून 2015)
5. कौर रमनदीप सिंधु, कौर गगनदीप “किशोरों में आत्मविश्वास से सम्बन्धित भावनात्मक सामर्थ्यता का अध्ययन- एजुकेशन रिसर्च Volume-3 Sept-2014
6. गोस्वामी हेमलता -“व्यक्तित्व शीलगुण, आत्मविश्वास पर उच्च निम्न उपलब्धियों के छात्र-छात्राओं के निवास के प्रभाव का अध्ययन” शिक्षा मित्र (2016 सितम्बर) पृष्ठ सं. 30
7. डॉ. रायजादा बी. एस. (1997) “शिक्षा अनुसंधान के आवश्यक तत्व” पृष्ठ सं. 16-27, 172

8. डॉ. शर्मा के. के., डॉ. त्रिवेदी सुधा, डॉ. शर्मा प्रभा, गर्ग ओ. पी. “शिक्षा शब्दकोष” स्वाति पब्लिकेशन पृष्ठ सं. 5. 363, 402, 402
9. डॉ. शर्मा मीना “ए स्टडी ऑफ सेल्फ कॉन्फिडेंस ऑफ सीनियर सैकण्डरी स्कूल स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू सोशो इकोनोमिक स्टेटस” AIJR Dec- 2015
10. ट्रेवर्स एम. डब्ल्यू, “शिक्षात्मक अनुसंधान की प्रस्तावना”, हिन्दी संस्करण, किताब महल प्रा. लि., इलाहाबाद, 1964, पृष्ठ सं. 681
11. पं. आचार्य श्री राम शर्मा “सफलता आत्मविश्वासी को मिलती है” शिविरा पत्रिका
12. शर्मा, आर.ए., “शिक्षा अनुसंधान”, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ, 1998, पृष्ठ सं. 60
13. शर्मा, आर.ए., “मापन एवं मूल्यांकन”, ईगल बुक्स इन्टरनेशनल, मेरठ, 1991, पृष्ठ सं. 11



विश्वविद्यालय के छात्रों की शिक्षा पर प्रभाव एवं चुनौतियाँ (कोविड - 19 के संदर्भ में)

-डॉ. चन्द्रशेखर सिंह

वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

वर्तमान समय में कोविड-19 वैश्विक महामारी ने विश्व को अपनी गिरफ्त में लिया है। देश एवं विदेश में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, एवं शैक्षणिक संस्थानों को प्रभावित किया है। शैक्षणिक गतिविधियों के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक गतिविधियाँ कुछ प्रतिबन्धों के साथ तो चलना शुरू हो गया लेकिन शैक्षणिक गतिविधियाँ वर्षभर (मार्च-2019 फरवरी-2020) आंशिक रूप से चलता रहा। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जब ऑनलाइन शैक्षणिक गतिविधियाँ शुरू किया गया तो इसका प्रभाव स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर देखा गया। तुलनात्मक स्वरूप से देखा जाये तो ऑफलाइन शैक्षणिक गतिविधि के फलस्वरूप ऑनलाइन शैक्षणिक गतिविधियों में उस स्तर पर नहीं पहुँचा जो ऑफलाइन शैक्षणिक गतिविधि में होता है। तुलनात्मक रूप से देखा जाये तो ऑफलाइन शैक्षणिक गतिविधियाँ की तुलना में ऑनलाइन शैक्षणिक गतिविधियों में कई प्रकार की कमियाँ नजर आई जैसे कमजोर नेटवर्क, सभी छात्रों के पास इंटरनेट सिस्टम युक्त मोबाइल का न होना, ऑनलाइन शिक्षण पद्धति के प्रशिक्षण के अभाव में प्रभावी तरीके से शिक्षण प्रदान करने में कमी, ऑनलाइन उपलब्ध पाठ्य सामग्री को खोज पाने में छात्रों की असमर्थता इत्यादि। छात्रों की शिक्षा को बहुत अधिक प्रभावित किया। इससे उनके अपने विषय की जानकारी में कमी, ऑनलाइन दक्षता का अभाव, संचार कौशल में कमी एवं सामाजिक मेल-मिलाप को प्रभावित करता आया। एक प्रकार से देखा जाये तो व्यक्ति जब आन्तरिक परिवेश में समागम किया तो वह अपने परिवारों के बीच रहने लगा जिससे उनके शारीरिक और मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ा। मानसिक तनाव, स्वभाव में अस्थिरता, सामाजिक नियमों का उल्लंघन जैसी समस्या का विकास हुआ इन समस्याओं के वजह से चुनौतियाँ भी सामने आयी। साइबर क्राइम में वृद्धि, उनके सामाजिक विकास में अवरोध उत्पन्न होना, मानसिक विकास को भी प्रभावित किया और इन चुनौतियों के समाधान के लिये नागरिक समाज संगठन अपने अनुसार भरपूर प्रयास करते आये। जिससे छात्रों में मानसिक अस्थिरता, शिक्षा के प्रति जागरूकता एवं नये चुनौतियों को आसानी से स्वीकार करें और अपने आये हुये नये पद्धतियों का स्वागत करें।

मुख्य शब्द : विश्वविद्यालय, छात्र, शिक्षा, कोविड-19, प्रभाव, चुनौतियाँ।

प्रस्तावना :-

भारत में कोविड-19 का पहला मामला दिसम्बर-2019 में प्रकाश में आया उस दौरान अन्य देशों की स्थिति काफी गंभीर थी। भारत में कोरोना की स्थिति मार्च 2020 में तेजी से फैली और पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों को छोड़कर सभी प्रदेशों में कोरोना महामारी फैल गयी और पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों को छोड़कर सभी प्रदेश में कोरोना महामारी फैल गयी। कोरोना का सबसे पहला प्रभाव शैक्षणिक संस्थानों पर पड़ा और उन्हें अगले आदेश तक बंद रखा गया। यद्यपि कुछ समय बाद शैक्षणिक गतिविधियों को ऑनलाइन शुरू किया गया, लेकिन यह ऑफलाइन के जितना प्रभावी नहीं हो पाया। जिसका सीधा प्रभाव विश्वविद्यालय के युवा छात्रों पर पड़ा। ऑनलाइन गतिविधियों में सबसे बड़ी कमी

सभी छात्रों के पास एंड्रॉयड मोबाइल का ना होना था, जिनके पास एंड्रॉयड मोबाइल था तो उसमें नेटवर्क की समस्या थी। बहुत सारे ऐसे छात्र भी थे जिनके पास संचार करने का कोई साधन नहीं था। अधिकांश छात्रों के लिये ऑनलाइन माध्यम से पढ़ाई करने का यह पहला अनुभव था जिसमें वह पारंगत नहीं थे। जिसके कारण उन्हें माता-पिता के सहयोग की कमी, घर पर अव्यवस्था, घर पर काम के दिनचर्या का अभाव, भोजन और आवास से जुड़ी अनिश्चितताएं इत्यादि। उदाहरण के रूप में मुंबई में दो बच्चों के एक पिता ने कहा : हमारे पास एक कम्प्यूटर है, मैं और मेरी पत्नी दोनों घर से काम कर रहे हैं। इसलिये हमें इसकी जरूरत है। अब दोनों बच्चों को भी कक्षाओं के लिए कम्प्यूटर की जरूरत है। एक ही समय में दोनों की कक्षाएं होने से हमें दो कम्प्यूटर चाहिए। हमारे वेतन में कटौती हुई है, हम दूसरा लैपटॉप कैसे खरीद सकते हैं? इसलिये एक बच्चा कक्षाएं नहीं कर पा रहा है। इस तरह की परिस्थितियां लगभग सभी राज्यों, एवं अधिकांश अभिभावकों के साथ देखा गया बल्कि यह स्थिति वैश्विक रूप से भी देखने को मिला। कोविड-19 के प्रभावों में विश्वविद्यालय के युवा छात्रों के मानसिक, सांवेगिक, शारीरिक स्थिति पर प्रभाव भी शामिल है। ऑनलाइन शिक्षण पद्धति में जब छात्रों पर मानसिक, सांवेगिक, शारीरिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों के फलस्वरूप उनके व्यवहार में परिवर्तन आये। ये परिवर्तन स्वभाव में उग्रता, क्रोध, मानसिक तनाव, बेचैनी, कुंठा, भविष्य के प्रति चिंता इत्यादि रूपों में सामने आया। इसके अलावा शारीरिक गतिविधियों में कमियों के फलस्वरूप भी कई तरह की समस्याएं पैदा हुई है। जैसे शारीरिक सक्रियता में कमी, अधिक देर तक ध्यान केंद्रित न कर पाना, देर तक पढ़ाई करने में कठिनाई महसूस होना इत्यादि। कोविड-19 के कारण विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं की शिक्षा तो प्रभावित हुई ही इसके अतिरिक्त वो सभी लोग भी इससे प्रभावित हुये हैं जो शिक्षण-प्रशिक्षण देने एवं प्राप्त करने की व्यवस्था के अन्तर्गत आते है। कोविड-19 के प्रभावों में शामिल है: ज्ञान में कमी, दक्षता में कमी, निपुणता का ह्रास, निरंतरता में कमी, समय प्रबंधन में कठिनाई, नियमित दिनचर्या का अभाव। इत्यादि।

अध्ययन का उद्देश्य :-

प्रस्तुत अध्ययन का विषय 'विश्वविद्यालय के छात्रों की शिक्षा पर प्रभाव एवं चुनौतियाँ (कोविड-19 के सन्दर्भ में)' के अन्तर्गत शोधकर्ता ने निम्नलिखित उद्देश्य बनाया है :-

- 1 कोविड-19 का विश्वविद्यालय के छात्रों की शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा।
- 2 कोविड-19 का विश्वविद्यालय के छात्रों की परीक्षा-परिणाम पर क्या प्रभाव पड़ा।
- 3 कोविड-19 का विश्वविद्यालय के छात्रों की शिक्षा के मूल्यांकन पर क्या प्रभाव पड़ा।
- 4 कोविड-19 का विश्वविद्यालय के छात्रों के कौशल पर क्या प्रभाव पड़ा।

कोविड-19 का विश्वविद्यालय के छात्रों की शिक्षा पर प्रभाव :-

कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी के प्रसार को रोकने के लिये लगाये गये लॉकडाउन के प्रतिबन्ध ने छात्रों की शिक्षा, परीक्षा, मूल्यांकन एवं भविष्य को अत्यन्त गंभीर रूप से प्रभावित किया है। उन छात्रों की जिसका कोविड-19 के कारण शैक्षिक जीवन प्रभावित हुआ है उसका निश्चित पैमाने के आधार पर वर्णन तो नहीं किया जा सकता परन्तु लॉकडाउन के वजह से छात्रों को अपने जीवन में उन तमाम परेशानियों जैसे शिक्षण में बाधा एवं उसका रूपान्तरण, तनाव, अपने कैरियर के प्रति चिंता, रोजगार संकट, मानसिक संघर्ष, सामाजिक अलगाव इत्यादि जैसे समस्या का सामना करना पड़ा जो उनके भविष्य पर नकारात्मक परिणाम को रेखांकित करता है। इस प्रकार इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से व्याख्या प्रस्तुत है:-

शिक्षा में बाधा एवं उसके स्वरूप में परिवर्तन :-

महामारी के रोकथाम हेतु किये गये लॉकडाउन के पश्चात् तत्काल देश के सभी शिक्षण संस्थान, विद्यालय एवं विश्वविद्यालय बंद कर दिये गये जिससे छात्रों को शिक्षण कार्य से वंचित होना पड़ा जिस समय लॉकडाउन घोषित किया

गया उस समय देश में परीक्षाओं का दौर चल रहा था तत्पश्चात् सभी परीक्षायें स्थगित कर दी गयी जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव छात्रों पर पड़ा। वर्तमान परिदृश्य में देखा जाये तो दुनिया में 91 प्रतिशत छात्र कोविड-19 महामारी से प्रभावित हुये है। यूनेस्को की शिक्षा रिपोर्ट के अनुसार कोविड-19 संक्रमण के प्रसार को रोकने के लिये विभिन्न देशों के सभी शिक्षण संस्थान और विश्वविद्यालय को बंद कर दिया गया जहां कुल 191 देशों के कुल 157 करोड़ से अधिक छात्र प्रभावित हुये। एक तरफ जहां शिक्षण संस्थान बंद कर दिये गये वहीं दूसरी तरफ देश में ऑनलाइन शिक्षा को भी बढ़ावा मिला। छात्रों ने कम्प्यूटर एवं मोबाइल फोन जैसे उपकरणों द्वारा इंटरनेट का प्रयोग कर अपने शिक्षण कार्य को जारी रखा और देश में ऑनलाइन कक्षाओं एवं वेबिनार जैसे ऑनलाइन गतिविधियों को बढ़ावा मिला। लेकिन अधिकांश छात्रों द्वारा कम्प्यूटर एवं मोबाइल फोन जैसे उपकरणों का प्रयोग न करने तथा ऑनलाइन शिक्षण पद्धति के विषय में जानकारी नहीं होने से छात्रों को कई तरह की समस्या का सामना करना पड़ा। इस प्रकार देखा जाये तो कोविड-19 संक्रमण ने देश की शिक्षा व्यवस्था का परिदृश्य ही बदल दिया है। आज का छात्र मोबाइल एवं इंटरनेट का प्रयोग कर रहा है ऐसे में यदि इस महामारी ने परंपरागत शिक्षा व्यवस्था पर आघात किया है तो वही देश की युवा पीढ़ी ने अपनी शिक्षा व्यवस्था को ही परिवर्तित करने का संकल्प ले लिया है।

मानसिक तनाव की वृद्धि :-

कोविड महामारी के पश्चात् देश में सम्पूर्ण लॉकडाउन ने छात्रों के मानसिक एवं सांवेगिक स्थिति को बुरी तरह से प्रभावित किया। जिससे उनकी शिक्षा प्रभावित हुई। स्कूल बंद होने से छात्रों में आपसी लगाव, संचार, शारीरिक सक्रियता में कमी होने से छात्रों में मानसिक, सांवेगिक तनाव, एवं बेचैनी ने छात्रों को प्रभावित किया। जिससे उनके सामने शिक्षा को लेकर समस्या उत्पन्न हो गई और उनके शैक्षिक योग्यताओं की वृद्धि में कठिनाई होने लगी जिसका की उनके मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा जिसके फलस्वरूप उनमें मानसिक तनाव आना स्वाभाविक है। मानसिक तनाव एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खोने लगता है और इसके साथ ही उसके स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। कोविड-19 संक्रमण के दौरान छात्रों में यह देखा गया कि शिक्षा एवं प्रशिक्षण के अभाव में उनमें बेचैनी घबराहट एवं उदासी जैसे शारीरिक लक्षण नजर आने लगे जो आज के छात्रों एवं समाज पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

परीक्षा परिणामों पर प्रभाव :-

कोविड-19 संक्रमण से प्रभावित देशों में शिक्षण संस्थान बंद होने से जहां छात्रों के परीक्षा परिणामों में बाधा उत्पन्न हो रही थी वही दूसरी ओर उन्हें अपने कैरियर को लेकर भी अत्यधिक चिंता होने लगी क्योंकि परीक्षाओं के स्थगित होने से उनके मेहनत एवं परिणामों पर नकारात्मक असर पड़ने लगा और आगे की पढाई में बाधा उत्पन्न होने लगी जिससे उन छात्रों का अपने कैरियर के प्रति चिंतित होना स्वाभाविक है। आज के दौर में हर शिक्षित छात्र अपने कैरियर अथवा भविष्य के प्रति जागरूक बनता दिखाई पड़ता है उसे आने वाले भविष्य को बेहतर बनाने की संकल्पना है जिसके प्रति वह सदैव तत्पर रहता है और ऐसे में कोविड-19 संक्रमण काल ने उन्हें कुछ हद तक हतोत्साहित जरूर किया लेकिन यह संकट स्थाई रहने वाला नहीं है। ऐसा मानते हुये कई छात्रों ने अपने आप को संभाला है तथा कठिन परिस्थिति का जमकर मुकाबला करने का प्रयास किया है। हालांकि विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि हमें इस संकट का सामना करते हुये तथा बचाव के उपाय करते हुये अपनी गतिविधियों एवं कार्यों को तत्परता से करते रहना है।

मूल्यांकन पर प्रभाव :-

कोविड-19 संक्रमण महामारी के चलते हुये लॉकडाउन ने उन छात्रों को जो विभिन्न कक्षाओं एवं प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं या अपने परिणाम का इंतजार कर रहे हैं, उनके द्वारा प्राप्त किये गये परीक्षा परिणामों का सही

मूल्यांकन होने को लेकर गहरा संकट उत्पन्न हो गया। वह छात्र वर्ग जो अभी-अभी अपनी शिक्षा पूरी करके नौकरी के लिये किसी प्रारम्भिक दौर से गुजर रहा है, उसके परिणाम को कोविड-19 के सन्दर्भ में देखकर किया जा रहा है। जिन्हें अगली कक्षा में बिना परीक्षा दिये प्रोन्नत कर दिया गया उनके लिये यह स्थिति अत्यंत गंभीर है। ऐसे छात्रों को नौकरी मिलने में कई प्रकार की कठिनाई आ रही है। कुछ को तो नौकरी से निकाला जाने लगा और जिनकी नौकरी किसी प्रकार से बरकरार है उनके वेतन का भुगतान नहीं किया गया या किसी को मिला भी तो वह भी वेतन का आंशिक राशि का ही भुगतान किया गया। ऐसे में यदि किसी ने अपने वास्तविक वेतन की मांग भी कि तो उसे नौकरी से निकाले जाने का भय दिखाया जाने लगा और जो छात्र स्व-रोजगार में कार्यरत थे उनके भी व्यापार पर नकारात्मक असर पड़ने लगा। एक तरफ तो रोजगार बंद होने से उनकी आमदनी खत्म हो गयी वही दूसरी तरफ उन्हें अपनी जरूरतों की पूर्ति हेतु अर्थिक संकटों का सामना करना पड़ रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में जिन छात्रों ने अपनी पूर्व की आमदनी से कुछ बचाकर रखे थे उन्हें अपनी जमा पूँजी को उपयोग में लाना पड़ा। वैसे भी देश में रोजगार का संकट पहले से ही विद्यमान है। छात्र जो शिक्षण संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करके निकल रहे हैं उन्हें उतनी तत्परता से नौकरी मिलना कठिन होता जा रहा है। इसी बीच में कोविड-19 महामारी ने आकर शिक्षा के क्षेत्र में और भी बड़ा संकट ला खड़ा कर दिया है।

कौशल पर प्रभाव :-

कोविड-19 महामारी से युवाओं के कौशल पर भी प्रभाव पड़ा। जिसके कारण उन्हें भविष्य में अपने कैरियर को लेकर चिंता होना स्वाभाविक है। कोविड-19 के कारण उत्पन्न परिस्थितियों ने कौशल केन्द्रों पर ताला लगा दिया जिससे वहाँ प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे छात्रों के लिए मुश्किल होने लगा। अभ्यास में निरंतरता ना होने से उनका कौशल निपुणता भी प्रभावित होने लगा।

तथ्यों का विण्लेणण :- छात्रों की शिक्षा पर प्रभाव :-

प्रस्तुत शोध 'विश्वविद्यालय के छात्रों की शिक्षा पर प्रभाव एवं चुनौतियाँ (कोविड-19 के सन्दर्भ में)' के अध्ययन एवं विश्लेषण के लिये वाराणसी जिले में निवास करने वाले 50 छात्रों को शामिल किया गया। इन छात्रों से उनके शिक्षा को लेकर उनके द्वारा प्राप्त प्रतिक्रिया के आधार पर तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। जिसका प्रस्तुतीकरण निम्नलिखित तालिका के माध्यम से दिया गया है।

क्र०सं०	शिक्षा पर प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
1.	सामान्य	11	22.00
2.	खराब	06	12.00
3.	बहुत खराब	22	44.00
4.	उदासीन	07	14.00
5.	अनिश्चितता	04	08.00
	कुल संख्या	50	100.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कोविड-19 के दौरान 44 प्रतिशत छात्रों ने कहा कि उनकी शिक्षा पर बहुत खराब प्रभाव पड़ा, 12 प्रतिशत छात्रों ने बताया कि खराब प्रभाव पड़ा और 22 प्रतिशत छात्रों ने कहा कि उनके शिक्षण कार्य पर कोविड-19 से कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा अर्थात् उनके ऊपर सामान्य प्रभाव रहा। 08 प्रतिशत छात्रों ने शिक्षण कार्य के प्रति अनिश्चितता व 14 प्रतिशत छात्रों ने उदासीनता व्यक्त की है।

छात्रों के परीक्षा परिणामों पर प्रभाव :-

कोविड-19 के प्रभाव के तहत हमने वाराणसी जिले के 50 छात्रों से उनके परीक्षा परिणामों पर पड़े प्रभाव पर उनकी प्रतिक्रिया लिया जिसमें उनके विचारों को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है :-

क्र०सं०	परीक्षा परिणामों पर प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
1.	सामान्य	11	22.00
2.	खराब	05	10.00
3.	बहुत खराब	26	52.00
4.	उदासीन	05	10.00
5.	अनिश्चितता	03	06.00
	कुल संख्या	50	100.00

उपरोक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 10 प्रतिशत छात्रों ने कोविड-19 से हुये लॉकडाउन के कारण अपने परीक्षा परिणाम के प्रति चिंता व्यक्त की तथा 52 प्रतिशत छात्रों ने अपने परीक्षा परिणामों को लेकर अत्यधिक चिंतित दिखें व 22 प्रतिशत छात्रों ने अपने परीक्षा परिणामों को लेकर सामान्य स्थिति कि बात कही अर्थात् उन्हें चिंता तो थी लेकिन उन्होंने अपने आप को आधुनिकता एवं तकनीकी से परिपूर्ण होने के कारण वें महामारी के दौरान अपने मानसिक संतुलन को बनाये रखा और 10 प्रतिशत छात्रों ने अपने परीक्षा परिणामों को लेकर उदासीनता व्यक्त की तथा 06 प्रति छात्र अपने परीक्षा परिणाम के प्रति अनिश्चितता दिखाई।

छात्रों के मूल्यांकन पर प्रभाव :-

कोविड-19 की वजह से हुये लॉकडाउन से छात्रों के परीक्षा परिणाम एवं उनके योग्यता का मूल्यांकन सही रूप में नही होने अर्थात् उसमें लॉकडाउन के कारण कक्षा प्रोन्नति, परीक्षा का आयोजन न होना इत्यादि परिस्थितियों के प्रभाव में उनके मूल्यांकन पर प्रभाव पड़ा है। जिसका विश्लेषण निम्नलिखित तालिका के माध्यम से किया गया है:-

क्र०सं०	छात्रों के मूल्यांकन पर प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
1.	सामान्य	16	32.00
2.	खराब	12	24.00
3.	बहुत खराब	22	44.00
	कुल संख्या	50	100.00

उपरोक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कोविड-19 की वजह से हुये परीक्षा पर रोक, कक्षा प्रोन्नति इत्यादि से 44 प्रतिशत छात्रों के मूल्यांकन पर बहुत खराब प्रभाव पड़ा अर्थात् उन्हें रोजगार, योग्यता के अनुसार कम मूल्यांकन, परीक्षा परिणाम में कमी जैसी अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा जबकि 12 प्रतिशत छात्रों के मूल्यांकन की स्थिति पर खराब प्रभाव रहा और 32 प्रतिशत छात्रों के मूल्यांकन की स्थिति को लेकर सामान्य स्थिति की बात कही है अर्थात् उन पर कोविड-19 से हुये प्रभाव का उतना ज्यादा असर नहीं पड़ा।

छात्रों के कौशल पर प्रभाव :-

कोविड-19 की वजह से हुये लॉकडाउन से छात्रों के कौशल पर क्या प्रभाव पड़ा इसका विश्लेषण हम निम्न तालिका के माध्यम से कर रहे हैं:-

क्र०सं०	छात्रों के कौशल पर प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
1.	सामान्य	09	18.00
2.	खराब	11	22.00
3.	बहुत खराब	30	60.00
	कुल संख्या	50	100.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 60 प्रतिशत छात्रों में कोविड-19 से हुये लॉकडाउन से उनके कौशल पर

बहुत खराब प्रभाव पड़ा। वही 22 प्रतिशत छात्रों ने बताया कि उनके कौशल पर खराब प्रभाव पड़ा जबकि 18 प्रतिशत छात्रों ने कहा कि लॉकडाउन के दौरान उनके कौशल पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा अर्थात् वे सामान्य स्थिति में थे।

निष्कर्ष एवं सुझाव :-

कोविड-19 वैश्विक महामारी के कारण शिक्षा संस्था में कई प्रकार के निर्णय लिये गये जैसे हाई स्कूल, इण्टरमीडिएट की परीक्षा कराने पर रोक, स्नातक के द्वितीय, तृतीय सेमेस्टर के छात्रों की कक्षा प्रोन्नति। जिसके कारण कुछ छात्रों पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा, जबकि उसके विपरीत जिन छात्रों के पास ऑनलाइन कक्षाओं के संसाधन नहीं थे उनके लिये यह फैसला कई तरह से समस्यात्मक था। लॉकडाउन ने छात्रों पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव डाला है। इसका सकारात्मक प्रभाव उन छात्रों में देखने को मिला जिनके पास ऑनलाइन शिक्षण संसाधन मौजूद थे। उन्होंने उस दौरान उसे सीखने, अभ्यास को जारी रखने, अपने ज्ञान में सुधार करने में प्रयोग किया जिससे उनके ऊपर कोविड-19 का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसे छात्रों की शारीरिक गतिविधियों पर विराम लगने से उनमें सक्रियता से कार्य करने, तनाव, स्वभाव में उग्रता जैसी समस्या देखने को मिली। इसका नकारात्मक प्रभाव उन छात्रों में देखने को मिला जिनके पास ऑनलाइन शिक्षण संसाधन मौजूद नहीं थे। जिसके कारण उनके सीखने, अभ्यास को जारी रखने, अपने ज्ञान में सुधार करने में बाधा उत्पन्न हुई वो अपने आपको अन्य सामान्य छात्रों से जो उनके आगे निकल गये, से पिछड़ा हुआ समझ रहे थे। जिसके परिणाम स्वरूप उनमें मानसिक तनाव, बेचैनी, गुस्सा, कुंठा एवं अवसाद जैसी समस्याएँ पैदा हुईं। वो अपने सामान्य दिनचर्या में अनुकूलन स्थापित करने में असमर्थ हो रहे थे। अपने मूल्यांकन के प्रति उनमें चिंता दिखाई दी। कोविड-19 के कारण उनका परीक्षा-परिणाम, कौशल, अनुभव इत्यादि प्रभावित हुई। प्रयोग किया जिससे उनके ऊपर कोविड-19 का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। जो छात्र ऑनलाइन शिक्षण-पद्धति से नहीं जुड़ पाये उनमें शारीरिक सक्रियता अधिक देखने को मिली जिससे उनमें होने वाले तनाव, स्वभाव में उग्रता पर नियंत्रण आसानी से कर लिया। कोविड-19 का औसत प्रभाव विश्व समुदाय के सभी छात्रों पर पड़ा जिसका गंभीर परिणाम आने वाले भविष्य में देखने को मिलेगा क्योंकि कोविड-19 महामारी का प्रभाव इतना जल्दी समाप्त होने वाला नहीं लग रहा है और ये महामारी जितने लंबे समय तक रहेगी उतना ही अधिक छात्रों को प्रभावित करती रहेगी। यद्यपि समय के साथ छात्रों के हित में कई तरह की योजनाओं के लाने से इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है। उन्हें इलेक्ट्रॉनिक संसाधन प्रदान करना होगा। सुदूर ग्रामीण छात्रों को भी इनसे जोड़ना होगा। इसके अतिरिक्त समय-समय पर सरकार द्वारा निर्देशों का हम सभी को कड़ाई से पालन करना होगा। अतः इसका एकमात्र उपाय यही है कि हम पूर्ण रूप से जागरूक रहते हुये सतर्कता बरतते हुये हमे उन उपायों का पालन करना चाहिये जिससे हम महामारी के प्रभाव से बचे रहें जैसे मास्क को प्रयोग करना, शारीरिक दूरी का पालन करना, सैनिटाइजर से हाथों को धोना, साफ सफाई का ध्यान रखना इत्यादि।

संदर्भ :-

- 1 'दैनिक जागरण' हिन्दी दैनिक अखबार, 13 मार्च 2020
- 2 'दैनिक जागरण' हिन्दी दैनिक अखबार, 23 मार्च 2020
- 3 'दैनिक जागरण' हिन्दी दैनिक अखबार, 25 मार्च 2020
- 4 जनसत्ता डॉट कॉम/पॉलिटिक्स/ सेंटर फॉर मॉनिटरिंग 8 अगस्त 2020
- 5 विकिपीडिया डॉट कॉम 8 अगस्त 2020
- 6 Ministry of health & family welfare, Government of India.
- 7 WHO. (2020). Covid-19: resources for adolescents and youth.
- 8 Indian Council of Medical Research (I.C.M.R.) Data and Statistics.



विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में चित्रित मध्यवर्गीय जीवन ('नौकर की कमीज़' के विशेष सन्दर्भ में)

—डॉ. प्रणीता. पी

हिंदी विभाग, कुसाट, केरल।

वर्ग वास्तव में मानव समाज की वह व्यवस्था है, जहाँ समाज के व्यक्ति समूह का होना तय होता है। मानव समाज ने जब से अपने आप को अर्थ संचय की प्रक्रिया से जोड़ा, तब से मानव समाज में बड़े-छोटे की भावना ने घर करना आरम्भ कर दिया। मिल्टन एम जॉर्डन ने कहा है “धन, आय, व्यवसायिक स्तर, सामुदायिक शक्ति, दल की विशिष्टता, उपभोग का स्तर और पारिवारिक पृष्ठभूमि, व्यक्तियों को इनके वर्गों में प्रतिष्ठित कराने वाले आवश्यक तत्व है।”¹ एनसाइकोपीडिया ब्रिटानिका में वर्ग की अवधारणा के बारे में लिखा गया है- ‘किसी विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति का स्तर उसकी आय, उसकी संपत्ति, जीविका, रहन सहन का स्तर, शिक्षा, उसकी व्यक्तिगत शक्ति, जिसके आधार पर वह समाज के अन्य व्यक्तियों के बीच अपनी विशिष्ट स्थिति का निर्माण करता है।’² इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्ग का निर्माण कार्य योजन, आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक स्थिति, खान-पान आदि के द्वारा होता है। समाज में मुख्यतः तीन प्रकार के वर्ग पाए जाते हैं- उच्च वर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग।

हिंदी साहित्य कोश में मध्य वर्ग की विशेषता को बताते हुए बताया गया है कि- ‘पूंजीवादी व्यवस्था ने समूचे समाज को तीन भागों में विभाजित किया है ‘बुर्जुआ, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग। मध्य वर्ग सामंतवादी व्यवस्था में पाया नहीं जाता, क्योंकि उस समय जमींदार और किसान का सम्बन्ध सीधा था, किन्तु पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल कर दिया है कि एक मध्यवर्ग की भी आवश्यकता हुई, जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं। मध्य वर्ग विशेषतः बुद्धि प्रधान वर्ग माना गया है और सामाजिक क्रांति के प्रायः समस्त विचारों का सर्जन मध्य वर्ग में होता है।’³

हिंदी उपन्यास के आरम्भ से लेकर उसके साथ मध्य वर्ग का सम्बन्ध रहा है। विद्वानों का मत है कि उपन्यास एवं मध्यवर्ग के बीच तिहरा सम्बन्ध रहा है। जैसे ‘पहला यह है कि यह विधा मध्य वर्ग के सदस्य द्वारा ही लिखता रहा है, दूसरा उपन्यास में मध्य वर्ग के जीवन या उनकी दृष्टि में अन्य वर्गों के जीवन का चित्रण होता रहता है और तीसरा यह है कि उपन्यास का लक्षित पाठक सामान्यतः मध्य वर्ग ही रहा है। इसलिए ही मध्यवर्ग के जीवन के प्रत्येक पहलू उपन्यास में प्रतिबिम्बित है। यहाँ तक बताया गया है कि हिंदी उपन्यास विधा का शैशव भारतीय मध्य वर्ग का शैशव था, जैसे-जैसे मध्य वर्ग प्रौढ़ होता गया, वैसे-वैसे हिंदी उपन्यास में भी प्रौढ़ता आती गयी। हिंदी उपन्यास के अब तक का इतिहास भारतीय मध्य वर्ग का इतिहास है, मध्यवर्ग के द्वारा लिखित इतिहास है और भारतीय मध्यवर्ग के लिए लिखित इतिहास है। सचाई यह है कि हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन की उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में विनोद कुमार शुक्ल का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने उपन्यासों के केंद्र में

मध्यवर्गीय जीवन को ही रखा है। 1979 में प्रकाशित पहला उपन्यास 'नौकर की कमीज़', 1997 में प्रकाशित 'दीवार में खिड़की रहती थी', और 1996 में प्रकाशित 'खिलेगा तो देखेंगे' उनके अभी तक प्रकाशित उपन्यास हैं। इन तीनों उपन्यासों का परिवेश मध्यवर्गीय जीवन है। 'खिलेगा तो देखेंगे' ग्राम जीवन के इर्द-गिर्द घूमनेवाला उपन्यास है। वहाँ के रीति रिवाज़, परम्परायें और जीवन के प्रति आस्था उपन्यास में देखने को मिलती है। कोटवार, गुरूजी, देहीं, शाला निरीक्षक, पुलिस थानेदार, स्टेशन मास्टर, दीना, घसिया, मुन्नी- मुन्ना जैसे समाज के विभिन्न वर्गों के पात्रों के माध्यम से उपन्यास की कथा आगे बढ़ती है। उपन्यास के केंद्र में एक गाँव के स्कूल शिक्षक का परिवार है। यह परिवार आंधी पानी में स्कूल की छत गिर जाने के कारण एक थाने में, जो उजाड़ हो चुके है, में रहने को विवश हैं। उपन्यास में जिस गाँव की कथा वर्णित है, वह खुद एक त्रासद नियति से अभिशप्त है। गरीबी, साधन हीनता आदि के बीच के जीवन को लेखक ने कल्पना तथा फंतासी के माध्यम से जीवंत किया है। 'दीवार में खिड़की रहती थी' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र एक मध्यवर्गीय परिवार का रघुवीर प्रसाद है, जो एक इंटरमीडियेट कॉलेज का गणित अध्यापक है। उनके परिवार के मध्यवर्गीय जीवन का वृत्तान्त है यह उपन्यास। ऐसा जीवन जिसके सामने अभावों, तकलीफों तथा एक नियति की तरह उसे ढोने की अंतहीन संघर्ष यात्रा है। वहीं उस जीवन के अपने स्वप्न हैं, इच्छाएं हैं। इस प्रकार युवा वर्ग के सपने, आशा-आकांक्षाओं एवं अन्धकारमय बने भविष्य को संवेदनात्मक जुड़ाव के साथ उपन्यास में उजागर करते हैं। जीवन में दुःख और अवसाद के अनुभव सहना मध्यवर्ग की नियति बनी हुई है। यों विनोद कुमार ने अपने तीनों उपन्यासों के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन के सामाजिक, आर्थिक परिवेश एवं उनके संघर्षों की अभिव्यक्ति की है।

'नौकर की कमीज़' के केंद्र में एक दफ्तर का परिवेश है, जहाँ कुछ बाबू लोग, एक बड़ा अफसर और चपरासी हैं। आज के ब्यूरोक्रेसी और अहसान फरामौश लोगों पर यह उपन्यास सीधा प्रहार ही नहीं करता, अपितु छोटे-छोटे वाक्यों के सहारे व्यंग्यात्मक शैली में अनुकूल माहौल भी तैयार करता है। संतू भाई और उनकी पत्नी इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। पूरे उपन्यास में पत्नी का नाम कहीं भी नहीं आया है। संतू बाबू सरकारी दफ्तर में काम करने वाले एक क्लर्क या 'बाबू' के प्रतिनिधि हैं। उनकी पत्नी एक घरेलू औरत के प्रतिनिधि मानी जा सकती है। ये पति पत्नी वास्तव में मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन की इकाई है। उपन्यास के अधिकतर पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ही आते हैं। अड़े भाई, भाभी, बड़े बाबू, देवांगन बाबू, महंगू साहब, साहब की पत्नी, डॉक्टर और उसकी पत्नी, आदि उपन्यास के अन्य पात्र हैं। उपन्यास में उपर्युक्त पात्रों के अलावा नाऊ, खोमचेवाला, माली चौकीदार, मेहत्तर, मिस्त्री, गुरूजी, संतरी, टिकरापारा बस्ती के लोग, होटल का बाल मजदूर, मोची, ट्रक ड्राइवर आदि पात्र भी हैं। इन प्रतिनिधि पात्रों के जीवनानुभवों और रोजमर्रा की जिंदगी के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सन्दर्भों का उदघाटन उपन्यास में हुआ है।

एक क्लर्क की दिनचर्या के रूप में- घर से बाहर जाना, घर वापस आना, पुराने किस्म की अम्मा और घरेलू बीबी से अपने हिस्साब से बात करना, संपन्न मकान मालिक से दबकर बर्ताव करना, बेहोशी की हालत में उसे गालियाँ देना, साहब के घर जाना जैसे सामान्य लगने वाले प्रसंगों से होकर यह उपन्यास आगे बढ़ते हैं। निम्न मध्यवर्गीय पीड़ा, घुटन, मजबूरी आदि तथा संपन्न वर्ग की सुविधा भोगिता और चालाकी ही उपन्यास प्रकट करते हैं। संतू बाबू और उनकी पत्नी अपने घर को संभालने और ठीक से चलाने की पूरी कोशिश करते हैं। इस कोशिश में संतू बाबू का 'वेतन एक कटघरे की तरह है।' वे इस कटघरे से बाहर नहीं जा सकते। कभी कभी उनके माँ भी इस कटघरे में शामिल

हो जाती हैं। संतू भाई का बड़ा भाई अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ दूसरे कसबे में रहता है। माँ दोनों भाईयों के पास आती-जाती रहती है।

संतू बाबू को लम्बी बेकारी के बाद यह नौकरी मिली है। इसलिए वह पूरी ईमानदारी और मेहनत से नौकरी करना चाहते हैं। वे छुट्टी के दिन भी घूम-फिरकर दफ्तर पहुँच जाते हैं। ताकि दफ्तर में अपनी नौकरी होने का एहसास कर सकें। हालाँकि छुट्टी के दिन दफ्तर में ताला लगा होता है। इसलिए वे कोई काम नहीं कर पाते, पर शीशे की खिड़की को खट-खटाकर आवाज़ करके सरकारी फाईलों पर बैठे चूहे को भागने की कोशिश करते हैं। इसे वह दफ्तर का काम ही मानते हैं। पर ईमानदार होने के कारण उसे दफ्तर का 'अच्छा बाबू' नहीं समझा जाता। अपनी ईमानदारी के कारण संतू बाबू दफ्तर की व्यवस्था में खुद को फिट नहीं पाते। उनके लिए यह व्यवस्था ऐसी एक कमीज़ है, जिसे वह पहनना नहीं चाहते। यह कमीज़ उस नौकर की कमीज़ के सामान है, जिसे 'साहब' ने अपने नौकर के लिए पहले से बनवा कर रखा है। खुद लेखक के शब्दों में 'नौकर की कमीज़ एक सांचा था, जिससे आदर्श नौकरों की पहचान होती।' व्यवस्था भी एक ऐसी ही कमीज़ है, जो पहले से बनी बनाई है। संतू बाबू व्यवस्था की कमीज़ को पहनना नहीं चाहते। वे अकेले व्यवस्था तोड़ने की क्षमता भी नहीं रखते। व्यवस्था पुरानी है, मज़बूत और जटिल भी। वे जानते हैं इससे अकेले लड़ पाना कठिन है। इसलिए उनकी इच्छा है कि 'दौड़ते हुए समुद्र को इतना छोटा कर देना है, कि उसके चारों तरफ चौकस नज़र रहे। दोस्तों की संख्या बढ़ाकर, दुश्मन को घेर लेना है।'⁴ इसलिए वे दफ्तर के लोगों को भी एकत्रित करना चाहते हैं। यह आसान काम नहीं है। क्योंकि दफ्तर के बड़े बाबू, गौरा हा बाबू और देवांगन बाबू सभी ने व्यवस्था से असंतुष्ट होते हुए भी इसे जस का तस स्वीकार कर लिया है। संतू बाबू उनके मन में दबी विरोध की तेल से भीगी बाती को उकसाकर उसे चिनकारी दिखाने का काम करते हैं। यह काम धीरे-धीरे होता है। इसके लिए संतू बाबू को उन लोगों का विश्वास जीतना पड़ता है। साहब का विश्वास जीकर व्यवस्था के सामने झुकने की अपेक्षा सहकर्मियों का विश्वास जीतकर व्यवस्था का विरोध करना संतू बाबू को ज्यादा ठीक लगता है। उनको यह अच्छी तरह पता है कि 'एक बारगी कोई गर्दन काटने के लिए आये तो जान बचाने के लिए जी। जान से लड़ाई होती। इसलिए एकदम से गर्दन काटने कोई नहीं आता। पीढ़ियों से गर्दन धीरे-धीरे कटती है। इसलिए खास तकलीफ नहीं होती और गरीबी पैदाईशी होती है।'⁵ यहाँ लेखक व्यंग्य करते हैं कि पैदाईशी गरीबी के लिए कोई व्यवस्था को दोष कैसे दे सकता है! फलतः लोग मां बैठते हैं कि यह गरीबी भगवान की दी हुई है, यह जन्मजात गरीबी है!

उपन्यासकार के शब्दों में 'संघर्ष का दायरा बहुत छोटा था। प्रहार दूर-दूर से और धीरे-धीरे होते थे इसलिए चोट बहुत ज़ोर की नहीं लगती थी। शोषण इतने मामूली तरीके से असर डालता था कि विद्रोह करने की किसी की इच्छा नहीं होती थी या विद्रोह बहुत मामूली किस्म का होता था।'⁶ वास्तव में यह व्यवस्था का प्रहार था व्यवस्था ने अपनी शोषण रूपी जहर को समाज रूपी शरीर की धमनियों में घोल दिया है। जिस तरह दूषित हवा और पानी जीवन को धीरे-धीरे मारते हैं, उसी प्रकार भ्रष्ट व्यवस्था भी मनुष्य और उसकी मनुष्यता को धीरे-धीरे मारती है। संतू बाबू और पत्नी इस बात को अच्छी तरह समझते हैं। वे इस व्यवस्था में प्रति विद्रोह न कर पाते हुए भी इसका विरोध जरूर करते हैं। इस काम में पत्नी का साथ होने से संतू बाबू को एहसास होता है कि गरीबी में भी सुख है जबकि दरिद्रता दुःख है।

पढ़ाई के बाद बेकारी और उसके बाद कुछ समय इंतज़ार करने के बाद संतू बाबू एक सरकारी दफ्तर में क्लर्क बने हैं। वे खुद कहते हैं 'शुरू में छुट्टी के दिन की आदत मुझे नहीं पड़ी थी। छुट्टी का दिन मुझे बेकारी का दिन

याद दिला देता था। छुट्टी का दिन नौकरी से अलग कर दिया गया दिन लगता था।⁷ विनोद कुमार शुक्ल के अनुसार 'उपन्यास लिखना नौकर की कमीज़ लिखने से शुरू हुआ। जिन दिनों उन्होंने उपन्यास लिखना शुरू किया, उन्हीं दिनों वे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए टाइप के साथ रेडिओ सुधारना सीखने की कोशिश भी कर रहे थे। उपन्यास में भी संतू बाबू का मित्र सम्पत रेडिओ सुधारना सीखता है ताकि उसकी आर्थिक स्थिति सुधार सके। संतू बाबू का भी इच्छा है कि वह रेडिओ सुधारना सीखकर अपनी आर्थिक हालत बेहतर कर सकें। विनोद जी अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि 'नौकर की कमीज़ की संतू बाबू की कथा मेरी आत्मकथा के करीब होने लगी थी।' उनके अपने कथन से ही स्पष्ट है कि उनका जीवन मध्यवर्गीय पारिवारिक स्थिति में अभावग्रस्त एवं संघर्षरत रहा है।

'बड़े बाबू' उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है। वे भी संतू बाबू की स्थिति से गुज़र चुके हैं। पर उनके अनुभव ने उन्हें समझौता करना सिखाया है। वे न तो साहब से उलझना चाहते हैं और न ही अपने नीचे काम करनेवाले बाबुओं से। उनकी मान्यता है कि जीवन में कितने अधिक काम बिना किसी को नाराज़ किये बन जाये उतना ही अच्छा है। इसलिए वे एक तरफ साहब की खुशामद करते हैं, तो दूसरी ओर संतू बाबू का भी ध्यान रखना चाहते हैं। वे उपन्यास में परिस्थितियों से समझौता कर चुके अर्धव्यक्ति की तरह हैं, जो बेवजह किसी से भी झमेला मोल नहीं लेना चाहता है। गौरह बाबू और देवांगन बाबू न तो संतू बाबू की तरह नए नहीं हैं और न ही बड़े बाबू की तरह पुराने। वास्तव में वे दोनों समझौता करने की राह पर हैं। इसलिए व्यवस्था के प्रति मन में आक्रोश लेकर भी यए व्यवस्था के डर में जीते हैं। एक तरफ उन्हें समझ में आ चुका है कि साहब को खुश किये बिना दफ्तर में ठीक से काम कर पाना मुश्किल है। उन्हें यह भी पता है कि साहब अगर खुश है तो दफ्तर में काम करो या न करो कोई पूछनेवाला नहीं है। इन दोनों में होड़ लगी है कि साहब को अधिक खुश कौन रख सकता है। साहब को खुश करने का मतलब साहब के खर का काम करना है। साहब की पत्नी की खरीदारी में सहायता करना है।

उपन्यास में महंगू नामक पात्र जो दफ्तर का चपरासी है, के बारे में बताया गया है कि 'जब वह पैदा हुआ था, तब उस ज़माने में महंगाई रही होगी, इसलिए उसका नाम महंगू पड़ा। महंगाई कभी ख़तम नहीं होगी, इसलिए मरते समय भी वह ऐसा लगेगा जैसे अभी अभी पैदा हुआ है।'⁸ उसके मार जाने के बाद उसका बेटा उसकी जगह पर काम करता है। बेटे का नाम महंगू ही पद जाता है। अर्थात् महंगाई तब तक रहेगी जब तक दुनिया रहेगी। आज से बीस साल पहले भी महंगाई थी, बीस साल बाद भी महंगाई रहेगी। महंगू इस प्रकार एक प्रतीक बन जाता है। महावीर एक ऐसा चरित्र है, जो वर्तमान समाज में खोमचे लगाने वाले, पान ठेले चलाने वाले, छोटे-छोटे व्यवसाय चलाने वाले और रोजाना मजदूरी के लिए श्रमरत वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। म्युनिसिपल स्कूल के बाहर नीम के पेड़ के नीचे 'मूंगफली बेचनेवाला महावीर'।

सम्पत किसी भी घटना का नकारात्मक विश्लेषण करता रहता है। उसे दुनिया में सब कुछ ख़राब लगता है। उसे दुनिया हमेशा संकट में ही दिखाई देती है। मकान मालिक, साहब और दुकानदार गुप्ता जी शोषक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं। उपन्यास में बताया गया है कि गरीबों, जरूरत मंदों, मातहतों पर उपकार करके उसके बदले में उनसे काम करवाना या उनका शोषण करना ज्यादा आसान हो गया है। मकान मालिक मुफ में संतू बाबू का इलाज करता है। इसमें डॉक्टर का कोई नुकसान नहीं होता और न ही उसे अलग से मेहनत करनी पड़ती है। पर संतू बाबू पर वह एहसान जताकर उनसे अपना काम करवा लेता है। बल्कि उनकी पत्नी से नौकरानी जैसा काम करवा लेते हैं। इसी तरह दफ्तर का साहब भी बाबुओं से अपने घर का काम करवाता है। उपन्यास में बताया गया है कि दफ्तर के साहब

कभी चपरासी या नौकर को घर की बची हुई चीज़ नहीं देंगे।

एक पीपा भर काजू घुन लगकर खराब हो चूका था। साहब की पत्नी ने महंगू से कहकर उसे धुप में डलवा दिया। काजू में जाले भी लग गए थे। इस घुन लगे काजू को साहब अपने घर आनेवाले सभी बाबूओं को देते हैं। इस तरह वे एहसान करते हैं कि महंगाई के समय में हमने तुम्हें काजू खिलाया और दूसरी तरफ अपने खराब हुए काजू को बर्बाद होने से बचा लेते हैं। साहब एक जगह कहते हैं 'मैं अपनी कमीज़ नौकर को कभी लेना नहीं चाहूँगा। जो मैं पहनता हूँ, उसे नौकर पहने, यह मुझे पसंद नहीं है। मैं घर का बचा-खुचा खाना भी नौकरों को देने का हिमायती नहीं हूँ। जो स्वाद हमें मालूम है, उनको कभी मालूम नहीं होना चाहिए। अगर यह हुआ तो उनमें असंतोष फैलेगा। असंतोष फैलेगा तो नौकर विद्रोह करेगा। अपनी वर्तमान हालत में सुधार करने की कोशिश करेगा। इस तरह वह साहब के हाथ से निकल जायेगा। अतः नौकर को नौकर ही बने रहने देने चाहिए। उस पर दया एक सीमा तक ही करनी चाहिए।

नौकर की कमीज़ उपन्यास में विनोद कुमार शुक्ल ने सरकारी दफ्तर की कथा कहने के साथ अन्य मध्यवर्गीय विडम्बनाओं को कहने की कोशिश की है। गरीबी के कारणों और शोषण के तरीकों को बड़ी खूबी से पाठकों के सामने पेश करते हैं। निम्न मध्यवर्गीय किसानों की मजदूरी को लेखक ने यों व्यक्त किया है- 'कूँए, मोटर पम्प इत्यादि बड़े किसान के पास हैं। नहर के किनारे की जमीन भी उसकी ही होगी। रोपा बोने का खतरा छोटा किसान नहीं उठाता। अगर उनकी फसल खराब हो गयी तो ये लोग बड़े किसान के यहाँ मजदूर हो जाते हैं। और बहुत सस्ते में काम करने को तैयार हो जाते हैं। तब बड़े किसान की धान की लागत सस्ती मजदूरी से कम हो जाती है। साथ ही साथ बाज़ार में खराब ऋसल के कारण धान की कीमत बढ़ जाती है। अतएव बड़े किसानों को अधिक मुनाफा मिलता है और चावल दलालों, व्यापारियों के बीच से गुजरता कई गुना महँगा हो जाता है। विडम्बना यह है कि 'ज्यादातर खरीदार यानी वही छिटका बोने वाले छोटे किसान और छोटे हो जाते हैं।' नौकर की कमीज़ में सेठों और साहूकारों के दोहरे जीवन की कथा, खोमचेवाले की कथा जैसी कई उपकथाएं भी मौजूद हैं। इस उपन्यास का कथाफलक बड़ा है। डॉ नामवर सिंह ने इसे हिंदी के पाँच कालजयी उपन्यासों की श्रेणी में रखने का सुझाव दिया था।

उपन्यास के पात्रों के बीच सामान्य सी कही जाने वाली बहुत मामूली और उबाऊ बातचीत में अचानक उभरकर सामने आनेवाला कटु व्यंग्य मध्यवर्गीय जीवन के गहरे छुपे अर्थ को चमकीला बना देता है। क्लर्क के जीवन की त्रासदी, उनके कुंठित होते स्वप्न, निम्नवर्गीय जीवन में होनेवाले अन्य प्रकार के शोषण आदि यहां दृष्टव्य हैं। मध्यवर्गीय जीवन में आनेवाले उतार-चढ़ाव, उबाऊ जीवन, मानसिक संत्रास एवं उनकी गिरती हुई जीवन स्थिति का विनोद जी ने आत्मीय शब्दावली में वर्णन किया है। उनकी भाषा अनुभूति को स्पष्ट करने में सक्षम और परिवेश से उभरी स्थितियों का हमसफर लगता है।

विनोद कुमार शुक्ल हिंदी साहित्य में अपनी अनूठी भाषा और शिल्प के लिए जाने जाते हैं। वे छोटी छोटी घटनाओं के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं को हमारे सम्मुख रख देती हैं। वर्तमान व्यवस्था जिस प्रकार मध्यवर्ग पर असर डालती है, जिस प्रकार उन्हें अपने शिकंजे में जकड़ती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है यह उपन्यास। उपन्यास के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'नौकर की कमीज़ उपन्यास भारतीय जीवन के यथार्थ और आदमी की कश्म कश्म को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसके पात्र मायावी नहीं बल्कि दुनियावी हैं, जिनमें कल्पना और यथार्थ के सर एक साथ पिरोये गए हैं। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि किसी

पात्र को अनावश्यक रूप से महत्त्व दिया गया हो। हर पैरे और हर पात्र की अपनी महत्ता है '...केन्द्रीय पात्र संतू बाबू एक ऐसा दुनियावी पात्र है जो घटनाओं को रचना नहीं बल्कि उनसे जूझने के लिए विवश है और साथ ही इस सोसाइटी के हाथों इस्तेमाल होने के लिए भी।'¹⁰ मध्यवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति आर्थिक अभाव, गरीबी तथा पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच जीवनयापन करते हुए जो द्वंद महसूस करता है, जिन सपनों को संजोए रहता है, जिस तरह का जीवन जीता है, जिन संघर्षों से गुज़रता है, वे सारे अनुभव लेखक ने अपने उपन्यास में समाहित किया है।

सन्दर्भ :-

1. मिल्टन एम जॉर्डन, सोशल क्लास इन अमेरिकन सोसाइटी, पृ. 3
2. एनसाइकोपीडिया ब्रिटानिका, भाग 5, पृ. 450
3. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, पृ. 621
4. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज़, पृ. 14
5. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज़, पृ. 19 - 20
6. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज़, पृ. 28
7. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज़, पृ. 34
8. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज़, पृ. 113
9. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज़, पृ. 219
10. नौकर की कमीज़, फ्लैप



The Yakka Tribes of Ancient Sri Lanka and the Nature of Contemporary Yakka Beliefs

-Dr. Kumudini Maddumage

Senior Lecturer, Department of Performing Arts,
University of Colombo, Sri Palee Campus, Wewala, Horana, Sri Lanka.

Abstract :-

As a part of Sri Lanka's diverse culture and population, many ethnic groups and tribes of various origin coexists within its borders. These tribes have been mentioned in literature, folklore, legends and epic poems as well and have contributed to the rich culture and heritage of the island. Among these tribes the Yakka tribe inhabited the mountains where they had used monsoon wind to mould iron. This study aims to dive deep into the ancient Yakka tribes of Sri Lanka and their practices, livelihood, beliefs and deities. Furthermore this research focuses on the more contemporary Yakka beliefs and how they have shaped Sri Lankan society in the present. A qualitative research methodology was employed and data collection for this historical research was done from books. This study concluded that the ancient Yakka tribe consisted of a civilized society with their own deities and beliefs. These beliefs transcended the confines of time as they are still seen in the practices and rituals of the modern day Sri Lankan as well.

Keywords : Yakka, tribes, religions, rituals, myths, legends.

Introduction :-

Upon the arrival of the Aryan migrant settlers to India, people who lived in India were forced to migrate to Sri Lanka due to the harm and torture they endured under Aryans. Yakka is a community of people who formed settlements in that manner. The Mahakavya books written during the post-Vedic era, Hindu religious texts, Buddhist literary texts and the Vamsakatha texts in Sri Lanka depict the Yakka people to be a mysterious group of people who were cannibals. Yet they were not such an appalling, inhumane group of people. According S. C. Paul's the book 'Pre Vijayan legends'; they were a pre Mongolian group of people who knew the techniques of growing paddy in 'liyadi' method. Some believe the Yakka people to have belonged to the Austroloid group of humans. The Samanthakuta Varnana of Yakka people described them to be fast, rough and very fierce. Their skin had been black in colour with thick grown hair, thick lips and a strong body.

Methodology :-

A qualitative research method was followed based on primary and secondary sources and experiences gained through field visits. Interviews were also done in gathering further information.

Literature Review :-

The Indians who lived before the arrival of the Aryans had believed in many religions. Most of them had performed rituals to inhuman deities such as Asura, Yaksha and Rakshasa. They believed these deities to be their Gods. Though the Gods such as Indra and Varuna were worshipped in the post-Vedic era even by royalty and high cast members such as Brahmins, the majority of the common public had worshipped the Yakka.

The Yakka deities worshipped by Sri Lankan Yakka tribesmen could be found in books such as Mahavansa and folklore as well. Among them are Kalawela, Chetiya, Maheja, Viyadi, Chiththaraja, Vesamuni etc. Mahavansa mentions Yakka worship during the 4th century B.C when King Pandukabhaya had constructed places of worship for deities Chiththaraja and Kalawela. This proves that even though king Pandukabhaya was of Aryan descent, he had to sponsor non-Aryan worship as well.

Yakka people lived in highlands and they were powerful militants. After battle with the Aryans who arrived from India, the Yakka people migrated into the southern parts of India. The Yakkas had to conduct fierce battles against the Aryans. The security officers of Yakka people are mentioned as 'Rakshasa' in Sanskrit texts. Ramayan written by Valmiki elaborates upon this.

Mahavansa; the ancient chronicle of Sri Lanka signifies the first Aryan immigration to be the arrival of Prince Vijaya of Lata country of India and his seven hundred followers. They landed on Thammana located in the North Western coast of Sri Lanka. At the moment of their arrival, there happened to be a wedding ceremony of a daughter of the Yakka tribe in the city of Siriwasthu. The Yakkas had decorated the celebration with pearls and gems and adorned themselves with pearls and gems while celebrating it with loud music. This proved the Yakkas to be a decent and well civilized group of people. There remains another important fact mentioned in Mahavansa; the beautiful Yakka woman Kuweni whom prince Vijaya encounters upon his arrival had been weaving cotton. Cotton is of use if the people who lived in that particular era wore clothes. Clothing indicated of a society of civilized people; not of an uncivilized, undisciplined group of people, further proving that Yakka people who lived before the arrival of Aryans were a cultured group of people. The wedding ceremony of the city of Siriwasthu was recorded in Mahavansa which was written 1000 years after the arrival of Vijaya. However the book Deepavansa, which was written before Mahavansa, records similar details.

According to Mahavansa, there had been no traces of a proper human society before the arrival of Vijaya. It mentioned that, a proper foundation in a proper human society was formed with the arrival of Vijaya during 543 B.C. Vijaya mass murdered the Yakka tribesmen and married the Yakka woman Kuweni. Later he abandoned Kuweni and their two children to be wed to an Indian princess. Prince Vijaya and his followers did not arrive on a vacant land without a society. The historical texts mentioned above as well as unwritten sources proved that there exist several tribes within the country. A prominent place is given to the Yakka tribesmen due to their skilled proficiency.

The arrival of Buddha which took place before the arrival of prince Vijaya provides further proof regarding the ancient settlements of Sri Lanka. At first Lord Buddha arrived in Sri Lanka to tame the Yakka tribes who resided in Mahiyangana. The legends stated that the feral Yakkas were exiled into Yakgiri Island. Some state the Yakgiri Island to be a part of Sri Lanka. Some texts state the Yakkas were a sub human group who were of a lower caste than Gods.

The oriental Pali texts title Lord Buddha (Deegha Nikaya, p. 11-39), God Shakra (Deegha Nikaya, p.9), other Gods (Deegha Nikaya, p. 1165) as Yakshas. According to the above, it could be said that the ancient aborigines or the pre-Buddhist tribes were generally known to be Yakkas. It is difficult to assume whether these people descend from a group of humans who were reborn as an inhuman group after the death of their human form. Yet the ancient tribal societies had venerated a specially chosen 'Yakka' deity after the death of their earthly form. The term Yakka was first found in Jeminaya Brahmana. The term Ashcharyais used to define the Yakkas and the worship of Yakkas. The term Yaksha originates from the Sanskrit root of 'saj' which stands for worshipping ceremonies, prayers and bondage. When the terms yaga and yaksha are compared together, it could be assumed that Yakshas were an ancient group of people who lived in prayer. Most scholars believe that the tradition of worshipping Yakka deities to have begun with the death of former Yakka tribesmen.

Discussion :-

The tribes of ancient civilizations of East and West had believed in the worship of dead ancestors and acquiring their power in performing rituals to the dead. The worship of Yakka deities is of similar nature. The local tribes worshipped Yakka deities in order to regain wealth and prosperity within their worldly lives. Walpola Rahula there assumes the Yakkas who lived during the reign of King Vijaya and Pandukabhaya to be a group of human beings. The following text provides further proof regarding the above mentioned :

Yaksha worship existed even before Mihidu Thero brought Buddhism to Sri Lanka. The primary and initial concepts which were formed regarding religion were a combination of primal emotions. These consisted of cruelty, pain, death and natural phenomena such as storms, water currents, volcanoes and earthquakes etc. These powerful deities of creation and destruction who can harm humanity were requested to protect humanity. In order to do that the tribes performed various rituals to please them. Even after the arrival of Buddhism and the association with Buddhism, the primary concepts of these deities remained within the people of those societies (Somersén, 2001, p. 113).

This situation prevailed as a powerful influence towards the end of Anuradhapura era. After the establishment of Mahayana or Vaithulyawadi sangha sector, monks who performed rituals and exorcisms came into being. The Theravada tradition did not promote Yakka worship. Therefore the Mahayana tradition embraced these rituals to the betterment of the worldly life of laymen. In a way, it is how the primal belief systems in Sri Lanka blended itself into the tradition of Buddhism. Later during the reign of King Gira Sanghabodhi of Anuradhapura, a Yakka named Rakkakshi had harmed the common public. The king had organized 'Balibath' rituals to please the Yakka and stop the harm which befell upon his subjects. This depicts another nature of Yakka worship of Sri Lanka.

According to the above mentioned, the Yakka worship of Sri Lanka had taken a different turn with new trends influencing the belief system as the ancient deities of Chiththaraja, Kalawela and Walawamuki slowly forgotten and new local myths emerged such as the myth of Mahasona. Among them there are many Yakkas who originated in South India. The Yakkas who became popular among the Sri Lankan villagers such as Oddi, Abhimana, Madana and Reeri Yakka are some of them. Later on these Yakkas acquired a prominent place in ritualistic literature with their own stories of origin and avatars and followers. These stories include a combination of local towns, gramas as well as South Indian towns and cities. This proves that the Sinhalese villager had adapted the Yakka beliefs with the passage of time.

The worship of Yakka is a very ancient ritual among Sri Lankans and there is ample evidence in proving it. Even if there never existed a tribe known as Yakka, there exists a powerful band of deities related to the name of Yakka. The ancients believed these Yakka deities to have invisible power to cure harm and illnesses. Nature was upheld to be divine and dead ancestors were known to be powerful entities of worship. Inanimate objects such as the sun, the moon, the sky, Earth and the trees as well as dead ancestors were the source of forming the ritualistic culture of blessing ceremonies (Shanthikarma). Basically the blessing ceremonies are performed for Gods, planets and Yakshas. The low country (Pahatharata) conducts such ceremonies regarding Kaluyaksha, Reeri Yaksha and Mahasona. Pahatharata Bentara, Udarata and Sabaragamuwa areas of Sri Lanka worship the Huniyam Yaksha.

Among them The 'Maha Kola Sanni Yaka' holds an important place because he is known to cause all kinds of illnesses. If a patient's illness is hard to be diagnosed at once, the blessing ceremony is performed in the name of Maha Kola Sanni Yaka. There are eighteen avatars for this Yaksha. They are known as Buthasanniya, Marusanniya, Jalasanniya, Vevulusanniya, Naga sanniya, Henasanniya, kora sanniya, Golusanniya, bihirisanniya, vathasanniya, pith sanniya, semsanniya, Demalasanniya, Murthusanniya, Ardasanniya, vadisanniya, deva sanniya and athurasanniya. Each and every illness has its particular avatar of Yaksha who caused the illness.

The Huniyam Yaksha mentioned before is also known in the names of Oddi kumara huniyam Yaksha,

Huniyam devatha, Oddi Yaksha and Oddisa. The harms caused by this Yaksha is known as 'huniyam dosha' and the ritual performed on behalf of it is known as 'huniyam kadima'. Huniyam Yaksha is related to Maha Kola sannu Yaksha. The appearances of these Yakshas are depicted to be cruel and monstrous and their praises are full of dark description.

Another category of Yakka worship is the 'Gara Yakka' worship. They are known in the names of Adun Gara, Sohon gara, Dosa gara and Sadun gara. Each and every Gara Yaksha has a consort named Giri. The Gara Yakshas are not harmful and they are known to cast off evil and harm. The Kalu Kumara Yaksha is also such a Yakka. He is known to cast spells upon young girls when they travel on lonely roads. He tortures them in their dreams. He is worshipped to cast off such harm done to young girls. Kalu Kumara is said to have a pitch black monstrous look and he is said to be greedy for dark skinned women. He causes illnesses upon such women. Vatha kumara and Kaluyaka are his follower Yakkas. Kalu Yaka is said to have four arms and he travels upon a cow wearing a snake along his body. He too harms women.

The Sri Lankan villagers believe in another Yakka clan to harm women known as 'Rata Yakku'. The folklore follows :

There was a huge fire in the Mahameru Mountain and Riddi princess was born out of it. She was married to Maha Brahma who left her and their seven daughters. Riddi departs to flat lands of Yakka king Vesamuni and joins forces with Kalu kumara. She was granted permission by Vesamuni Yakka to harm women and infants asking for sacrifices in return. They are known as 'Rata Yakku' and illnesses of loneliness, barrenness and harms caused to infants are asked to be cured by them.

The majority of Sinhalese in Sri Lanka are Buddhists. Yet they engage in various worshipping ceremonies which are not a part of Buddhist philosophy. Ediriweera Sarachchandra in his book 'Gaminatakaya' states that it is a common practise among village societies to engage in rituals and worship which are not a part of their mainstream religion. Therefore it is correct to categorize them under what anthropologists have entitled: folk religions. Also the Sri Lankan blessing ceremonies are a combination of Godly and Yaksha beliefs which evolved throughout time. Buddhism is a secular sect of belief but in Sri Lanka, the folk religions were combined in to the Mahayana tradition. Therefore there existed two sectors of Buddhist belief as Theravada and Mahayana. The Mahayana tradition combined the triple gem Buddha, Dhamma, Sangha with the rituals of Yakka, Deva and Graha. With that combination emerged the yantra mantra chantings of Buddhist tradition. Since Buddhism was not a worldly religion, the villagers lived in a vacuum where they were unable to fulfil their worldly requirements. Thus they combined the elements of Hinduism with Buddhism because of the dire need of prayer and rituals. Since, the Deva and Yaksha beliefs did not diminish from culture. Pathmanadan in his book 'Historical writings in medieval Sri Lanka; The reign of Parakramabahu I' states the fact of the long lasting economic, cultural and political relationships Sri Lanka maintained with India had influenced in spreading Hinduism within the country. But it should be stated that such rituals and belief systems were there with the cultural influence of Yakka worship beforehand.

Sri Lanka is an agrarian society. People had to safeguard their crops and animals from physical harm. Therefore they had to worship and seek blessings from an invisible power. The livelihood, thought systems as well as the creative arts of these people developed with it. With it, social vices such as jealousy and revenge emerged because they expected their own success but was envious of others. The evil Yakka deities were asked to cause harm on others and sacrifices were made to ensure one's own success. It was done especially if they cannot seek revenge from their enemies in public. In that case, the public had chosen Yakka worship in causing harm towards other people.

Contemporary Sri Lanka has many Yakka shrines dedicated to Yakka worship. The rituals are performed by families who have acquired hereditary rights in performing those duties in the shrines from generation to generation.

Conclusion :-

It is inconclusive whether the Yakka tribes truly existed in Sri Lanka or whether they are simply a group of invisible deities formed through social belief systems to meet with their ritualistic ideals. It could be assumed that Yakkas were a powerful group of people who enriched the Sri Lankan cultural history with regard to many aspects. Their memorable achievements as a pre-historic group of beings had venerated them into Godliness. The development of science, urbanization and complications in society has caused Yakka worship to diminish. Yet it has not disappeared entirely because a person of any caste, creed or status still worships and asks for the blessings of these deities for the betterment of their future endeavours.

References :-

1. Bentharage, L (2009) Reeriyak sankalpaya saha samajaya, Kathru publishers.
2. De Silva, D., Gunaratna, Demonology and witchcraft in Ceylon, Journal of the Royal Asiatic Society: Ceylon branch, 4, 13.
3. De Silva, W.A., (1926) Sinhalese Magic and spells, On Demonology and witchcraft in Ceylon, Journal of the Royal Asiatic Society: Ceylon branch, 30.
4. Upham, E. (1829) The history and doctrine of Buddhism popularly illustrated with the notices of The kappooism or demon worship and of the Bali or planetary incantations of Ceylon, London.
5. Garusinghe, P.S. (2007) Suniyam kapime shanthikarma saha samajaya, Kathru publishers.
6. Hettige, D. V.M., Sri Lankawe prathama muni. Eshwara pideeme devalaya ashrittha vivida sanniwedana prawanatha saha samaja sanvidana.
7. Parker, H. (1909) Ancient Ceylon.
8. Pathmanathan, (1976) Historical writings in Medieval Sri Lanka the reign to Parakramabahu I, Journal of the Royal Asiatic Society: Ceylon branch, 30.
9. Paul, S.C, Pre-Vijaya Legends, Journal of the Royal Asiatic Society: Ceylon branch, 30, 82.
10. Rajapaksha, S, (2000) Kumara Company, Colombo.
11. Ramachandra, D. (1951) Pre-Historic South India, University of Madras.
12. Sangharathana, Mahawa, (2016) Sri Lankawe Jana jeewithaya ha badunu agamika puda puja, Godage publishers, Colombo.
13. Sarachchandra, (1992) Sinhala gami natakaya, National education institute publishers.
14. Silva, Thangalle P. (1970) Huniyam shanthiya, Colombo.
15. Somersen, Tenent, (2001) Asi dutu Lankawa, Vidya saha samaja gothra, Semahala Jayawardana (Trans), National library of Sri Lanka.
16. Sri Vijayasinghe, N. , Mendis, G.C. (1966) Lanka Ithihasaye gatalu (Trans), Colombo Apothecaries company Ltd.
17. Suddahami, A. (2012) Kuweniya nam wu Yak lada, Godage publishers, Colombo.
18. Wijesekara, Nandadewa, (1907) Deities and Demons, Magic and Masks - Part I, Colombo.

Email: kumudini@spc.cmb.ac.lk

Phone Number/ Whatsapp: +94718007043



रूसो की शिक्षा पद्धति की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

– डॉ. गौरव शर्मा

सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, एसकेडी विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान।

भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों में शिक्षा के महत्व को स्वीकारा गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों एवं पाश्चात्य ग्रंथों में शिक्षा को काफी महत्व दिया गया है। शिक्षा के कारण ही भारत विश्वगुरु की महिमा से मंडित किया गया है। वर्तमान में भी शिक्षा को सर्वाधिक महत्व प्रदान है। बिना शिक्षा के श्रेष्ठ जीवन कल्पना करना निरर्थक प्रतीत होता है। मानव जीवन के प्रत्येक कार्य में शिक्षा का बहुत अधिक महत्व है। पाश्चात्य राजनीति विचारक रूसो ने शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए इसके बारे में विस्तृत विवेचन किया है। प्लेटो के महान ग्रंथ रिपब्लिक में उन्होंने शिक्षा का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। प्लेटो का जन्म यूनान के नगर एथेंस के समृद्ध परिवार में हुआ, इनके पिता एरिस्टिन एथेंस के अंतिम सम्राट काडरस के वंशज थे। इनकी माता कानूनों का निर्माण करने वाले सोलन घराने की थी। जिस समय एथेंस की जनतंत्रीय सरकार ने सत्य कहने के अपराध में सुकरात को विषपान का दंड दिया उससे प्लेटो को सक्रिय राजनीति से घृणा हो गयी और जनतंत्र पर से उसका विश्वास उठ गया। इस से प्रभावित होकर प्लेटो ने सार्वजनिक क्षेत्र से इन बुराईयों को दूर करने का संकल्प लिया। प्लेटो के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव उनके गुरु सुकरात का पड़ा। प्लेटो के मतानुसार एक अच्छा राज्य न्यायपूर्ण राज्य होता है जिसमें विवेक का शासन होता है। प्लेटो के जीवन की महत्वपूर्ण घटना थी, अकादमी की स्थापना।

प्लेटो ने अपना अधिकांश समय एक दार्शनिक और अध्यापक के रूप में बिताया। इस अकादमी में राजनीति कानून और दर्शन सभी विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। अकादमी के प्रवेश द्वार पर अंकित था- गणित से अपरिचित कोई व्यक्ति यहाँ प्रवेश न करे। प्लेटो के अनुसार राज्य के समस्त नागरिकों में पूर्ण सामंजस्य रहना और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा स्वधर्म का पालन करना ही न्याय है। इस हेतु प्लेटो शिक्षा और साम्यवाद की स्थापना करता है। प्लेटो के अनुसार शिक्षा हमारे जीवन के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव तथा पूर्व में की गई गलतियों को सुधारने का श्रेष्ठ माध्यम है। बार्कर महोदय का भी कथन है- “शिक्षा मानसिक रोग को मानसिक औषधि द्वारा ठीक करने का प्रयास है। इसी प्रकार प्लेटो का मानना है कि जिस राज्य में न्याय की स्थापना हो जाती है वह आदर्श राज्य की श्रेणी में माना जा सकता है। आदर्श राज्य की प्राप्ति के लिए भी शिक्षा और साम्यवाद दोनों को प्लेटो महत्वपूर्ण मानता है। प्लेटो के समय एथेंस और स्पार्टा में दो अलग-अलग प्रकार की शिक्षा पद्धतियाँ प्रचलित थी। एथेंस की शिक्षा पद्धति में व्यक्ति के पूर्ण विकास पर बल दिया जाता था जबकि स्पार्टा में शिक्षा की सामाजिक आवश्यकता पर बल दिया जाता था। प्लेटो शिक्षा को व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य साधन मानते हुए इसकी सामाजिक कर्तव्य परायणता पर बल देता है। प्लेटो की शिक्षा पद्धति की निम्न विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं-

1. प्लेटो के अनुसार शिक्षा के द्वारा व्यक्ति समाज के प्रति अपने कर्तव्य पालन के बारे में जानकारी प्राप्त कर उसे पूर्ण करता है, और समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त करता है। यह धारणा कि शिक्षा व्यक्तिगत सफलता की कुंजी है, के विपरित प्लेटो का विचार है कि शिक्षा सामाजिक कर्तव्य परायणता का साधन है।

2. प्लेटो का विचार है कि शिक्षा व्यक्ति द्वारा सत्य की खोज का श्रेष्ठ माध्यम है, जिसके फलस्वरूप इस जगत् से परे सत्य को भी खोजा जा सकता है। शिक्षा हमारे ज्ञान चक्षुओं को आलोकित कर सकती है।
3. प्लेटो का मानना है मानव आत्मा अपने आपको को पर्यावरण के अनुरूप स्वाभाविक रूप से ढाल सकती है। वह अपने विकास की विभिन्न स्थितियों में विभिन्न रूप से कार्य कर सकती है। अर्थात् हमारी आत्मा को हम जैसा बनाना चाहते हैं वह वैसी ही बन सकती है। यह विचार प्लेटो की शिक्षा पद्धति का आधार स्तम्भ माना जाता है।
4. प्लेटो का मानना है कि शिक्षक का कार्य व्यक्ति के अंदर छुपे हुए श्रेष्ठ तत्व को जाग्रत करना ही है, न कि उसमें विचारों को जबरदस्ती प्रविष्ट कराना, आत्मसात् कराना नहीं। बाल्यवस्था में आत्मा पर कल्पना का, किशोरावस्था में तर्क का तथा प्रौढ़ावस्था में दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार प्रारंभिक शिक्षा का स्वभाव तथा स्वरूप प्रधानतः सामाजिक है।
5. प्लेटो के अनुसार शिक्षा राज्य द्वारा नियंत्रित और अनिवार्य होनी चाहिए।
6. प्लेटो ने बिना किसी स्त्री-पुरुष में भेदभाव किए उन्हें समान शिक्षा प्राप्ति के अवसर प्रदान किए जाने की बात कहता है।
7. प्लेटो ने अपनी शिक्षा प्रणाली में कहीं पर भी उत्पादक वर्ग के बारे में उल्लेख नहीं किया है, वह केवल उच्च वर्ग के बारे में ही उल्लेखित करता है। इस प्रकार प्लेटो केवल शासक और संरक्षक वर्ग के बारे में ही शिक्षा का वर्णन करता है।
8. प्लेटो की शिक्षा उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास करना है। एवं प्लेटो के शिक्षा का मूल सिद्धान्त तो दार्शनिक राजाओं को तैयार करना था।

प्लेटो ने अपनी शिक्षा प्रणाली में इसके दो भाग किए हैं। वह प्रारंभिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा। प्लेटो की शिक्षा पद्धति के विभाजन का आधार आयु है। प्लेटो के अनुसार राज्य 10 साल तक बच्चों को माता-पिता से अलग कर उन्हें शारीरिक शिक्षा प्रदान करने की बात करता है, इसके लिए प्रत्येक पाठशाला में व्यायामशाला और खेलकूद का मैदान उपलब्ध होगा। इसके पीछे प्लेटो का मानना है कि प्रारंभिक दस वर्षों में बच्चों का स्वास्थ्य इतना सुदृढ़ कर दिया जाना चाहिए कि उन्हें भविष्य में औषधियों की जरूरत ही नहीं पड़े। प्लेटों ने 11 साल से 15 साल तक बच्चों के लिए संगीत की शिक्षा प्रदान करने का महत्व बताया है कि इससे बालक में मानसिक मृदुलता का विकास हो सकता है। साथ ही साथ बालको को गणित, इतिहास और विज्ञान जैसे विषयों को भी गीत पद्धति के द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए। सोलह से बीस साल तक की अवधि में बालकों को नैतिक शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा पद्धति का उद्देश्य यह था कि व्यक्ति को राज्य में उसकी स्थिति के योग्य बनाना था। प्लेटो बीस की आयु में एक परीक्षा लेने की बात कहता है और इस परीक्षा में असफल होने वाले बालको को सैनिक या फिर उत्पादक वर्ग में शामिल करने की बात कहता है। जो बालक इस परीक्षा में सफल हो जाते हैं, उनके लिए प्लेटो पुनः आयु आधारित शिक्षा की व्यवस्था करता है। इसमें प्रथम 20 से 30 साल तक जिसमें बालकों को गणित, नीतिशास्त्र, ज्योतिष और दर्शनशास्त्र की शिक्षा प्रदान कर एक परीक्षा की योजना बनाता है।

इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहने वाले राज्य के साधारण अधिकारी के पदों के लिए योग्य माने जाएंगे। तथा द्वितीय स्तर पर सफल रहने वाले नागरिकों को पुनः 5 साल तक गणित, न्याय और तर्क की विशेष शिक्षा की योजना बनाता है। इस प्रकार उच्च शिक्षा केवल प्रतिभावान नागरिकों के लिए है। इसमें केवल बौद्धिक विकास पर ध्यान दिया जाता है। दर्शनशास्त्र इसका प्रमुख विषय कहा जा सकता है। 35 साल से 50 साल तक इन्हीं व्यक्तियों को सांसारिक जीवन की कठिनाईयों से जूझना होगा। फिर अंतिम परीक्षा ली जायेगी, जिसमें उत्तीर्ण होने वाले शासक बन जायेगे।

इस प्रकार प्लेटो की शिक्षा 50 साल में जाकर स्वतन्त्र होती है। जिसमें अंतिम रूप से श्रेष्ठ शासक को खोजा जा सकता है। इस प्रकार रूसों का यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है कि “रिपब्लिक शिक्षाशास्त्र का एक महानतम ग्रंथ है।

इस प्रकार प्लेटो की शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली शिक्षा प्रणाली है। प्लेटो की शिक्षा पद्धति में उत्पादक वर्ग को स्थान न दिया जाना, गणित और दर्शन को अधिक महत्व दिया जाना, राज्य नियंत्रित व्यवस्था और अत्यधिक लंबी और खर्चीली होने के दोषों के बावजूद इसकी अपनी अनोखी विशेषता है। इस शिक्षा प्रणाली के द्वारा राज्य में न्याय की स्थापना की जा सकती है और दार्शनिक राजाओं का खोजा जा सकता है। राज्य में सुदृढ़ शारीरिक सौष्ठव वाले नागरिक तैयार किए जा सकते हैं। राज्य में शांति एवं समृद्धि आ सकती है। प्लेटो की शिक्षा प्रणाली में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर बल दिया गया है तथा व्यक्ति की सामाजिक कर्तव्य परायणता पर भी बहुत बल दिया गया है।

पाश्चात्य विचारक प्लेटो के शिक्षा प्रणाली पर व्यक्त किए विचारों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए कहा जा सकता है कि उनकी महत्ता आज भी कम नहीं है। 15 अगस्त 1947 के बाद शिक्षा के क्षेत्र में आज अभूतपूर्व प्रगति नजर आ रही है। भारतीय संविधान में नीति निर्देशक तत्व 45 को कार्यरूप में परिणत करके उसे संविधान के अनुच्छेद 21 क में मूल अधिकार का दर्जा दिया जाना इस तथ्य का द्योतक माना जा सकता है कि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपना श्रेष्ठ प्रदर्शन करके देश के विकास में अपनी भूमिका निभा सकता है और पद प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकता है। प्लेटो ने बीस वर्ष की आयु के बाद होने वाली परीक्षा में असफल होने वाले व्यक्तियों को सैनिक वर्ग में शामिल होने की बात कहता है। आज भी देश में दसवीं कक्षा उत्तीर्ण व्यक्ति जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हो, सैन्य वर्ग का हिस्सा निर्धारित प्रक्रिया के द्वारा बन सकता है। भारतीय प्रशासनिक सेवा में काम करने वाले व्यक्ति बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ व्यक्ति ही बन सकते हैं। हालांकि आज प्रशासनिक सेवाओं में प्रवेश करने की आयु 21 साल से शुरू होती है, जबकि रूसों की शिक्षा पद्धति में यह 30 साल के बाद शुरू होती है। रूसों की शिक्षा पद्धति राज्य द्वारा नियंत्रित और अनिवार्य थी, आज भी 14 साल तक बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान रखा गया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रारंभिक 15 सालों तक केवल शारीरिक सौष्ठव पर बल पूर्ण रूप से नहीं दिया जाता है, जबकि रूसों इसे अनिवार्य मानता है कारण कि शारीरिक विकास के फलस्वरूप बीमारियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली से नागरिकों का स्वास्थ्य उत्तम बन जाता है। रूसों के समय के प्राकृतिक पर्यावरण और वर्तमान पर्यावरण में अब बहुत कुछ बदल गया है। वर्तमान में भी सैनिक स्कूलों में पढ़ाई के साथ साथ शारीरिक सौष्ठव पर बल दिया जाता है। विद्यालयों में भी खेलकूद पर बल दिया जाता है परन्तु बच्चे की व्यक्तिगत रुचि के आधार पर, अनिवार्य रूप में नहीं। रूसों की शिक्षा प्रणाली का अंतिम उद्देश्य सामाजिक कर्तव्य परायणता और दार्शनिक शासक की खोज था, जबकि वर्तमान में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास करना है। प्रत्येक व्यक्ति आज शिक्षा के द्वारा अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकता है। सामाजिक कर्तव्य परायणता उसके विवेक पर निर्भर है। आज की शिक्षा पद्धति में रटन्त विद्या पर ज्यादा काम करती है, बड़ी से बड़ी परीक्षा में निर्धारित पाठ्यक्रम की पूर्णता काम करती है। जबकि रूसों सबसे बड़ी परीक्षा में व्यावहारिक जीवन के अनुभवों को शामिल करता है। रूसों की शिक्षा प्रणाली में शिक्षा एक बोझ नहीं मानी गई है बल्कि वह जीवन को सजाने सँवारने वाली मानी गई है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी निर्धारित योग्यता के अनुसार शासन में पद प्राप्त कर सकता था, वर्तमान में पद प्राप्ति का उपाय एक निर्धारित परीक्षा में सफल होना माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को आज अपनी निर्धारित योग्यता के अनुरूप कार्य नहीं मिल पाता है। इसके दो बड़े कारण प्रथम जनसंख्या वृद्धि और द्वितीय पद प्राप्ति हेतु ली जाने वाली

परीक्षा का तरीका। आज योग्य व्यक्तियों में से भी योग्यतम व्यक्ति ही पद की प्राप्ति कर सकता है। वर्तमान में रूसों की उत्पादक वर्ग को शिक्षा से वंचित नहीं किया गया है अपितु उसे भी शिक्षा प्राप्ति का पूर्ण हक प्रदान किया गया है। अर्थात् रूसों जहाँ केवल उच्च वर्ग की शिक्षा पर ध्यान देता है, वहाँ आज सभी वर्गों के लिए राज्य के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की गई है। प्राचीन भारतीय चिंतन में भी शूद्रों को शिक्षा वंचित रखा गया था। रूसों स्त्री पुरुषों की समान शिक्षा की बात कहता है जो कि आधुनिक शिक्षा में 16 साल तक समान रूप में शिक्षा प्रदान की जाती है। जबकि रूसों प्रत्येक परीक्षा के उपरांत सफल व्यक्तियों के लिए समान शिक्षा की बात कहता है। रूसों की शिक्षा प्रणाली में यह माना जा सकता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। रूसों की शिक्षा प्रणाली में प्रारंभिक अवस्था में संगीत की शिक्षा को भी अधिक महत्व प्रदान किया गया जो अब नहीं है। रूसों प्रत्येक स्तर पर एक लंबे अंतराल के बाद एक परीक्षा की बात कहता है जबकि वर्तमान में निरन्तर परीक्षा प्रणाली की व्यवस्था की गई है। आज परीक्षा पास करने का मतलब प्लेटो की तरह परीक्षा पास करने से भिन्न है।

आज केवल निर्धारित पाठ्यक्रम के पूर्ण करने के बाद निर्धारित तरीके से ही परीक्षा ली जाती है। आज विद्यालयी शिक्षा में मात्र 33 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाला विद्यार्थी उत्तीर्ण मान लिया जाता है। जबकि उसकी रुचि का आधार इसमें कहीं पर भी दिखाई नहीं देता है। बहुत सारे विद्यार्थी न चाहते हुए भी विज्ञान वाणिज्य को छोड़कर कला वर्ग में पढ़ाई करते हैं। प्लेटों की शिक्षा में रुचि को विशेष महत्व प्राप्त है। यह शिक्षा किसी निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति करने में भी पूर्णतया सक्षम नहीं है। आज के युग में शिक्षा में शारीरिक सौष्ठव की शिक्षा को शामिल करके देश के नागरिकों का उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। रूसों अपनी शिक्षा प्रणाली में घर से दूर अर्थात् कहे कि माता-पिता के लाडलप्यार से दूर कठिन परिस्थितियों में शिक्षा की व्यवस्था करता है। भारत में भी प्राचीन काल में गुरुकुल में शिक्षा प्रदान की जाती थी। जिसमें बच्चे समस्त प्रकार के संस्कारों से परिचित हो जाता था। अतः आज भी कम से कम कक्षा 12 तक की शिक्षा पूर्णतः आवासीय होनी चाहिए। ताकि बच्चा कम से कम माता-पिता के निकट रह सके, इसमें प्राचीन भारतीय धारणा व्याप्त है कि गुरु ही माता-पिता है। वर्तमान की शिक्षा प्रणाली में संस्कारों का अभाव बनता जा रहा है। शिक्षा में संस्कारों का होना अति आवश्यक है। शिक्षा का मतलब शिक्षा होना चाहिए।

आज के युग में शिक्षक शिक्षा प्रदान करने से ज्यादा अन्य कार्यों में ज्यादा मशगूल दिखाई देता है। आज की महत्ती आवश्यकता है कि शिक्षक को अन्य सभी कार्यों से दूर रखते हुए केवल शिक्षा प्रदान करना रखना चाहिए। एक निर्धारित मापदंड से बच्चों को पाठ्यक्रम रटाने की अपेक्षा शिक्षक को बच्चों को कम से कम दस साल तक अपने तरीके से शिक्षा प्रदान करने की छूट प्रदान की जानी चाहिए। बाद में उनकी परीक्षा लेनी चाहिए और उनकी रुचि को देखते हुए आगे पढ़ाना चाहिए। समस्त प्रकार के विद्यालय आवासीय होने चाहिए। शिक्षकों को भी बच्चों के साथ ही 24 घंटे रहना चाहिए। इस प्रकार से प्लेटो की शिक्षा प्रणाली के कुछ बिन्दु वर्तमान में शिक्षा के संदर्भ में लागू हैं। जबकि कुछ बिन्दुओं को जैसे शारीरिक सौष्ठव, आवासीय विद्यालयी शिक्षा को पूर्ण रूप से लागू करके देश के नागरिकों को शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं संस्कार वान बनाया जा सकता है। शिक्षा में संगीत की शिक्षा को वर्तमान में कम ही महत्व प्रदान किया गया है, इसे और अधिक महत्व प्रदान किया जाना चाहिए। नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है, इसे बेहतर तरीके से लागू किया जाना अपेक्षित है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य स्वस्थ, समर्थ, सक्षम, सशक्त, सद्गुण और सुखी समाज का निर्माण प्लेटो के लिए भी प्रासंगिक था और वर्तमान में भी यह उतना ही महत्वपूर्ण है। तभी हकीकत में न्याय की स्थापना की जा सकती है। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने का आशय शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक हो सकता है, परन्तु स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास हर हालत में होता है। महात्मा बुद्ध ने भी कहा है- शरीर के स्वास्थ्य को अच्छा रखना हमारा कर्तव्य है, अन्यथा हम अपने मन को मजबूत और स्पष्ट रखने में सक्षम नहीं होंगे। इस प्रकार प्लेटो की शिक्षा स्वस्थ शरीर की गई योजना आज भी

उत्तनी है सार्थक है, जितनी उस समय थी। प्लेटो की शिक्षा में संगीत की महत्ता कम नहीं है, आज उसकी भी उतनी ही जरूरत है, क्योंकि अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण आज विज्ञान का युग है, जिसमें मशीनों पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है बजाए मनुष्य के। अतः मन की वास्तविक शांति के लिए संगीत का होना अत्यावश्यक है। वैसे भी विज्ञान और संगीत का आपसी संबंध पाया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गाबा, ओमप्रकाश, राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स नोएडा, 2006
2. सूद, ज्योतिप्रसाद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास भाग 1, के.नाथ एण्ड कम्पनी मेरठ, 2010-11
3. देवपुरा, वैशाली, प्रमुख पाश्चात्य राजनीतिक विचारक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर-नई दिल्ली, 2015
4. जैन, पुखराज, प्रमुख राजनीतिक विचारक, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा, 2005
5. पुरोहित, बी.आर., राजनीतिक चिंतन का इतिहास, राजस्थान साहित्य ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1997
6. शर्मा, पी.डी., पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास, कॉलेज बुक डिपो, 1999
7. भारत का संविधान, भारत सरकार विधि और न्याय मंत्रालय, जैनको आर्ट इंडिया नई दिल्ली 2015
8. सम्पादक मंडल, राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका, प्रज्ञा पब्लिकेशंस मथुरा, अक्टूबर 2016-मार्च 2017 खंड 61



नाइडा, जे. सी कैटफोर्ड तथा वाल्टर बेंजमीन : अनुवाद चिंतन तथा सिद्धान्त

—डॉ मोहनन वी टी वी

सहायक प्राचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सर सईद कॉलेज, तलिपरम्बा, कण्णूर, केरल 670142

अनुवादक अपने अनुवाद :-

अनुभवों को साहित्यिक दुनिया के आगे व्यक्त करने लगे जो बाद में अनुवाद सिद्धान्तों के रूप में परिणत हुए। यह फलतः अनुवाद के मार्ग और रीति शास्त्र में बदल गया। कदापि इसका मतलब यह नहीं कि पाठक वर्ग तथा अन्य चिंतकों ने इस पर कुछ न लिखा हो। सोलहवीं सदी से लेकर इक्कीसवीं सदी तक अनुवाद सिद्धान्तों का इतिहास कालक्रम, दृष्टिकोण, लेखन-प्रक्रिया आदि के आधार पर बाँटा गया है। अनुवाद सिद्धान्त के लेखन की प्रक्रिया में यूजिन ए नाइडा, जे. सी कैटफोर्ड तथा वाल्टर बेंजमीन का विशेष स्थान है जिन्होंने अनुवाद तथा अनुवादेतिहास को सैद्धान्तिक धरातल पर खड़ा कर दिया।

सन् 1964 में यूजिन ए नाइडा ने 'Toward a Science of Translating' नामक ग्रंथ लिखा। उन्होंने इसे बाइबल के अनुवाद संबंधी सिद्धान्तों के बल पर लिखा। नाइडा ने ग्रंथ के पुरोवाक् में लिखा, 'This Volume 'Toward a Science of Translating', has been largely prompted by the nature of field work in which I have been involved during recent years in Latin America, Africa and Asia. An earlier book, Bible translator, is essentially only a practical handbook, with a kind of rule of thumb orientation. Increasingly it became obvious that in order to assist translators more satisfactorily it was necessary to provide something which would not only be solidly based on contemporary developments in the field of linguistics, anthropology, and psychology, but would also relate the specific area of Bible translating to the wider activity of translating in general. The present volume is an attempt to fill this need. उन्होंने बाइबल के अनुवाद संबंधी सिद्धान्तों के साथ-साथ नॉम चॉस्की के भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों को भी अपनाया।

नाइडा का मानना यह है कि बाइबल के अनुवाद में जिन सिद्धान्तों को अपनाया गया, वे सभी सिद्धान्त अन्य अनुवाद में भी अपनाये जा सकते हैं। नाइडा की राय यह है कि भाषा के बहुत से भेद हो, सब में अपनी मूलभूत सत्ता (a deep Coherent and Unified entity) विद्यमान है। उन्होंने चॉस्की के सिद्धान्तों से भी सहायता ली और 'core, kernel, deep structure, essence, spirit' आदि शब्दों का बार-बार प्रयोग किया। उन्होंने अनुवाद में प्रथम स्थान अर्थ को तथा दूसरा स्थान शैली को प्रदत्त किया। जेरॉम को उद्धृत करते हुए नाइडा लिखते हैं, 'Jerome's approach of translation was probably one of the most systematic and disciplined of any of the ancient translators.'

He followed well- conceived principles, which he freely proclaimed and defended, and stated quite frankly that he rendered 'sense for sense and not word for word' उन्होंने बाइबल के अनुवाद के सम्बन्ध में अनुवादकों से सवेदना सिद्धान्त तथा भाषा विज्ञान की असीम संभावनाओं पर ध्यान देने को कहा। मसीहा के विचार एवं संदेश पाठकों तक पहुँचाने के लिए विभिन्न तरीके अपनाने चाहिए। रूप पर नहीं, मूल पाठ के संदेश पर ध्यान देना चाहिए।

शुरुआत में उन्होंने चाक्रिक समतुल्यता (dynamic equivalence) का प्रयोग किया और बाद में उन्होंने उसे प्रयोजनात्मक समतुल्यता (Functional Equivalence) शब्द के रूप में परिणत किया। नाइडा का मानना यह है कि मूल भाषा भाषी के पठनीयता की स्वीकार्यता लक्ष्य भाषा भाषी पाठक तक पहुँचानी है। शब्द और प्रतीक मात्र 'लेबल' है। मगर जेसलर इसकी प्रतिक्रिया के रूप में यह कहते हैं कि इस प्रस्ताव की कोई वैज्ञानिकता नहीं है और विशेष धर्म के अनुरूप हो। जेसलर मानते हैं कि, 'Nida provides an excellent model for translation which involves a manipulation of a text to serve the interest of a religious belief, but he fails to provide the ground work for what the west in general conceives of as a 'science'.

नाइडा के सिद्धांत की मुख्य विशेषता 'कर्नल संरचना' (Kernal construction) है। उन्होंने अनुवाद के बृहत् नमूने को इस प्रकार माना है।

1. मूल कृति को सरल और अर्थ बोध के साथ अनुवाद करें।
2. संरचना के सतही तल पर अर्थ का लक्ष्य भाषा में परिवर्तन।
3. लक्ष्य भाषा में अर्थ स्तर तथा संरचना स्तर पर समतुल्य वाक्यों का निर्माण।

नाइडा के अनुसार अनुवादक के आगे कुछ योग्यताएँ अपेक्षित हैं।

1. अनुवादक मूल रचनाकार को पूर्णतः माने।
2. अनुवादक को मूल रचनाकार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हो तथा मूल रचनाकार की तरह वह प्रतिभा संपन्न हो।
3. अनुदित रचना मूल रचना की तरह पाठक को आनन्द देने में सक्षम हो।

नाइडा के अनुसार हर रचना का अपना उद्देश्य है। वह ईश्वर पर निर्भर है। हर भाषा का संदेश दूसरी भाषा के पाठक तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है। अनुवाद के इतिहास ने आगे चलकर नाइडा के सिद्धान्तों को नगण्य माना है और वह भाषा वैज्ञानिक धरातल से आगे बढ़कर सांस्कृतिक प्रतिक्रिया के रूप में परिणत हो गया। जब अनुवाद के सैद्धान्तिक धरातल का स्पष्टीकरण नहीं था तब नाइडा ने अपना अनुवाद सिद्धान्त सामने रखा।

जे सी कैटफार्ड : अनुवाद तथा भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त :-

जे सी कैटफार्ड अनुवाद को भाषा वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में मानते हैं। उन्होंने सन् 1965 में 'A Linguistic Theory of Translation' लिखा जिसमें कैटफार्ड ने पहली बार अनुवाद को भाषा विज्ञान तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान के साथ जोड़ा है। The Theory of Translation is concerned with a certain type of relation between Languages and is consequently a branch of comparative Linguistics.

कैटफार्ड ने अनुवाद- प्रक्रिया को तीन भागों में बाँटा है :-

1. **समग्रानुवाद (Full Translation/ Partial Translation)**

मूल पाठ का समग्र रूप से अनुवाद करना समग्रानुवाद है। आंशिक (Partial) अनुवाद में मूल पाठ के किसी अंश को पूर्ण रूप से या अपूर्ण रूप से छोड़ दिया जाता है। वे लिखते हैं, 'In a Partial Translation, some parts or part of the SL Text are left Untranslated: they are simply transferred to and incorporated in the TL Text.'

2. संपूर्णानुवाद परिसीमित अनुवाद (Total translation/ Restricted Translation)

संपूर्णानुवाद में मूल भाषा के व्याकरण तथा कोश को लक्ष्य भाषा में प्रेषित किया जाता है, जिसके फलस्वरूप मूलभाषा के स्वनिम व्यवस्था के स्थान पर लक्ष्य भाषा के स्वनिम व्यवस्था का संप्रेषण होता है। परिसीमित अनुवाद में मूलपाठ के लगभग लक्ष्य भाषा में समतुल्य शब्द का प्रयोग किया जाता है।

3. बहुतलीय नियत अनुवाद अनियत अनुवाद (Rank bound Translation/ Unbound Translation)

बहुतलीय नियत अनुवाद में, भाषा वैज्ञानिक धरातल पर मूलभाषा तथा लक्ष्य भाषा में समतुल्यता का प्रयोग किया जाता है। अनियत अनुवाद में वाक्य संरचना में समतुल्यता का प्रयोग किया जाता है।

वाल्टर बेंजमीन और उनका अनुवाद – सिद्धान्त :-

सन् 1923 में जर्मनी के वाल्टर बेंजमीन ने 'The task of the Translator' नामक पुरोवाक् बॉदलेयर के अनुवाद में लिखा जो बाद में अनुवाद सिद्धान्त लेखन के इतिहास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अनुवादक की महत्ता पर पुरजोर घोषणा की। अनुवादक एक दलाल नहीं है जो मूल भाषा को लक्ष्य भाषा के साथ जोड़ते हो। रचनाधर्मिता का मतलब पाठकधर्मिता नहीं है, वह मात्र अर्थ का विनिमय करता है। वे लिखते हैं, 'No poem is intended for the reader, no picture for the beholds, no symphony for the audience'. वे आगे लिखते हैं, 'If the original does not exist for the readers sake how could the translation be understood on the basis of the premise?' साहित्य की नीव अनुवाद पर टिकी हुई है।

मूल रचना के अर्थ का पुनः रचना अनुवाद के द्वारा संभव नहीं है। अनुवाद मूल रचना के 'प्रतिध्वनि' है। अनुवाद मूलकृति से जन्म लेता है और वह दूसरी कृति बन जाता है। अगर अनुवादक का हृदय काव्यात्मकता से भरे हो तो अनुवाद में भी काव्यात्मकता भर जाती है। अतः लक्ष्य भाषा पाठ का सौंदर्य अनुवादक पर निर्भर है।

वाल्टर बेंजमीन ने अनुवादनीयता पर विशेष ध्यान दिया है। मूल रचना की स्वाभाविकता से यह पता चलता है कि वह अनुवादनीयता के कितने निकट स्थान रखती है। अनुवादनीयता का मतलब मूल रचना की दिव्य-काव्यभाषा का नये सांस्कृतिक धरातल पर खड़ा करने से होता है। स्रोत तथा लक्ष्य भाषा के बीच जैविक संबन्ध होता है। अनूदित रचनाएँ साहित्यिक रचनाओं का 'पुनर्जन्म' होती है। वाल्टर बेंजमीन का कहना है कि अनुवाद मूल रचना की कथावस्तु का पुनः रचना नहीं है। कोई भी रचना अपने जन्मजात प्रवृत्तियों के साथ स्थिर नहीं होती है। परिणाम उसका स्वाभाविक गुण होता है।

बेंजमीन ने अनुवाद सिद्धान्त के इतिहास में 'शुद्ध भाषा' (pure language) का प्रयोग किया। शुद्ध काव्य भाषा को शुद्ध भाषा के रूप में अभिहित किया जा सकता है। मूल कृति के उत्थान के संदर्भ में पद तथा वाक्यों का विकास हो जाता है और अर्थ बदल जाता है।

अनुवाद भाषिक प्रक्षेपण का साधन मात्र नहीं है, वह जीवंत सांस्कृतिक परिवेश की भूमिका भी अदा करता है। अनुवाद सिद्धान्त के प्रवर्तकों ने इस पर काफी चर्चाएँ भी की थीं। अनुवाद में कलात्मकता की पृष्ठभूमि की बहुलता

है जो स्रोत भाषा की सूक्ष्मताओं को लक्ष्य भाषा में पहुँचाने में अधिकतर बाधा पहुँचा देती है। अनुवाद केवल भाषिक इकाई नहीं है। अनुवाद के सिद्धांतों को साहित्यिक दुनिया के सम्मुख रखने में यूजिन ए नाइडा, जे. सी. कैटफोर्ड, वाल्टर बेंजमीन आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नाइडा ने 'Toward a science of Translating' नामक ग्रंथ लिखा जिसमें उन्होंने बाइबल के अनुवाद संबंधी विशेषताओं को सामने रखते हुए अनुवादकों से समतुल्यता की माँग की जहाँ जे. सी. कैटफोर्ड 'A linguistic theory of Translation' में अनुवाद को भाषा वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में मानते हैं। उन्होंने पहली बार अनुवाद को भाषा विज्ञान तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान के साथ जोड़ा है। वाल्टर बेंजमीन यह मानते हैं कि हर भाषा की मूलभूत या जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं। अनुवादक का जिम्मा पाठक धार्मिता पर टिका नहीं है। जिरी लेवी, एण्डन पोपोविच, फाटिसिक माइको, आन्ध्रो लेफवेर, सूसन बासनेट, जेंस होंस आदि विख्यात चिंतकों ने आगे अपने-अपने अनुवाद चिन्तन सामने रखा।

संदर्भ :-

1. IX, Preface, toward a Science of Translating, Eugene A Nida, 1964.
2. Toward a science of Translating, Eugene. A. Nida, 1964, page. no. 13.
3. Contemporary Translation theories, Routledge, London and Newyork, Genzlor, Edwin, 1993, page no. 60
4. A Linguistic Theory of Translation, J C Catford, Oxford University Press, 1965, Page no.20
5. A Linguistic Theory of Translation, J C Catford, Oxford University Press, 1965, Page no. 21
6. The Task of the Translator, Walter Benjamin, 1923, Page no. 253
7. The task of the translator, Walter Benjamin, 1923, Page No. 254



छायावादी काव्य में मनुष्य

– नीरज शर्मा

शोधछात्र, हिन्दी विभाग, दी. द. उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

छायावादी कवि मानवतावादी थे। भारतेन्दु और द्विवेदीयुगीन मानवतावादी दृष्टिकोण को छायावादी कवियों ने नया आयाम प्रदान किया। उनकी यह भावना नवीन मानवीय मूल्यों से अनुप्राणित थी। भारतेन्दु मण्डली और द्विवेदी युगीन कवियों की रचनाओं में दीन-दुःखी तथा असहायों के प्रति दया एवं सहानुभूति की भावना विद्यमान थी। वे उनकी दीन-दशा सुधारने के लिए भगवान् से याचना कर रहे थे। किन्तु छायावादी कवियों ने इन्हीं दीन-दुःखियों को ईश्वर का स्वरूप मान लिया तथा उनमें ही ईश्वर का दर्शन किया। दीन-दुःखियों की सेवा तथा सहायता में ही उन्हें मोक्ष की प्राप्ति की प्रतीति होने लगी। छायावाद की सम्पूर्ण काव्य-सरिता मानवता की भावना से ओत-प्रोत है। छायावादी कवियों ने मनुष्य को इस संसार का सबसे सुन्दर तथा लोकोत्तर जीव स्वीकार किया है।

छायावाद की समय-सीमा लगभग 1918 ई. से 1938 ई. तक स्वीकार की जाती है। इस साहित्य-धारा के आधार-स्तम्भ जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा जैसे महान् साहित्यकार हैं। ये सभी कवि प्रत्येक दृष्टिकोण से नयी लीक पर चलने वाले थे जिनको लेकर विद्वानों ने अनेक आक्षेप किये। लेकिन वे अपनी लीक से हटे नहीं। प्रत्येक साहित्यिक वाद के कुछ मूल स्वर होते हैं। उनकी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं, जो उस काल के वाद को स्थापित करती हैं। इसीलिए तो कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है।

छायावादी साहित्य में मानव-मूल्य का होना इस कालखण्ड की महत्ता को स्थापित करता है। छायावाद का प्रथम चरण जातीय, राष्ट्रीय भावना और पुनरुत्थान की भावना से जुड़ा हुआ है। नामवर सिंह जी कहते हैं कि छायावादी काव्यधारा का पहला चरण राष्ट्रीय भावना के उत्थान से प्रेरित है तो द्वितीय चरण देश प्रेम की भावना से अनुप्राणित है। पेड़-पौधो, नदी, ग्राम, पशु-पक्षी, पहाड़-झरने, ग्राम-ग्रान्त और वहाँ बसने वाले लोगों से सहज घनिष्टता का होना स्वाभाविक है।

छायावादी साहित्य के आरम्भिक काल में पूरी मानवता बहुत ही बुरे दौर से गुजर रही थी। चारों तरफ 'त्राहि माम-त्राहि माम' का शोर मचा हुआ था। छायावादी काव्यधारा के उत्थान के समय हमारा देश अंग्रेजों के अधीन था तथा उस समय अनेक आन्दोलन भी चरम पर थे। एकाध आन्दोलन तो काफी भयानक व त्रासदीपूर्ण सिद्ध हुए जिसमें हजारों लोगों ने भारतमाता को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए सहर्ष अपने प्राणों की बलि दे दी। 'जलियाँवाला बाग' हत्याकाण्ड ने समूचे जनमानस को झकझोर कर रख दिया। अकारण ही हजारों लोगों को अंग्रेजों द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में इतनी बड़ी त्रासदी कभी नहीं घटित हुई थी। इसके बावजूद हमारे राष्ट्र-उद्धारक नेता पीछे नहीं हटे और आज़ादी के नारों को बुलन्द करते गये। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, गोखले, वल्लभभाई पटेल जैसे महान विभूतियों ने इन हत्याओं का कड़ा विरोध किया तथा अंग्रेजों की खिलाफत करते हुए अनेक लोगों ने अपने प्राणों की बलि भी दे दी। स्वतन्त्रता आन्दोलन में संघर्षरत

क्रान्तिकारियों के साथ-साथ छायावादी कवियों के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। ये कवि अपनी कविताओं के माध्यम से जन-जन में देशप्रेम की भावना को भर रहे थे और अंग्रेजी जुल्म का सामना करने के लिए देश की जनता को उत्प्रेरित भी कर रहे थे।

छायावादी कवियों में 'निराला' जी को क्रान्तिकारी तथा ओज का कवि माना जाता है। वे अपनी कविता 'जागो फिर एक बार' से किस प्रकार शोषित भारतीय जनता को जगा रहे हैं, इसकी एक बानगी देखिए :

“जागो फिर एक बार
शेरों की माँद में
आया है आज स्यार-
जागो फिर एक बार!
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है गीता है-
स्मरण करो बार बार-
जागो फिर एक बार।

- - -

तुम हो महान तुम सदा हो महान,
जागो फिर एक बार।”

भारतीय जनता अंग्रेजों की दासता में पिसने को मजबूर थी इसीलिए 'निराला' जी जगा रहे हैं। सोई हुई भारत की भोली-भाली जनता को जगा रहे हैं। गाँधी जी उस समय के एक ऐसे महान नेता थे जिनके व्यक्तित्व ने समाज, संस्कृति, कला-साहित्य सभी को प्रभावित किया। गुलाम भारत की परतन्त्र मानवता के सबसे बड़े रक्षक गाँधी जी ही थे तो उनके प्रभाव से कोई क्षेत्र भला कैसे छूट पाता। क्रान्ति के दूत 'निराला' जी की कविताओं में भी गाँधी के प्रभाव की स्पष्ट झलक दीख पड़ती है। छायावादी कविताओं में दोनों विश्वयुद्धों की गूँज सुनाई देती है। छायावादी काव्यधारा में सदियों से अंग्रेजों की गुलाम जनता की मुक्ति की आकाँक्षा जोरों से प्रकट हुई है। छायावाद ही नहीं इससे पहले के कवियों ने भी अपनी कविताओं के माध्यम से देश की जनता को परतन्त्रता की बेड़ियों से छुटकारा पाने के निमित्त बहुतेरे मार्ग सुझाये। इनमें द्विवेदी युग के आधार-स्तम्भ कवि मैथिलीशरण गुप्त जी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम इतने विकट रूप में था कि उनकी रचनाओं को अंग्रेजी सरकार ने जप्त कर लिया था।

इसी श्रृंखला से मुक्ति की छटपटाहट-हेतु युगधारा भी बहायी गयी। छायावाद की आरम्भिक कविताओं में जनमुक्ति तथा देशमुक्ति की भावना दिखाई देने लगती है। पन्त जी की कविता को जहाँ विद्वानों ने प्रकृति की भावना से ओत-प्रोत माना है, वहीं वह अपनी कविता को स्वाधीनता की चिंगारी के रूप में देखते थे। प्रकृति का कवि प्रकृति अर्थात् मातृभूमि के लिए उनकी स्वतन्त्रता की खातिर प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करता है-

“प्रथम रश्मि का आना रंगिशि
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनी!
पाया तूने यह गाना?
सोई थी तू स्वप्न नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर।”²

इस कविता में क्रान्तिरूपी चिड़िया को क्रान्ति की प्रथम (किरण) के रूप में कहते पाया गया। यह कविता अपने

आप में स्वाधीनता के प्रति एक बहुत प्रबल आग्रह है। छायावादी काव्यधारा की अनेक रचनाओं में 'राम की शक्तिपूजा', 'कामायनी', 'बादल राग', यहाँ तक कि 'सरोज स्मृति' रूपी शोक गीत में भी मानव के विजय तथा अग्नेजों से मुक्ति का स्वर सुनाई पड़ता है। महादेवी के गीतों में भी विरहात्मकता से ज्यादा मानव-मुक्ति के स्वर सुनाई पड़ते हैं :

“होगी जय होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।

कह महाशक्ति राम के बदन में लीन।”³

छायावादी साहित्य हाशिये पर पड़े हुए व्यक्तियों की बात करता है। जिन व्यक्तियों को हिन्दी साहित्य में कभी जगह नहीं मिली, उनको छायावादी कवियों ने अपने काव्य-संसार का विषय बनाया। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में किसी भी काल की रचना में दलित, उपेक्षित, नारी, समाज से बहिष्कृत कर दिये गये मनुष्यों की बात कभी नहीं की गयी है। हमेशा से ही काव्य के केन्द्र में कभी राजा-महाराजाओं का वर्णन तो कभी भगवान् की लीलाओं का वर्णन, तो कभी भोग-विलास तथा नायिकाओं की मादकता का चित्रण ही काव्य का विषय रहा है। परन्तु छायावादी कवियों ने अपनी कविताओं में ऐसे व्यक्तियों को स्थान दिया, जिन्हें कविता का कभी विषय ही नहीं बनाया गया। नारी तो हमेशा से काव्य में उपेक्षा का प्रतीक बनी रही। कबीरदास ने नारी को 'विष की बेलि' कहा है। इस महात्मा ने यहाँ तक माना है - 'यदि नारी की परछाई भी पड़ जाए तो जहरीला से जहरीला सर्प भी अन्धा हो सकता है।' इस महान सन्त की नारी के प्रति इतनी निकृष्ट सोच के विपरीत छायावादी कवियों की दृष्टि में स्त्रियों के प्रति जो सम्मान-भाव प्रदान किया गया है, उसे देखा देखा जा सकता है-

“स्नेहमयि! सुन्दरतामयि!

तुम्हारे रोम रोम से, नारि!

मुझे है स्नेह अपार,

तुम्हारी पावनता अभिमान

शक्तिपूजन सम्मान,

अकेली सुन्दरता कल्याणी!

सकल ऐश्वर्यों की संधान

देवी! माँ! सहचरि! प्राण।”⁴

वही नारी पन्त जी की निगाह में स्नेहमयि, ममतामयि, सभी ऐश्वर्यों की खान तथा देवी माँ, सहचरी तथा प्राण है। वह कबीर की नजर में भुजंग को अन्धा करने वाली विष की बेलि है। कहा जाता है न - 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'।

गोस्वामी तुलसीदास जी की रचनाओं विशेषकर 'श्रीरामचरितमानस' में भी नारी को बहुत सम्मान नहीं दिया गया है। उनका भी मानना है- 'ढोल, गँवार, सूद्र, पसु, नारी। सकल ताड़ना के अधिकाारी'। जबकि इधर छायावादी कवि तुलसीदास द्वारा नारी को प्रताड़ना दिये जाने की बात करने के विपरीत उसे प्राणों की प्राण तक मानने को उद्यत है। छायावादी कवियों की तुलना हिन्दी साहित्य के किसी भी काल के कवि से नहीं की जा सकती। वे अपने आप में अद्वितीय हैं, अद्भुत हैं। इनके समान उद्धारक दृष्टि किसी को भी नहीं मिली थी। पत्नी के प्रति व्यक्त किये गये उनके भाव का एक उदाहरण-

“प्रिये, प्राणों की प्राण!

न जाने किस गृह में अनजान

छिपी हो तुम, स्वर्गीय विधान!

नवल कलिकाओं की-सी-बाण
बल-रति-सी अनुपम, असमान-
न जाने कौन कहा अनजान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!''⁵

जिस माँ ने जन्म दिया, जिस पत्नी के प्रेम में मनुष्य (तुलसीदास) इतना पागल हो जाता है कि अर्धरात्रि में उसी पत्नी से मिलने के लिए चला जाता है। न नदी में आयी बाढ़ का ध्यान रहता है, न सर्प का। बाद में वही नारी प्रताड़ना की अधिकारी बन जाती है क्यों? नारी के प्रति इतनी हीन भावना या निम्नकोटि की दृष्टि छायावादी कवियों की नहीं है। इनका विचार तथा हृदय की भावना बहुत ही उदार है। सहृदय छायावादी कवियों की कविता का विषय 'विधवा', 'भिक्षुक', 'शिशु' है। इनकी कविताओं में उपेक्षित वर्ग को बहुत ऊँचा स्थान मिला है। एक पत्थर तोड़ने वाली युवती उनके काव्य की नायिका बन जाती है। हिन्दी साहित्य के पूरे इतिहास का यदि अवलोकन किया जाये तो यह पहला उदाहरण होगा-

“वह तोड़ती पत्थर!
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर!
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय-कर्म-रत-मन,
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार -
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार।’’⁶

गरीबों, दलितों, शोषितों के प्रति इतनी उदारता आज तक किसी काव्यधारा के कवियों में नहीं दिखाई पड़ती। छायावादी कवियों की लेखनी में जितना दर्द इनके लिए है अन्य किसी में नहीं। बेचारी विधवा को कौन अच्छी नजर से देखता है। उसको तो हिन्दू धर्म सदा से ही अभागिन मानता है। उसको शुभ कार्यों में भाग तक नहीं लेने दिया जाता। जिसे पूरा जनसमाज ही हेय दृष्टि से देखता हो उसे भला कौन अपनी कविता का विषय बनायेगा? पर ऐसी उदार दृष्टि छायावादी कवियों की है। उन्होंने विधवा को 'देव-मन्दिर की पूजा-सी' की संज्ञा दे डाली। सदा से उपेक्षित विधवा का उद्धार छायावादी कवियों ने कर दिया। यातना से त्रस्त मानवता छायावादी कविता की जान है जिसके सबसे बड़े सर्जक निराला हैं। इनके उद्धार के लिए वे हर सम्भव प्रयासरत दिखे-

“दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आए
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा
हरे तन-मन प्रीति पावन।’’⁷

छायावादी कविता मानवता की खोज की कविता है। इस काल की कविताओं में नर-नारी दोनों के सुख-दुःख की बात की गयी है। छायावादी कविता को हम मानवता के उत्थान की कविता कह सकते हैं। छायावादी कविताओं में किसानों, मजदूरों, श्रमजीवियों और युवाओं के सतत आन्दोलन की आवाज मुखरित हुई है। छायावाद मजबूर, दबे-कुचले और शोषितों की आवाज उठाने वाली काव्यधारा है। छायावादी काव्य मानवीयता का काव्य है।

यह साहित्यिक आन्दोलन हमें मानवीय बनाने का काम करता है। यह काव्यधारा मानव-मुक्ति का आख्यान है। 'निराला' जी 'परिमल' में कहते हैं, 'मनुष्यों की मुक्ति से कविता की भी मुक्ति होती है। कविता स्वाधीनता की चेतना फैलाती है। मानवता की जमीन पैदा करती है। यह राष्ट्र मनुष्यों का है, पर भारत देश मानवता का देश है। छायावादी कविताओं में प्रेम और वेदना की भावना स्पष्ट झलकती है। जो बात हमारे वेदों में नहीं, वह वेदना में है। कुछ लोगों का मानना है कि छायावाद दुखियों की टोली है। यही इसकी संवेदना है। छायावादी कविता में खोखलेपन को बेनकाब करने का साहस है। 'निराला' की अधिकांश कविताएँ मानव के उत्थान तथा क्रान्तिकारी विचारों से ही ओत-प्रोत है। इनकी 'राम की शक्तिपूजा' कविता आधुनिक मानव की कविता है। 'राम की शक्तिपूजा' के राम अवतारी राम नहीं हैं, वे आम आदमी हैं, जिनको अपने अधिकारों को पाने के लिए कठिनतम संघर्ष करना पड़ता है।

'निराला' की 'सरोज स्मृति' तो हिन्दी साहित्य की निधि ही है। कवि इस कविता में किस प्रकार अपनी ही सच्चाई अपने ही मुख से प्रकट कर रहा है, वास्तव में यह विचारणीय प्रश्न है। वह अपनी कमियों को तथा दुर्बलताओं को कितने सच्चे मन से प्रकट कर रहा है, ऐसी शक्ति हम हिन्दी साहित्य के किसी अन्य कवि में नहीं पाते। एक पिता जब अपनी औलाद की माँग को पूरा करने में असमर्थ हो जाता है तो उस पर क्या गुजरता है, निराला के शब्दों में देखिए :

'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित न कर सका।
जाना तो अर्थागमोपाय, पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।'⁸

विभिन्न आलोचकों का यह मानना है कि छायावादी युग में नारी सम्बन्धी रचनाएँ ही अधिक हुई, इसी की वजह से छायावाद के विरोधी बहुत दिनों तक छायावादी काव्य को स्त्रैण काव्य कहते रहे। ऐसा नहीं है, इसके पूर्व की काव्यधारा में नारी सम्बन्धी रचनाएँ न हुई हों, ऐसा तो नहीं है, किन्तु वे पुरुष प्रधानता की ही द्योतक हैं। द्विवेदीयुगीन कविताओं में नारी के प्रति दया का भाव तो है पर सम्मान की भावना की कमी है। उस युग में विधवाओं को लेकर बहुत रचनाएँ हुईं लेकिन उन सब में अन्न-वस्त्र दिलाने की ही बात अधिक है। द्विवेदी युग का यह काव्य एक प्रकार से अनाथालय प्रतीत होता है।

छायावादी कवियों ने नारी के इन पूर्ववर्ती रूपों को छोड़कर उसे भक्तिस्वरूपा माना। छायावादी कवि नारी सौन्दर्य के चित्ते हैं, पर पूर्ववर्तियों की भाँति नहीं। नारी उनकी नजर में देवी, माँ, सहचरी, प्राण है।

सन्दर्भ :-

1. 'जागो फिर एक बार', 'राग-विराग', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सम्पादक- रामविलास शर्मा, पृष्ठ सं. 57, संस्करण 2014, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
2. तारापथ, सम्पादक : दूधनाथ सिंह, पृष्ठ सं. 51, संस्करण 2011, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
3. 'राग-विराग', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सम्पादक- रामविलास शर्मा, पृष्ठ सं. 104, संस्करण 2014, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
4. 'पल्लव', सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ सं. 112-113, नौवाँ संस्करण, 1993, आवृत्ति 2008, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
5. तारापथ, सम्पादक : दूधनाथ सिंह, पृष्ठ सं. 93, संस्करण 2011, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
6. 'राग-विराग', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सम्पादक- रामविलास शर्मा, पृष्ठ सं. 119, संस्करण 2014, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
7. वही, पृष्ठ सं. 131
8. वही, पृष्ठ सं. 80



कुँडुख भखा संस्कृतिन पर्दाआगे 'श्री सरन उरॉवस गहि नलख'

- आरती कुमारी

शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

नम्हय झारखण्ड राजी नू किसिम-किसिम गहि भखा अरा संस्कृति गहि मेसा र'ई। ई"र्या नू कुँडुख भखा संस्कृति गहि महबा अरा बिहाईत जुदेम अरा खुदेम र'ई। कुँडुख भखा कुँडुखर गहि अयंग कत्था तली, ईद द्रविड़ भखा खुटिन्ता कत्था तली। कुँडुखर झारखण्ड राजी ता राँची, गुमला, लोहरदगा, लातेहार, डाल्टनगंज, गढ़वा, सिमडेगा, चतरा, हजारीबाग, खूँटी, बोकारो, चाईबासा गुटिठ जिला नू रअनर। झारखण्ड राजी ती बहरी बिहार, पश्चिम बंगाल, असम, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, अंडमान निकोबार, मध्यप्रदेश, दिल्ली, महाराष्ट्र, चेन्नई गुटिठ राजी नू रअनर। हिन्द अयंग राजी ती बहरी नेपाल, भूटान, बंगलादेस, यु.एस.ए., रोम, स्वीडेन गुटिठ राजी नु हु रअनर।

कुँडुख भखा अरा संस्कृति ई खेखेल ता अकय पच्चा अरा महबा जोगे तली। झारखण्ड अजम धन खुर्जी आलो ती धनी र-ई, अन्नेम ई"या ता भखा संस्कृति हूँ अकय महबा उई"यी। पहेँ दुःखे घी कत्था ईद र-ई का ई"या ता भखा, संस्कृति मुंजुरनुम काला लगी अरा कुँडुख भखान हूँ बआ लगनर कर ईद हूँ अक्कु मुंजरना तरा काला लगी। पहेँ अक्कुन खोड़हा ता लूरगरियर, भखा चोन्हा ननुर अरा खोड़हा खापुर निजड़ा दरा ईदिन बछाबअना गहि चिहुट नना लगनर। एन्नेम कुँडुख खोड़हा ता लूरगरिया "श्री सरन उरॉवस" हूँ तंगआ भखा संस्कृतिन बछाबअना अरा पर्दाअना नु अजगुड़ नलख नना लगदस।

श्री सरन उरॉवस गहि कुन्दरना अड्डा झारखण्ड राजीन्ता राँची जिला गहि लापुंग थाना, माड़ी दरमी टोली पद्दा तली। आ पद्दान्ता ओन्टा खल्ल उखड़ी ननु कुँडुख एड़पा नू सय सरन उरॉवस गहि कुन्दरना 12.12.1949 ई. चान नू मंज्जा। आस कुन्दरस आ बीरी तिम ओन्टा खेड ती लुलहा अरा ओन्टा खेक्खद मूद अंगलीद सटरका र-ई। आस गहि तम्बस गहि नामे मु. जेंगा उरॉव अरा तंगियो गहि नामे मु. रामी उरॉव रहचा। अक्कुन सय सरन उरॉवस राँची नू हेहल पावा टोली पद्दा नू एड़पा कमअर दरा ओर्मा खदद-खरर गने रआ लगदस।

आस सन्नी बेडा ती दिम ओर्मी नलख धत्तम का बचना-टुड़ना, डण्डी पाड़ना, खेल अस्सना गुटिट नू पंखराज रहचस। अंवगेम मंगरा कुजूरस सय सरन उरॉव गहि जिनगानी कत्था नू टुड़का रअदस का-"आस कोहा लूरकुड़िया नू टुड़ना-बचना तिम कुँडुख कत्था गहि एम्बन अरा महबन दवले बुझुरआ लगियस। आस गहि पद्दा लापुंग थाना तरा कुँडुख मल कच्छनखरनर। आस अखचस का तंगहय तान भखा र-ई अरा होर्भर अदिन चोन्हा ती कच्छनखरनर, अंवगे आस हूँ इतरा-अतरा ती सिखिरना गहि अकय चिहुट नंज्जस। आस उन्दुल-उन्दुल एड़पा काला लियस होले एड़पान्ता पच्चो-पचगीरिन बआ लियस का नीम होर्भर एंगन कुँडुख ती दिम मेखके। अंवगे एका-एका बीरी एड़पा नू बआ लियर "अव बाबु भात खाय रे?" आस मेना दिम मल मेना लियस, खने आर इ"याईद नना लियर अरा बआ लियर का अरे! आस गा कुँडुख नु बआ गे बअदस। खने बओर बरा बबु मन्डी ओना गे को। आस मेनोस दरा सट ले बओस किरतोओस हओी यो का लगदन एन्ने-एन्ने। ई लेखे आस कुँडुख कत्थन सिखिरका रअदस अरा अक्कुन गा टुड़ना-बचना अरा कच्छनखरना नू पंखराज मंज्जस केरस।"

मानीम तंगआ भखा संस्कृतिन अखना का टुङना-बचना, जोगाबअना अरा बछावअना अकम चाड़ र-ई। एन्देर गे का एका खोड़हा ता अयंग कत्था नठारई काली इदातों अदिन कच्छनखरउर ने हूँ मल रअनर होले आर गही खोड़हा हूँ बंगे उल्ला गूटी मल टिकई, आद एबसेरई काली। एन्ने मनी काली होले आ खोड़हा ता आलर नन्ना खोड़हा नू समसारनर कानर अरा आर गहि कत्था निम तंगआ कत्था कमनर चिअनर। नन्ना खोड़हा नू मेसेरना हूँ नेब्बा कत्था मल्ली एन्देर गे का नन्ना खोड़हा गने मेसरना मसकिल मनी काली अरा आ खोड़हा ता आलर हूँ नन्नारिन चाड़े मल इजिरआ बेंदनर। कार्तिक उरॉवस ठऊकम बाचका रअदस का- “एकअम खोड़हन नठाबना र-ई होले आ खोड़हा ता अयंग कत्थन अरा संस्कृतिन नठाबआ चिआ। तान तानिम आ खोड़हा नठारओ कालो।”²

ई डींड ती मानीम दहदह मनी काली का एकअम खोड़हा गे अयंग कत्था अरा संस्कृति गहि एंवदा महबा अरा चाँड़ र-ई। एकासे एकअम खददस गे परदा खतरी गे अयंग दुदही गहि चाँड़ मनी अन्नेम एकअम खोड़हन परदा अरा बीड़आ खतरी गे अयंग कत्था गहि अकय चाँड़ र-ई। मानीम सय सरन उरॉवस तंगआ कुँडुख कत्था गहि किड़न बुझरस अरा एम्बा रासीन अक्खस। खनेम गा तंगआ एड़पा का पद्दा खेप्पा नु हूँ, कुँडुख मल कच्छनखरआ लगियर अनु हूँ तान सिखरस, दरा अक्कुन एड़पा, खोड़हा अरा तंगआ कुँडुखर मझही नु कुँडुख भखा ती दिम कच्छनखरदस। इदि संगे-संगे आस ओंगहोन ओंगहोन एतवार उल्ला अस्ता खदद खरारिन तंगआ अयंग कत्था कुँडुखन सिखाबआ गे बचताअदस जनवरी, 1973 ती अगस्त 1973 चान गुटि लेटे लापुंग मेच्छा लूरकुड़िया नू बचताआ लगियस, दरा सितम्बर, 1973 ई. चान ती ए.जी. ऑफिस नू नोकरी नन्ना ओरे नंज्जस। आस ए.जी. ऑफिस नू नोकरी गहि हुदा नू रअर दरा हूँ कुँडुख अयंग कत्थन परदअना, कुँडुख खोड़हन ओनजुट नन्ना, समटाअना अरा ओन डहरे नू एकताअना गे अरा कुँडुखर गहि नेग-नेत धरम-करम रीति-रिवाजन, नालना-बेचना, पुरखर गहि पच्चा डण्डीन खोड़ना, बछाबअना अरा परदअना पत्त नू तंगहय पाया भइर अकय चिहुट नना लगदस। इदि संगे-संगे आस नन्ना नलख नू हूँ अजम पंखराज रअदस। एकासे का खल्ल उखड़ी ननुस, मंदर अखऊस, राज मिस्त्री, बढाईगिरी, किचरी उज्जुस, तीनी पोसऊस ई लेखे कइनो नलख नू पंखराज रअदस।

आस आकाशवाणी अरा दूरदर्शन नू हूँ कुँडुख भखान अरा संस्कृतिन परदआ, बीड़आ खतरी गे ढेर नलख नंज्जका रअदस। एकासे का नेड्डा 14.04.1994 ई. चान नू “प्रकृति परब खददी” नेड्डा 16.11.1998 ई. चान नू कुँडुख वार्ता “टोडंग नम्हय खुर्जी”, नेड्डा 02.12.2003 नू “तंगआ खददारिन लूरकुड़िया तइ”या”, नेड्डा 12.05.2005 ई. चान नू “करम परब गहि महबा”, नेड्डा 19.03.2007 नू कुँडुख खोड़हा नू खददी परब गहि महबा, नेड्डा 04.09.2006 नू “कुँडुख खोड़हा नू करम परब गहि महबा”, नेड्डा 27.03.2006 नुम “कुँडुख खोड़हा नू खददी परब”, नेड्डा 08.09.2008 नू फिन “कुँडुख खोड़हा नू करम परब गहि महबा”, नेड्डा 25.03.2012 नू “इन्ना ता बेड़ा नु खददी परब गहि महबा”, नेड्डा 11.01.2016 नू “नम्हय संस्कृति नम्हय विरासत”, नेड्डा 05.09.2016 नुम “पर्यावरण संरक्षण नू करम परब गहि महबा”, नेड्डा 18.09.2017 नू “अस्तित्व ही सुरक्षा संस्कृति गहि रक्षा नू”, नेड्डा 17.09.2018 नू “प्रकृति गहि चोन्हा तुले करम परब”, नेड्डा 09.09.2019 नू “करम-धरम अरा पर्यावरण चोन्हा संगे करम परब”। एन्ने लेखे परब तिहार पन्त नू अरा संगे-संगे डण्डी खीरी गुटिठ नू हूँ आकाशवाणी राँची ती प्रोग्राम चिअते रअदस।

2002 ई. चान नू सय सरन उरॉवस “आराध्य देव वृक्ष करम” नामे पुथी टुड़र चिपताचस। 2007 ई. चान नू इस गहि टुड़का दिम “कुँडुख विनती अरा धरम भजन” पुथी बीड़रा। इदि संगे सरना फूल, जनजातीय आवाज, जनजातीय रीति-रिवाज एवं कानून, बुलेटिन, दिसा, श्रद्धा, उदयांचल, आदिवासी अखड़ा, कुँडुख डहरे अतरवा कागद अरा पुथी गुटिठ नु बरने बरन गहि डॉडी, कत्थडण्डी, खीरी कत्थटूड़ अरा कुँडुखर गहि उज्जना बिज्जना पत्त नू टुड़का रअदस। खनेम श्री सरन उरॉवस गहि पत्त नू पूर्व आई.पी.एस. पदाधिकारी बन्दी उरॉवस बाचका रअदस का- “गाँव की पृष्ठभूमि में रहकर समाज से संबंधित हर बिन्दु पर जानकारी रखने वाले सरन उरॉव के दिल में समाज के लिए

स्वाभाविक श्रद्धा और प्यार है। समाज जीवन्त रहे और निरंतर अबाध गति से चलता रहे, यह उसकी हार्दिक इच्छा है। श्री उराँव अपने इस “आराध्य देव-वृक्ष करम” पुस्तिका में आदिवासियों, विशेषकर उराँव समाज से संबंधित परम्परागत कला एवं संस्कृति के विषय में लिखकर एक अत्यंत ही प्रशंसनीय कार्य किये हैं, वर्तमान समय में जब लोग परिवर्तन एवं विकास के लिए अंधियारी गलियों में अंधाधुंध दौड़ में व्यस्त है, यह और अधिक प्रासंगिक है। श्री उराँव इस महान कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं।’³

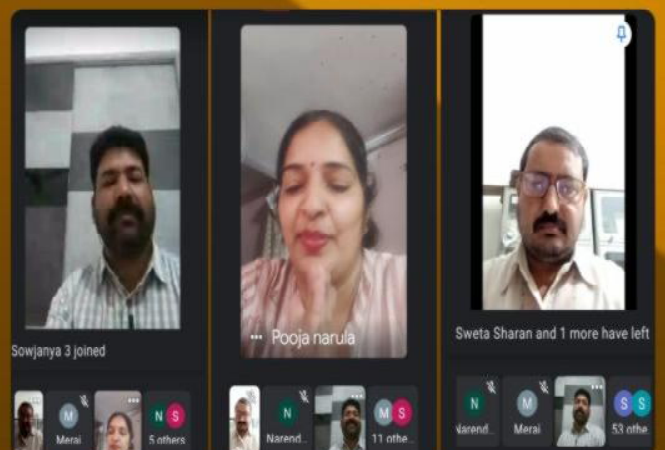
मानीम आस ओन्टे कुँडुख खोड़हा गहि अगुवा मदहे लूरगरिया तलदस अरा खोड़हा सेवा ननु, नमजद्दी आलस तलदस। खोड़हा नू पच्यो-पचगी, लेडपोयो, रोगी, लचारी का ढिबा कवड़ी मलका अरा कीड़ा सारऊ आलारीन एरर आस गहि जिया गे अकय दुःखे लगगी। आस अबड़ा रीन तंगहय पाया भइर सहड़ा नना नु खोखा मल किरदस, अंति आरिन आस सहड़ा ननोसिम। आस पद्दा अबड़ा नू ओन्टा नैगस बेसे नलख नंदस। आसिन बेड़ा-बेड़ा सिरे बेंज्जा नंताआगे हूँ मेखनर। पद्दान्ता मुध आलर आसिन बेड़ा-बेड़ा सिरे नेगनेत नू “डन्डा कट्टा”, “भखकट्टी” नना गे अक्कुन हूँ मेखनर। आस 18.02.2004 ई. चान नू मुख्यमंत्री सय अर्जुन मुण्डास गहि कन्या दान योजना नू तंग खई श्रीमती बिरसो उराँव गने मोरहाबादी टोंका नू सयदी पंचे (75) जोड़ारिन बेंज्जा नंताचर। मुख्य मंत्रीस होमी खोड़हान्ता बेंज्जा नंतऊरिन तंग रअना अड्डा एड़पा नू मिखियस अरा बाचस नीम होर्मर इन्ना ती “राजपुरोहित” मन्जकर अरा गमछा झपअर की होर्मरिन सम्मानित नंज्जस। आस ओन्टा “चाला अखड़ा खोड़हा” हेहल, पावाटोली संस्था 1998 ई. चान नू ओरे नंज्जका रअदस। इ”या आदिवासी कला-संस्कृति ती ओमी आलो खखर’ई अदिन अक्कु आस गहि कोहा तंगदस बन्दी उराँवस चलाबआ लगदस अरा सय सरन उराँवस “चाला अखड़ा खोड़हा” हेहल, पावा टोली गहि “संरक्षक” संस्थापक तलदस। ई-चाला अखड़ा खोड़हा गहि कुँडुख खोड़हा नू मूली महबा ईद र-ई का तंगआ भखा, संस्कृतिन, पर्व-त्योहार गहि नेग दस्तुर, नलना-बेचना, खीरी, डण्डी, अरा कत्थपॉडीन खोड़हा नू बछाबअना र-ई। एकसआनुम कुँडुख खोड़हा गहि पत्त नु का भखा संस्कृति गहि पत्त नू बैसकी मनो होले आस असन कालोस दरा अदि गहि पत्त नू तंगहय कत्था उयोस दिम।

एन्ने लेखा आस गहि दव नलखन एरर दरा कइनो खोड़हा संगठन, संस्थान अरा झारखण्ड सरकार हूँ आस गे तंगआ भखा, संस्कृतिन बछाबअना अरा पर्दअना खतरी गे किसिम-सिसिम गहि ओहदा अरा सम्मान अतखा चिअर दरा सम्मानित नंज्जका किरकी र-ई। एकासे का कुँडुख भखान साहितन पर्दआ गे अजगुड नलख नंज्जका रअदस अदी चड्डे आस गे हिन्द राजी कुँडुख बकलूरिया खोड़हा तरती की “लाइफटाइम कंट्रीब्यूशन ऑफ कुँडुख भखा” पुरस्कार चितारकी र-ई। एन्ने लेखा आस गे आऊर ढेर बग्गे पुरस्कार चितार-की र-ई। आस गहि नलख ती मानीम कुँडुख खोड़हा, भखा संस्कृति परदो अरा बिड़ोओ। एन्ने बेसेम नमा होर्मत गे नलख नना गहि चाँड र-ई, होलेम नमहय भखा संस्कृति परदो बिड़ोओ। मानीम सय सरन उराँवस गहि दव नलखद नमहय खोड़हा नू खोखा बरऊ जयीपुईर गे दव डहरे एदओ।

संदर्भ सूची :-

1. कुँडुख विनती अरा धरम भजन, श्री सरन उराँव, शरण पंजीकरण सं.-IV/226 गहि डाड़ा चाला अखड़ा खोड़हा, हेहल पावाटोली, राँची-5, सन् 2007, पृष्ठ संख्या-3-4.
2. कुँडुख भाषा व्याकरण एवं साहित्य, महेश भगत, शिवांगन पब्लिकेशन, शिव भवन, 2016, पृष्ठ संख्या-8
3. आराध्य देव-वृक्ष करम, श्री सरन उराँव, शरण पंजीकरण संख्या-IV/1226, चाला अखड़ा खोड़हा, हेहल पावाटोली, राँची, सन् 2002, पृष्ठ संख्या-13.
4. कुँडुख कत्था-कत्थपडी गहि कुन्दुरना अरा परदना, महेश भगत, हिन्द राजी कुँडुख बकलूरिया, खोड़हा, प्रथम संस्करण 2017.

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE



स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्स, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

